सिंघी जैन ग्रन्थमाला

卐 ॥ ग्रन्थाङ्क १ ॥ 卐



श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचित

प्रबन्धचिन्तामणि

सिंघी जैन ग्रन्थमाला

जैन आगमिक, दार्शनिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, कथात्मक-इत्यादि विविधविषयगुम्फित
प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राचीनगूर्जर, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
बहु उपयुक्त पुरातनवाङ्मय तथा नवीन संशोधनात्मक
साहित्यप्रकाशिनी जैन ग्रन्थावलि ।

कलकत्तानिवासी स्वर्गीय **श्रीमद् डालचन्दजी सिंघी** की पुण्यस्मृतिनिमित्त
तदीयसुपुत्र **श्रीमान् बहादुरसिंहजी सिंघी** द्वारा संस्थापित

मुख्य सम्पादक

जिनविजय मुनि

अधिष्ठाता, सिंघी जैन ज्ञानपीठ.

शान्तिनिकेतन

ग्रन्थांक १

प्राप्तिस्थान

संचालक, सिंघी जैन ग्रन्थमाला.

शान्तिनिकेतन, बंगाल.

स्थापनाब्द]

[वि० सं० १९८७

SINGHI JAINA SERIES

A COLLECTION OF CRITICAL EDITIONS OF MOST IMPORTANT CANONICAL, PHILOSOPHICAL, HISTORICAL, LITERARY, NARRATIVE ETC WORKS OF JAINA LITERATURE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRAṂŚA AND OLD VERNACULAR LANGUAGES, AND STUDIES BY COMPETENT RESEARCH SCHOLARS.

FOUNDED

BY

ŚRĪMĀN BAHĀDUR SIṄGHJĪ SIṄGHĪ OF CALCUTTA

IN MEMORY OF HIS LATE FATHER

ŚRĪ DĀLCANDJĪ SIṄGHĪ.

GENERAL EDITOR

JINAVIJAYA MUNI

ADHIṢṬHĀTĀ: SIṄGHĪ JAINA JÑĀNAPĪṬHA,

ŚĀNTINIKETAN.

NUMBER 1

TO BE HAD FROM

SAÑCĀLAKA, SIṄGHĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

ŚĀNTINIKETAN. (BENGĀL)

Founded] [1931. A. D.

प्रबन्धचिन्तामणि की संकलना।

इस ग्रन्थका संकलन और प्रकाशन निम्न प्रकार, ५ भागोंमें, पूर्ण होगा।

(१) प्रथम भाग. भिन्न भिन्न प्रतियोंके आधार पर संशोधित-विविध पाठान्तर समवेत-मूलग्रन्थ; १ परिशिष्ट; मूलग्रन्थ और परिशिष्टमें आये हुये संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषामय पद्योंकी अकारादिक्रमानुसार सूचि; पाठ संशोधनके लिये काममें लाई गई पुरातन प्रतियोंका सचित्र वर्णन।

(२) द्वितीय भाग. प्रबन्धचिन्तामणिगत प्रबन्धोंके साथ सम्बन्ध और समानता रखनेवाले अनेकानेक पुरातन प्रबन्धोंका संग्रह; पद्यानुक्रमसूचि; विशेष नामानुक्रम; संक्षिप्त प्रस्तावना और प्रबन्ध संग्रहोंकी मूल प्रतियोंका सचित्र परिचय।

✓(३) तृतीय भाग. पहले और दूसरे भागका संपूर्ण हिंदी भाषान्तर।

(४) चतुर्थ भाग. प्रबन्धचिन्तामणिवर्णित व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध रखनेवाले शिलालेख, ताम्रपत्र, पुस्तकप्रशस्ति आदि जितने समकालीन साधन और ऐतिह्य प्रमाण उपलब्ध होते हैं उनका एकत्र संग्रह और तत्परिचायक उपयुक्त विस्तृत विवेचन; प्राक्कालीन और पश्चात्कालीन अन्यान्य ग्रन्थोंमें उपलब्ध प्रमाणभूत प्रकरणों, उल्लेखों और अवतरणोंका संग्रह; कुछ शिलालेख, ताम्रपत्र और प्राचीन ताडपत्रोंके चित्र।

(५) पञ्चम भाग. प्रबन्धचिन्तामणिग्रथित सब बातोंका विवेचन करनेवाली विस्तृत प्रस्तावना-जिसमें तत्कालीन ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक और राजकीय परिस्थितिका सविशेष ऊहापोह और सिंहावलोकन किया जायगा। अनेक प्राचीन मंदिर, मूर्तियां इत्यादिके चित्र भी दिये जायँगे।



THE SCHEME OF THE WORK OF PRABANDHACINTĀMAṆI

[The work will be completed in five parts.]

Part I. A critical Edition of the original Text in Sanskrit with various readings based on the most reliable MSS; An Appendix; An alphabetical Index of all Sanskrit, Prākrit and Apabhraṃs'a verses occurring in the text and the appendix; A short Introduction in Hindi describing the MSS. and materials used for preparing the text along with plates.

Part II. A collection of many old Prabandhas similar and analogous to the matter in the Prabandhacintāmani; Indices of the verses and proper names; A short Introduction in Hindi describing the MSS. and materials used in preparing this Part, along with plates.

Part III. A Complete Hindi Translation of Parts I and II.

Part IV. A collection of epigraphical records, viz. stone inscriptions, copper plates, colophons and Pras'astis from the contemporary MSS; all available historical data dealing with the Persons described or referred to in the Prabandhacintāmaṇi along with a critical account in Hindi of the above, as also many plates. and a collection of authoritative references and quotations from other works.

Part V. An elaborate general Introduction surveying the historical, geographical, social, political and religious conditions of that period; with plates.

आदावुन्मीलितं येन ज्ञानचक्षुर्मदीयकम् ।
देवीहंसगुरोस्तस्य स्मृतये इदमर्प्यते ॥

अनुक्रमणिका ।

प्रथमः प्रकाशः ।

द्वितीयः प्रकाशः ।

तृतीयः प्रकाशः ।

चतुर्थः प्रकाशः ।

पञ्चमः प्रकाशः।



॥ सिंघीजैनग्रन्थमालासंस्थापकप्रशस्तिः ॥

अस्ति बङ्गाभिधे देशे सुप्रसिद्धा मनोरमा । मुर्शिदाबाद इत्याख्या पुरी वैभवशालिनी ॥
निवसन्त्यनेके तत्र जैना ऊकेशवंशजाः । धनाढ्या नृपसदृशा धर्मकर्मपरायणाः ॥
श्रीडालचन्द इत्यासीत् तेष्वेको बहुभाग्यवान् । साधुवत् सच्चरित्रो यः सिंघीकुलप्रभाकरः ॥
बाल्य एवागतो यो हि कर्तुं व्यापारविस्तृतिम् । कलिकातामहापुर्यां धृतधर्मार्थनिश्चयः ॥
कुशाग्रया स्वबुद्ध्यैव सद्वृत्त्या च सुनिष्ठया । उपार्ज्य विपुलां लक्ष्मीं जातो कोट्यधिपो हि सः ॥
तस्य मन्नुकुमारीति सन्नारीकुलमण्डना । पतिव्रता प्रिया जाता शीलसौभाग्यभूषणा ॥
श्रीबहादुरसिंहाख्यः सद्गुणी सुपुत्रस्तयोः । अस्त्येष सुकृती दानी धर्मप्रियो धियां निधिः ॥
प्राप्ता पुण्यवताऽनेन प्रिया तिलकसुन्दरी । तस्याः सौभाग्यदीपेन प्रदीप्तं यद्गृहाङ्गणम् ॥
श्रीमान् राजेन्द्रसिंहोऽस्ति ज्येष्ठपुत्रः सुशिक्षितः । सः सर्वकार्यदक्षत्वात् बाहुर्यस्य हि दक्षिणः ॥
नरेन्द्रसिंह इत्याख्यस्तेजस्वी मध्यमः सुतः । सूनुर्वीरेन्द्रसिंहश्च कनिष्ठः सौम्यदर्शनः ॥
सन्ति त्रयोऽपि सत्पुत्रा आप्तभक्तिपरायणाः । विनीताः सरला भव्याः पितुर्मार्गानुगामिनः ॥
अन्येऽपि बहवश्चास्य सन्ति स्वस्रादिबान्धवाः । धनैर्जनैः समृद्धोऽयं ततो राजेव राजते ॥

अन्यच्च–

सरस्वत्यां सदासक्तो भूत्वा लक्ष्मीप्रियोऽप्ययम् । तत्राप्येष सदाचारी तच्चित्रं विदुषां खलु ॥
न गर्वो नाऽप्यहंकारो न विलासो न दुष्कृतिः । दृश्यतेऽस्य गृहे क्वापि सतां तद् विस्मयास्पदम् ॥
भक्तो गुरुजनानां यो विनीतः सज्जनान् प्रति । बन्धुजनेऽनुरक्तोऽस्ति प्रीतः पोष्यगणेष्वपि ॥
देश-कालस्थितिज्ञोऽयं विद्या-विज्ञानपूजकः । इतिहासादिसाहित्य-संस्कृति-सत्कलाप्रियः ॥
समुन्नत्यै समाजस्य धर्मस्योत्कर्षहेतवे । प्रचारार्थं सुशिक्षाया व्ययत्येष धनं घनम् ॥
गत्वा सभा-समित्यादौ भूत्वाऽध्यक्षपदाङ्कितः । दत्त्वा दानं यथायोग्यं प्रोत्साहयति कर्मठान् ॥
एवं धनेन देहेन ज्ञानेन शुभनिष्ठया । करोत्ययं यथाशक्ति सत्कर्माणि सदाशयः ॥
अथान्यदा प्रसङ्गेन स्वपितुः स्मृतिहेतवे । कर्तुं किञ्चिद् विशिष्टं यः कार्यं मनस्यचिन्तयत् ॥
पूज्यः पिता सदैवासीत् सम्यग् ज्ञानरुचिः परम् । तस्मात्तज्ज्ञानवृद्ध्यर्थं यतनीयं मया वरम् ॥
विचार्यैवं स्वयं चित्ते पुनः प्राप्य सुसम्मतिम् । श्रद्धास्पदस्वमित्राणां विदुषां चापि तादृशाम् ॥
जैनज्ञानप्रसारार्थं स्थाने शान्तिनिकेतने । सिंघीपदाङ्कितं जैनज्ञानपीठमतिष्ठिपत् ॥
श्रीजिनविजयो विज्ञो तस्याधिष्ठातृसत्पदम् । स्वीकर्तुं प्रार्थितोऽनेन ज्ञानोद्धाराभिलाषिणा ॥
अस्य सौजन्य-सौहार्द-स्थैर्यौदार्यादिसद्गुणैः । वशीभूयाति मुदा येन स्वीकृतं तत्पदं वरम् ॥
यस्यैव प्रेरणां प्राप्य श्रीसिंघीकुलकेतुना । स्वपितृश्रेयसे चैषा ग्रन्थमाला प्रकाश्यते ॥
विद्वज्जनकृताह्लादा सच्चिदानन्ददा सदा । चिरं नन्दत्वियं लोके जिनविजयभारती ॥

किञ्चित् प्रास्ताविक ।

प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थके बारेमें जितनी ज्ञातव्य बातें हैं उन सबका निर्देश, बहुत कुछ विस्तारके साथ, हम आगेके भागोंमें–चौथे पांचवें ग्रन्थमें–करना चाहते हैं इस लिये यहां पर अन्य कोई विशेष बातका उल्लेख न कर, सिर्फ इस ग्रन्थकी प्रस्तुत आवृत्तिके जन्मका थोडासा पूर्वेतिहास बतलाना, और उसके साथ इस ग्रन्थके, इतः पूर्व, जो संस्करण और भाषान्तर आदि हुए हैं उनका परिचय देते हुए, जिन पुरातन हस्तलिखित पोथीयोंका आश्रय लेकर हमने इसका संशोधन और सम्पादन किया है उनका परिचय मात्र कराना आवश्यक समझते हैं ।

प्रस्तुत आवृत्तिकी जन्मकथा.

प्रबन्धचिन्तामणि जैसे ऐतिहासिक महत्त्व रखनेवाले अनेक ग्रन्थ, और ऐसे ही उपयोगी अन्यान्य अगणित ऐतिहासिक साधन, जैन भण्डारोंमें पडे पडे सड रहे हैं लेकिन उनका ठीक ठीक परिचय विद्वानोंको न मिल सकनेके कारण वे अभी तक प्रकाशमें नहीं आये । इस वस्तुका खयाल हमें पाटणके पुरातन जैन भण्डारोंका अवलोकन करते समय, आजसे कोई १८–२० वर्ष पहले हुआ । विद्यमान जैन साधुसमूहमें जिस ज्ञाननिमग्न स्थितप्रज्ञ मुनिमूर्तिका दर्शन और चरणस्पर्श करनेसे हमारी इस ऐतिहासिक जिज्ञासाका विकास हुआ उस यथार्थ साधुपुरुष–पूज्यपाद प्रवर्तक श्रीमत्कान्तिविजयजी महाराज–की वात्सल्यपूर्ण प्रेरणा पाकर हमने यथाबुद्धि इस विषयमें अपना अध्ययन–अन्वेषण–संशोधन–सम्पादनादि कार्य करना शुरू किया । हमारा संकल्प हुआ कि जैन भण्डारोंमें इतिहासोपयोगी जितनी सामग्री उपलब्ध हों उसे खोज खोज कर इकट्ठी की जाय और आधुनिक विद्वन्मान्य पद्धतिसे उसका संशोधन और सम्पादन कर प्रकाशन किया जाय । हमारे इस संकल्पमें, उक्त पूज्यवरके गुरुभक्त और ज्ञानोपासक शिष्यवर्य श्रीमान् चतुरविजयजी महाराज तथा प्रशिष्यवर श्रीमान् पुण्यविजयजीकी सम्पूर्ण सहकारिता प्राप्त होने पर, हमने उन्हीं स्वाध्यायनिरत ज्ञानतपस्वी प्रवर्तकजीके पुण्यनामसे अंकित–प्रवर्तक श्रीकान्तिविजय जैन इतिहासमाला–नामक ग्रन्थावलिका प्रारंभ किया और भावनगरकी श्री जैन आत्मानंद सभा द्वारा उसे प्रकाशित करने लगे । विज्ञप्तित्रिवेणी, कृपारसकोष, शत्रुंजयतीर्थोद्धारप्रबन्ध, जैन ऐतिहासिक गूर्जर काव्यसंचय और प्राचीन जैनलेखसंग्रह इत्यादि ग्रन्थ उस समय प्रकट हुए और विद्वानोंने उनका अपूर्व ऐतिहासिक महत्त्व समझ कर उस प्रयत्नको खूब सराहा ।

हमने अपना यह संशोधन कार्य, संवत् १९७१–७२ में, जब हमारा निवास वडोदेमें था, प्रारंभ किया था । उन्हीं दिनोंमें, वडौदा राज्यकी ओरसे प्रकाशित होने वाली 'गायकवाडस् ओरिएन्टल सीरीझ' का प्रकाशन कार्य भी शुरू हुआ था । उस सीरीझके उत्पादक स्वर्गीय साक्षररत्न श्रीचिमणलाल डाह्याभाई दलाल एम्. ए. हमारे घनिष्ठ मित्र थे । पाटणके जैन भण्डारोंका व्यवस्थित पर्यवेक्षण करनेमें तथा उन भण्डारोंमेंसे अलभ्य–दुर्लभ्य ग्रन्थोंकी प्राप्ति करनेमें भाई दलालजीको जो यथेष्ट सुविधा मिली थी वह उक्त पूज्यप्रवर प्रवर्तकजी ही की सुकृपाका फल था। इस लिये उनका और हमारा एक प्रकारका सतीर्थ जैसा सम्बन्ध था । समानशील और समव्यसनी होनेके कारण, वे प्रतिदिन घंटों, वडोदेके जैन उपाश्रयमें आकर बैठते–ऊठते और हम उनके और वे हमारे कार्यमें सहयोग देते–लेते थे । इस सहयोगके परिणाममें, कितनेएक जैन ऐतिहासिक ग्रन्थ 'गायकवाडस् ओरिएन्टल सिरीझ' द्वारा भी प्रकट करनेका उन्होंने निश्चय किया और उनमेंसे, मोहराजपराजय नाटक का सम्पादन कार्य उक्त पूज्यवरके प्रधानशिष्य श्रीचतुरविजयजी महाराजने, कुमारपालप्रतिबोध नामक विशाल प्राकृत ग्रन्थका सम्पादन हमने और वसन्तविलास, नरनारायणानन्द, हम्मीरमदमर्दन आदि ग्रन्थोंका सम्पादन कार्य स्वयं दलालजीने अपने हाथमें लिया ।

नियमानुसार बडौदासे हमारा प्रस्थान हुआ और संकल्पित कार्यमें विशृंखलता उत्पन्न हुई। 'प्राचीनजैनलेखसंग्रह द्वितीय भाग,' 'कुमारपालप्रतिबोध' और 'जैनऐतिहासिक गूर्जरकाव्यसंचय' का जो कार्य अपूर्ण था वह तो किसी तरह पूरा किया गया लेकिन और विशेष कार्य कुछ न हो सका।

उसी समय पूनाके सुप्रसिद्ध 'भाण्डारकर प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिर' (Bhandarkar Oriental Research Institute) की स्थापना हुई। बडौदासे प्रस्थान कर हम जब बम्बईमें चतुर्मास रहे थे तब, इस 'संशोधनमन्दिर'के मुख्य उत्पादक और प्राणप्रतिष्ठापक स्वर्गीय प्रो० गुणे और श्रीमान् डॉ० वेल्वलकर आदि सज्जनोंका एक डेप्युटेशन बम्बईके जैनसमाजकी मुलाखात लेनेको आया और प्रसङ्गवश हमारा परिचय पा कर उन सज्जनोंने हमको पूना आनेका निमन्त्रण दिया। चतुर्मासके बाद हम घूमते घूमते पूना पहुंचे। वहां उस संस्थाके उद्देश्यादिका विशेषावलोकन कर तथा उसके अधिकारमें आनेवाले राजकीय प्राचीनग्रन्थसङ्ग्रहका विशाल साहित्यभण्डार–जिसमें हजारों जैन-ग्रन्थोंका भी समावेश होता है–का दिग्दर्शन कर उस संस्थाके विकासमें हमने भी यथाशक्ति योग देनेका प्रयत्न किया। उसके परिणाममें हमारी स्थिति पूनामें निश्चित हुई। वहां, इस प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिरके काममें योग देनेके साथ 'भारत जैन विद्यालय' नामक संस्थाका भी एक विशाल आयतन खडा किया गया। सन् १९१८ में, पूनाके उक्त संशोधनमन्दिरके उपक्रमसे भारतीय पुराविदोंकी परिषद्का प्रथम अधिवेशन (First Oriental Conference) हुआ। उसमें सम्मीलित होने वाले कुछ विद्याप्रिय और साहित्योपासक जैनमित्रोंको प्रेरित कर, हमने फिर अपने उसी संकल्पको कार्यमें प्रवृत्त करनेका एक नया आयोजन किया। **जैन साहित्य संशोधक समिति** नामक एक समिति का प्रतिष्ठापन कर कुछ परिचित स्नेहिगणकी सहायतासे **जैन साहित्य संशोधक** नामका बृहदाकार त्रैमासिक पत्र तथा **ग्रन्थमाला** प्रकाशित करनेका प्रारंभ किया। परंतु यथेष्ट साहाय्यादि प्राप्त न होनेसे यथेप्सितरूपमें वह कार्य आगे न बढ सका।

पूनेमें रहते समय, हमें स्वर्गीय लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी आदि महापुरुषोंका भी साक्षात् परिचय हुआ और हमारे जीवनमार्गमें विशिष्ट परिवर्तन घटित हुआ। जिस वेषकी चर्याका आचरण हमने मुग्धभावसे बाल्यकाल ही में स्वीकृत किया था उसके साथ हमारे मनका तादात्म्य न होनेसे, हमारे मनमें, अपनी जीवनप्रवृत्तिके विषयमें एक प्रकारका बडा भारी आन्तरिक असन्तोष बढता जाता था। अन्तरमें वास्तविक विरागता न होने पर भी केवल बाह्यवेषकी विरागताके कारण लोकों द्वारा वंदन-पूजनादिका सन्मान प्राप्त करनेमें हमें एक प्रकारकी वंचना प्रतीत होती थी। इस लिये गुरुपदके भारसे मुक्त हो कर किसी सेवक पदका अनुसरण करनेका हम मनोरथ कर रहे थे और अपनी मनोवृत्तिके अनुकूल सेवाका उपयुक्त क्षेत्र खोज रहे थे।

सन् १९२० में, देशकी मुक्तिके लिये महात्माजीने असहयोग आन्दोलनका मंगलाचरण किया और उसीके अनुसन्धानमें, राष्ट्रीय शिक्षणके प्रचार निमित्त, अहमदावादमें **गूजरातविद्यापीठ**की स्थापनाका आयोजन हुआ। मित्रोंकी प्रेरणा और महात्माजीकी आज्ञासे प्रेरित होकर हम पूनासे अहमदाबाद पहुंचे और वहां, अपनी मनोवृत्तिके अनुरूप कार्यक्षेत्र पा कर, एक सेवकके रूपमें, गूजरातविद्यापीठकी सेवामें सम्मीलित हुए।

विद्यापीठने, अन्यान्य विद्यामन्दिरोंके साथ प्राचीन साहित्य और इतिहासके अध्ययन और संशोधनके लिये **पुरातत्त्वमन्दिर** नामक एक विशिष्ट संस्थाका निर्माण किया और उसके मुख्य–आचार्य–पद पर हमारी नियुक्ति कर हमको अपने अभीष्ट क्षेत्रमें कार्य करनेका परम सुयोग दिया। पुरातत्त्वमंदिरके सञ्चालनमें हमें अध्यापक श्रीयुत रामनारायण पाठक, अ० श्रीरसिकलाल परीख, पंडितप्रवर श्रीसुखलालजी आदि सहृदय मित्रोंका प्रारंभ ही से हार्दिक सहचार मिला और इनके सहकार और सहविचारसे शीघ्र ही एक पुरातत्त्वविषयक ग्रन्थावलि प्रकट करनेकी योजना हाथमें ली गई। 'गूजरातपुरातत्त्व मन्दिर' एक राष्ट्रीय संस्था थी इस लिये उसका कार्यक्षेत्र राष्ट्रीय दृष्टिको

ले कर निश्चित करना आवश्यक था । अत एव उस संस्थाके द्वारा ऐसे साहित्यका निर्माण और प्रकाशन करना समुचित था जो किसी एक ही सम्प्रदाय या साम्प्रदायिक साहित्यका पोषक न हो कर समूचे भारतीय संस्कृतिका पोषक हो । तदर्थ जैन, बौद्ध, वैदिक और इस्लामिक साहित्यको भी उसके कार्य क्षेत्रमें सम्मीलित किया गया और उसी दृष्टिसे **पुरातत्त्वमन्दिर ग्रन्थावली** का प्रकाशन चालू किया गया । कुछ प्रासंगिक पुस्तकोंके सम्पादनके अतिरिक्त, हमनें अपने लिये तो वही पुराना संकल्पित कार्य, मुख्य रूपसे मनमें निश्चित कर रखा था; और उसीके अनुसन्धानमें सबसे पहले हमने इस प्रबन्धचिन्तामणि की एक सुसम्पादित आवृत्ति तैयार करनेका और उसके साथ, इसीकी पूर्तिरूप, प्रबन्धकोष, कुमारपालप्रबन्ध, वस्तुपालचरित्र, विमलप्रबन्ध आदि ग्रंथ; तथा शिलालेख, ताम्रपत्र, ग्रन्थप्रशस्तिः–इत्यादि अन्यान्य प्रकारके गूजरातके इतिहासके साधनभूत संग्रह की संकलना करनेका उपक्रम किया।

प्रबन्धचिन्तामणिका जो संस्करण, आजसे ४५ वर्ष पहले, शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथने प्रकाशित किया था, वह यद्यपि उस जमानेके मुताबिक ठीक था, लेकिन आधुनिक दृष्टिसे वह बहुत ही अपूर्ण और अशुद्ध है । उसकी पाठ-शुद्धि ठीक नहीं है, मौलिक और प्रक्षिप्त पाठोंका उसमें कोई पृथकरण नहीं है और कई पद्योंका–विशेषकर प्राकृत पद्योंका–रूप बड़ा विकृत कर दिया है । कुछ तो पुरातन लिपिविषयक अज्ञानता, कुछ ऐतिहासिक ज्ञानविषयक अल्पज्ञता, कुछ सांप्रदायिक परंपराविषयक अनभिज्ञता और कुछ प्राकृतादि भाषा विषयक अपरिचितताके कारण उनके संस्करणमें बहुतसी त्रुटियां रह गईं, जिससे ग्रंथका सुस्पष्ट स्वरूप समझनेमें कठिनाई पडती है । इस लिये सबके पहले हमने इस ग्रंथकी पाठशुद्धि करनेके लिये जैन भण्डारोंमेंसे पुरानी प्रतियां प्राप्त करनेका प्रयत्न किया। यथालभ्य प्रतियां मिल जानेपर ग्रंथकी प्रेसकापी तैयार की गई और कुछ हिस्सा छपनेके लिये प्रेसमें भी दे दिया गया । छपनेका कार्य प्रारंभ हो कर ग्रन्थके दूसरे प्रकाश तकका हिस्सा जब मुद्रित हो चुका था, तब, कईएक कारणोंको ले कर, हमारा युरोप जानेका इरादा हुआ । सोचा था कि वहां बैठे बैठे भी इस ग्रंथका मुद्रणकार्य चालू रह सकेगा और युरोपसे लौटते तक ग्रन्थ पूरा हो जायगा वो फिर तुरन्त आगेका काम प्रारंभ कर दिया जायगा । इस लिये हमने इसकी प्रतियां भी वहां (जर्मनीमें) जा कर मंगवा लीं। लेकिन युरोपके सामाजिक और औद्योगिक वातावरणने हमारे मनको अपने आजीवन-अभ्यस्त विषयसे विचलित कर दिया । इन पुरानी बातोंकी खोज-खाज करनेके बदले वहांके जो वर्तमान राष्ट्रीय, सामाजिक और औद्योगिक तंत्र हैं उनका विशेषावलोकन कर किसी एक सजीव प्रवृत्तिमें संलग्न होनेके तरंग हमारे मनमें ऊठने लगे और उसी दिशामें कुछ कार्य करनेके विचारोंसे मन व्यस्त रहने लगा । सबब इसके, यहां पर बैठ कर जो, इस ग्रंथका मुद्रणकार्य समाप्त कर देनेका संकल्प यहांसे करके निकले थे, वह पूरा नहीं हो पाया।

सन् १९२९ के डीसेंबरमें हम वापस भारत आये । उस समय, लाहोर कॉंग्रेसके प्रोग्रामके मुताबिक देशमें नये विचारोंकी क्रान्तिसूचक लहरें उठ रही थीं । एक तो स्वयं युरोपसे मस्तिष्कमें कुछ नये विचार भर कर लाये थे और दूसरा यहां पर भी उसी प्रकारका भिन्नकार्यसूचक प्रक्षुब्ध वातावरण घनीभूत हो रहा था । गूजरात विद्यापीठमें भी विद्याका वातावरण न होकर सत्याग्रही युद्धका ही वातावरण गूंज रहा था । इस लिये इस ग्रन्थके, उस अधूरे पडे हुए कार्यको तत्काल हाथमें लेनेकी कोई इच्छा नहीं होती थी । आखिरमें सत्याग्रह-संग्राम छिड ही गया और देशके सब ही सेवकोंकी तरह, हम भी यथाक्रम ६ मासके लिये नासिकके शान्तिदायक समाधिविधायक कारागारमें जा पहुंचे । सचमुच ही नासिकके सेंट्रल जेलखानेमें जो चित्तकी शान्ति और समाधि अनुभूत की वह जीवनमें अपूर्व और अलभ्य वस्तु थी । वह जेलखाना, हमारे लिये तो एक परम शान्त और शुचि विद्या-विहार बन गया था । उसकी स्मृति जीवनमें सबसे बडी सम्पत्ति मालूम देती है । स्वनामधन्य सेठ जमनालालजी बजाज, कर्मवीर श्रीनरीमान, देशप्रेमी सेठ श्रीरणछोडभाई, साहित्तिकधुरीण श्रीकन्हैयालाल मुंशी आदि जैसे परम सज्जनोंका घनिष्ठ सहवास रहनेसे और सबके साथ कुछ न कुछ विद्या-विषयक चर्चा ही सदैव चलती रहनेसे, हमारे मनमें ये ही

पुराने साहित्यिक संकल्प, वहां फिर सजीव होने लगे। सहवासी मित्रगण भी हमारी रुचि और शक्तिका परिचय प्राप्त कर, हमको उसी संकल्पित कार्यमें विशेष भावसे लगे रहनेकी सलाह देने लगे। मित्रवर श्रीमुंशीजी, जो गूजरातकी अस्मिताके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं और जो गूजरातके पुरातन गौरवको आबाल-गोपाल तक हृदयंगम करा देनेकी महती कला-विभूतिसे भूषित हैं, उनका तो दृढ आग्रह ही हुआ कि और सब तरंग छोड कर वही कार्य करने ही से हम अपना कर्तव्य पूरा कर सकते हैं। अन्यान्य घनिष्ठ मित्रोंका भी यही उपदेश हमें वहां बैठे बैठे वारंवार मिलने लगा और जेलखानेसे मुक्त होते ही हमें वही अपने पुराने बही-खाते टटोलनेकी आज्ञा मिलने लगी।

संवत् १९८६ के विजयादशमीके दिन, मित्रवर श्रीमुंशीजीके साथ ही हमें जेलसे मुक्ति मिली। हम बम्बई हो कर अहमदाबाद पहुंचे। यद्यपि जेलखानेके उक्त वातावरणने मनको इस कार्यकी तरफ बहुत कुछ उत्तेजित कर दिया था, तो भी देशकी परिस्थितिका चालू क्षोभ, रह रह कर मनको अस्थिर बनाता रहता था। आखिरमें **श्रीमान् बाबू बहादुरसिंहजी सिंघीका**, शान्तिनिकेतन आ कर जैन साहित्यके अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था हाथमें लेनेका आग्रह पूर्ण आमंत्रण मिलनेसे, और हमारे सदैवके सहचारी परमबन्धु पण्डित प्रवर श्रीसुखलालजीकी भी तद्विषक वैसी ही आज्ञा होनेसे, हम शान्तिनिकेतन आ पहुंचे। यहां विश्वभारतीके ज्ञानमय वातावरणने हमारे मनको एकदम उसी ज्ञानोपासनामें फिर स्थिर कर दिया और हमारी जो वह चिर संकल्पित भावना थी, उसको यथेष्ट समुत्तेजितकर दिया। साथ ही में, उस संकल्पको कार्यमें परिणत होनेके लिये, जिस प्रकारकी मनःपूत साधन-सामग्रीकी अपेक्षा, हमारे मनमें गूढ भावसे रहा करती थी, उससे कहीं अधिक ही विशिष्ट सामग्री, सच्चरित्र, दानशील, विद्यानुरागी श्रीमान् बहादुरसिंहजी सिंघीके उत्साह, औदार्य, सौजन्य और सौहार्द द्वारा प्राप्त होती देख कर, हमने बडे आनन्दसे इस **सिंघी जैन ज्ञानपीठके** संचालनका भार उठाना स्वीकार किया।

यद्यपि, प्रारंभमें हमने इस स्थानका, जैनवाङ्मयका अध्ययन-अध्यापन करानेकी दृष्टिसे ही स्वीकार किया; लेकिन हमारे मनस्तलमें तो वही पुराना संकल्प दटा हुआ होनेसे, यहां पर स्थिर होते ही, वह संकल्प फिर सहसा मूर्तिमान् होकर हमारे हृदयांगणमें नाचने लगा, और वही पुरानी ऐतिहासिक-सामग्री, जिसको हमने आज तक, मुँजीकी पुँजीकी तरह बडे यत्नसे संचित रख कर बन्दी बना रखी है, हमारे मानसचक्षुके आगे खडी हो कर, कटाक्षपूर्ण टकटकी लगा कर ताकने लगी। हमारा व्यसनी मन फिर इस कामके लिये पूर्ववत् ही लालायित और उत्सुक हो उठा।

प्रसङ्ग पाकर हमने अपने ये सब विचार ज्ञानपीठके संस्थापक श्रीमान् बहादुरसिंह बाबूसे कह सुनाये; और 'ज्ञानपीठ'के साथ एक 'ग्रन्थमाला'भी स्थापित कर जैन साहित्यके रत्नतुल्य विशिष्ट ग्रंथोंको, आदर्शरूपसे तैयार कर-करवा, प्रसिद्धिमें लानेका प्रयत्न होना चाहिए, इस बारेमें सहज भावसे प्रेरणा की गई। इन बातोंको सुनते ही सिंघीजीने, उसी क्षण, बडे औदार्यके साथ, अपनी सम्पूर्ण सम्मति हमें प्रदान की और ऐसी 'ग्रंथमाला' के प्रारंभ करनेका और उसके लिये यथोचित द्रव्यव्यय करनेका यथेष्ट उत्साह प्रकट किया। इसके परिणाममें, सिंघीजीके स्वर्गीय पिता साधुचरित **श्रीमान् डालचन्दजी सिंघीकी** पुण्यस्मृति निमित्त इस **सिंघी जैन ग्रन्थमाला** का प्रादुर्भाव हो कर, आज इसका यह प्रथम 'मणि'–केवल'मणि' ही नहीं 'चिन्तामणि'–पाठकोंके करकमलमें समर्पित हो रहा है।

इस ग्रंथके पूर्व संस्करणादिका परिचय.

विदेशीय विद्वानोंमें, सबसे पहले इस ग्रन्थका परिचय, किन्लॉक फार्बस साहबको हुआ जिन्होंने गूजरातके इतिहासका **रासमाला** नामक सबसे पहला और अनेक बातोंमें अपूर्व ग्रन्थ लिखा। रासमाला के लिये ऐतिहासिक सामग्री इकट्ठी करनेका उपक्रम, जब फार्बस साहबने शुरू किया तब, प्रारम्भही में उन्हें वीरचन्द भण्डारी नामक एक शिक्षित जैन गृहस्थका अमूल्य सहकार मिल गया, जिसकी सहायतासे उन्हें गूजरातके पाटणके किसी जैनयतिजीके पास, प्रस्तुत ग्रन्थकी एक प्रति प्राप्त हो गई। रासमालाके पूर्वभागके प्रणयनमें प्रबन्धचिन्तामणिसे बहुत कुछ सहायता ली

गई है इतना ही नहीं लेकिन उसका सारा ही सारभूत ऐतिहासिक कलेवर प्रायः इसी ग्रन्थके आधार पर खडा किया गया है।

फार्बस साहबको जो पोथी पाटणसे मिली थी वह उन्होंने बम्बईकी 'फार्बस साहित्य सभा'को भेंट दे दी लेकिन पीछेसे वह पोथी वहांसे लुप्त हो गई। बम्बई सरकारने जब, अपना पुरातन साहित्यके अन्वेषण और संग्रह-करणका कार्य शुरू किया, तब डॉ० ब्युल्हर और प्रो० पीटर्सनको इस ग्रन्थकी प्राप्ति करनेकी वडी उत्कंठा हुई। वहुत कुछ परिश्रम करनेके बाद, सन् १८७४ में भटनेरके जैनग्रन्थभण्डारमें; इस ग्रन्थकी १ प्रति डॉ० ब्युल्हरके देखनेमें आई, जिसकी तुरन्त नकल करवा कर उन्होंने लंडनकी इन्डिया ऑफिस लाईब्रेरीको भिजवा दी। सन् १८८५ में, प्रो० पीटर्सनको इसकी १ प्रति प्राप्त हुई जिसके बारेमें, उन्होंने, अपनी पुस्तकविषयक खोज वाली दूसरी रीपोर्ट (पृ० ८६–८७) में इस प्रकार, इस पर, उल्लेख किया है–

"इस प्रकार जल्दीमें किये गए इन उल्लेखोंके अंतमें, कहना चाहिए कि–वर्षके आखिरी भागमें, मेरुतुङ्गरचित प्रबन्धचिन्तामणि ग्रंथकी १ प्रति प्राप्त करनेमें मैं सफल हुआ हूं। यह महत्त्वका ऐतिहासिक ग्रन्थ बडा उपयोगी है। अपने ग्रन्थसंग्रहमें इस ग्रन्थकी वृद्धि करनेका बहुत समयसे हमारा प्रयत्न रहा।" इत्यादि।

यह प्रति बम्बई सरकारके ग्रन्थसंग्रहमें–जो वर्तमानमें, पूनाके भांडारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मंदिरमें, सुरक्षित है–अद्यापि विद्यमान है।

इसके सिवा, डॉ० ब्युल्हरको एक और प्रति, ऊमाशंकर याज्ञिक नामके गूजरातके किसी शास्त्री द्वारा प्राप्त हुई, जिसकी भी नकल करवा कर, उन्होंने उक्त इन्डिया ऑफिस लाइब्रेरीमें भिजवा दी।

पीटर्सन साहब द्वारा प्राप्त हुई उक्त पूनावाली प्रतिको देखकर, गूजरातके पं० रामचन्द्र दीनानाथ शास्त्रीको, जो पीटर्सन साहबके निरीक्षणमें सहायक रूपसे काम करते थे, इस ग्रन्थको मुद्रित कर प्रकाशित करने की इच्छा हुई। प्रयत्न करनेसे उनको, उक्त प्रतिके सिवा, दो-तीन अन्य प्रतियां भी जैन उपाश्रयोंमेंसे मिल गई थीं जिनका आश्रय ले कर उन्होंने अपना संस्करण, विक्रम संवत् १९४४ में, प्रकट किया। रामचन्द्र शास्त्रीने इस ग्रन्थका गूजराती भाषान्तर भी तैयार किया और उसको भी सं० १९४५ में छपवाकर प्रसिद्ध किया।

इतिहासकी दृष्टिसे इस ग्रंथका बडा महत्त्व होनेसे, इसका इंग्रेजी भाषामें अनुवाद करनेकी आवश्यकता डॉ० ब्युल्हरको माल्हम दी; इस लिये उन्होंने, संस्कृत ग्रंथोंके इंग्रेजीमें अनुवाद करनेवाले सिद्धहस्त विद्वान् प्रो० सी. एच्. टॉनी. एम्. ए. को, इसका अनुवाद करनेकी प्रेरणा की। तदनुसार टॉनी साहबने बडे उत्साहसे इस ग्रंथका सम्पूर्ण इंग्रेजी अनुवाद तैयार किया, और कलकत्ताकी एसियाटिक सोसायटी ऑव बंगालने उसे प्रकाशित किया।

टॉनी साहबका मुख्य आधार, उक्त रामचन्द्र शास्त्रीद्वारा प्रकाशित आवृत्ति पर ही रहा, परंतु उन्होंने उपर्युक्त डॉ० ब्युल्हरवाली तथा प्रो० पीटर्सनवाली हस्तलिखित प्रतियोंका भी कुछ कुछ पुनरुपयोग किया और कहीं कहीं ठीक अर्थानुसन्धान प्राप्त करनेकी चेष्टा की। टॉनी साहबके मुकाबलेमें, रामचन्द्र शास्त्रीका गूजराती भाषान्तर सर्वथा निरुपयोगी और असम्बद्धप्राय माल्हम देता है।

प्रस्तुत आवृत्तिके सम्पादनमें प्रयुक्त सामग्री.

जिन प्रतियोंका उपयोग हमने इस आवृत्तिमें किया है उनका संकेतपूर्वक परिचय इस प्रकार है।

(१) A अहमदाबादके डेलाका उपाश्रय नामक प्रसिद्ध जैन उपाश्रयमें सुरक्षित जैन ग्रंथभण्डारकी संपूर्ण प्रति। [डिब्बा नं. ३०; प्रति नं. १४] इसको हमने A अक्षरसे संकेतित किया है। इस प्रतिके ५३ पत्र हैं जो दोनों तरफ लिखे हुए हैं। प्रतिके अन्तमें इस प्रकार संक्षिप्त पुष्पिका लेख है–"सं० १५०९ वर्षे फागुणसुदि ९ वार रवौ

पठता लपीः ॥ छ ॥ ॐनमो विना [यि] काय ॥" लिपिकार कोई अजैन पठता नामक मालूम देता है। लिपि जैननागरी है और अक्षर सुवाच्य तथा सुन्दर है। पाठ भी प्रायः शुद्ध है।

(२) B अहमदावादके उसी उपाश्रयकी दूसरी अपूर्ण प्रति। [डिब्बा नं. ५१, प्रति नं. ३५] इसका निर्देश हमने B अक्षरसे किया है। यह प्रति थोडी सी अपूर्ण है। इसके कुल ७१ पत्र हैं। अन्तके दो-एक पत्र नष्ट हो गये हैं, जिससे प्रस्तुत आवृत्तिके पृष्ठ १२१ की ५ वीं पंक्तिके पश्चात्से लेकर अन्ततकका ग्रंथभाग इसमें अनुपलब्ध है। इस प्रतिका यह अन्तभाग प्रायः तीन सौ वर्ष पहले ही नष्ट हो गया मालूम देता है। क्यों कि इसके विद्यमान अन्तके पत्र (७१) की अन्तिम पंक्तिके नीचे यह पद्य लिखा हुआ है--

संविग्नेनान्विपद्य तपगणपतिविजयसेनसूरीणाम्। श्रीरामविजयकृतिना चित्कोशे प्रतिरियं मुक्ता॥

इस पद्यका अर्थ यह है कि–तपागण (तपागच्छ) पति आचार्य विजयसेनसूरिके संविग्न शिष्य श्रीरामविजयने यह प्रति ज्ञानकोश (ग्रन्थभण्डार) में रक्खी।

तपागच्छीय पट्टावलियोंके अनुसार विजयसेनसूरिका स्वर्गवास विक्रम संवत् १६७१ में हुआ, अतः उनके शिष्य रामविजय प्रायः उसी समयमें विद्यमान होने चाहिये यह स्वतः सिद्ध है।

- अन्तिम पत्र अनुपलब्ध होनेसे इस प्रतिके लिखे जानेके समयके बारेमें कोई निश्चित विचार नहीं किया जा सकता; तो भी प्रतिकी स्थिति देखते हुए मालूम होता है कि यह प्रति भी करीब ५०० वर्ष जितनी पुरानी जरूर होगी। इस प्रतिका पाठ यद्यपि अशुद्धिबहुल है; तो भी कहीं कहीं इसका लेख बहुत शुद्ध और उपयुक्त मिल जाता है। इस प्रतिका किसीने पीछेसे कहीं कहीं संशोधन भी किया है और कई जगह पत्रोंके पार्श्वभागमें कुछ श्लोकादि भी लिख दिये हैं।

(३) P पाटणके सागरगच्छके उपाश्रयमें संरक्षित ग्रन्थभण्डारकी संपूर्ण प्रति। पत्र संख्या ८४। प्रथम पत्र और अन्तिम पत्रका एक-एक पार्श्व बिलकुल कोरा। इस प्रतिका नामनिर्देश हमने P अक्षरसे किया है। अन्तमें लेखकादिका सूचन करनेवाला कोई उल्लेख नहीं है। पत्रादिकी अवस्था देखते हुए कमसेकम ३–४ सौ वर्षकी पुरानी तो यह होगी ही। लेकिन, जिस आदर्श परसे यह प्रति नकल की गई है यह आदर्श बहुत पुरातन मालूम देता है। सम्भवतः ताडपत्रमय हो। क्यों कि इस प्रतिमें बहुतसी जगह विनष्टीभूत शब्दांश या पंक्त्यंश सूचित करनेके लिये इस प्रकारकी अक्षरशून्य रेखायें रख दी गई हैं जिनका तात्पर्य यह है कि जिस आदर्श परसे यह नकल की गई है उसमें ये शब्द जीर्ण-शीर्णादिके कारण नष्ट-भ्रष्ट होगये होने चाहिए। इस प्रतिके पाठभेदादिके संबंधमें आगे पर लिखा गया है।

(४) Po पूना, भांडारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मंदिरमें सुरक्षित, राजकीय ग्रंथसंग्रह–जो पहले डेकन कॉलेजमें रक्षित होनेसे, डेक्कनकॉलेज-संग्रह कहलाता था–की यह प्रति जिसका जिक्र ऊपर पीटर्सन साहबके उल्लेखके साथ हुआ है। इसका संग्रह नंबर ६१७, सन् १८८५–८६ है। पत्र संख्या ८१। इसके अन्तमें कोई लेखकादिका नाम नहीं है। प्रति बहुत पुरातन नहीं मालूम देती। अनुमानतः २००–२५० वर्ष जितनी पुरातन होगी। इसका सूचन हमने Po अक्षरसे किया है।

(५) D शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथने सं० १९४४ में, बम्बईसे इस ग्रंथका जो संस्करण प्रकट किया उसको हमने D संज्ञासे निर्दिष्ट किया है।

Da. Db. Dc. Dd. रामचन्द्र शास्त्रीने अपने संस्करणमें मुख्यतया ऊपर नं. ४ में उल्लिखित पूनावाली प्रतिका ही उपयोग किया है; लेकिन कुछ और भी त्रुटित और खंडित ऐसी दो-तीन प्रतियां उनको मिली थी जिन परसे उन्होंने कुछ पाठभेद संग्रह करनेका अव्यवस्थित उद्योग किया था और इन प्रतियोंकी उन्होंने A. B. C. D आदि संज्ञायें

रक्खीं थीं । इन प्रतियोंके पाठोंको भी हमने कहीं कहीं संगृहीत किया है और उनका क्रमानुसार Da. Db. Dc. Dd. इत्यादि अक्षरोंसे निर्देश किया है ।

(६) Pa पाटणके संघके भण्डारकी [डिब्बा नं. ५०, प्रति नं. ८] एक प्रति जिसमें सिर्फ प्रबन्धचिन्तामणिगत 'मुंजभोजप्रबंध' लिखा हुआ है । वास्तवमें यह प्रति है तो राजशेखरसूरिरचित 'प्रबन्धकोष' की, लेकिन इसके अन्तमें प्रबन्धचिन्तामणिका उक्त प्रबन्ध भी लिखा हुआ है । इस प्रतिकी कुल पत्र संख्या १०५ हैं जिसमें १ से ९१ पत्र तक प्रबन्धकोष लिखा हुआ है और शेषके पत्रोंमें उक्त प्रबन्ध है । यह प्रति विक्रम संवत् १४५८ में लिखी गई थी । इसके अन्तका पुष्पिका लेख इस प्रकार है–

"इति श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिते प्रबन्धचिन्तामणौ श्रीभोजराजश्रीभीमभूपयोर्नानावदातवर्णनो नाम द्वितीयः प्रकाशः ॥ छ ॥ ग्रं० ४६४ ॥ श्रीः ॥ छ ॥ संवत् १४५८ वर्षे प्रथम भाद्रपदशुदि ११ एकादश्यां तिथौ बुधवारे श्रीसागरतिलकसूरिणा स्वशिष्यपठनार्थं श्रीअणहिलपुरपत्तने प्रबन्धानि राजशेखरसूरिविरचितानि आलिलिखे ॥"

यह प्रति प्रायः शुद्ध और बहुत सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई है । इसका उपयोग हमने मुंज और भोजप्रबन्धवाले भागमें किया और इसे Pa अक्षरसे सूचित किया है ।

(७) Pb पूनाके उक्त राजकीय संग्रहमें, नं. ४५०, सन् १८८२–८३, की एक प्रति है जिसमें सिर्फ इस ग्रंथका द्वितीय प्रकाश–भोज-भीमभूपवर्णन नामका–लिखा हुआ है । इसके प्रान्तमें लेखक आदिका कुछ निर्देश नहीं है । अनुमान ३०० वर्ष जितनी पुरातन होगी । इसके कुल पत्र १९ हैं जिनमें १२ वां पत्र अप्राप्त है । इसका पाठ साधारण है लेकिन प्रबन्धान्तर्गत वर्णनोंका क्रम-विपर्यय और न्यूनाधिक्य बहुत अधिक पाया जाता है । इसका सूचन हमने Pb के संकेतसे किया है ।

(८) इस ग्रन्थके आदिके दो प्रकाशवाली १ प्रति, पाटणके तपागच्छके भण्डारमेंसे मिली [डिब्बा नं. ५७, प्रति नं. ५७] जिसके कुल १६ पत्र हैं । यह प्रति सं० १५२० की लिखी हुई है । इसका अन्तिम पुष्पिका लेख इस प्रकार है–

"संवत् १५२० वर्षे श्रावणशुदि १३ दिने तपागच्छनायक श्रीलक्ष्मीसागरसूरिशिष्य पं० ज्ञानहर्षगणिपादानां सा० सोनाकेन भा० रूडी प्रमुख कुटुंबयुतेन श्रीसिद्धांतभक्त्या लिखापितं ॥ छ ॥ श्रीसंघस्य कल्याणमस्तु ॥ छ ॥ श्रीः ॥"

इस प्रतिका पाठ प्रायः A आदर्शके समान है इस लिये इसको हमने कोई खास संज्ञा नहीं दी और सम्पादनमें कोई विशेष सहायता भी इससे नहीं ली गई ।

(९) पाटणके ऊपरवाले ही भण्डारमेंसे, पत्र संख्या १७ की एक प्रति [डिब्बा नं. ६६, प्रति नं. ११२] जिसमें, उपर्युक्त Pa आदर्शकी समान, सिर्फ मुंज-भोजप्रबन्धका हिस्सा लिखा हुआ है । इसका पाठ भी ऊपरवाले नं. ८ में सूचित आदर्शके समान ही पाया गया; इस लिये इसका भी कोई नामनिर्देश करना आवश्यक नहीं समझा ।

(१०) प्रो० सी. एच्. टॉनीने जो इस ग्रंथका इंग्रेजी भाषांतर किया है उसमें उन्होंने, मूल ग्रंथके पाठका संशोधन करनेका भी कुछ प्रयत्न किया है; और शास्त्री रामचन्द्रकी मुद्रित आवृत्तिके साथ, पूनावाली P प्रतिका तथा लंडनकी इन्डिया ऑफिसकी डॉ० ब्युल्हरवाली प्रतियोंका भी उपयोग कर कुछ पाठभेद, अपनी पुस्तककी पाद-टिप्पनीयोंमें उद्धृत किये हैं । लेकिन वे सब पाठभेद प्रायः हमारे इन संगृहीत आदर्शोंमें आ जाते हैं इस लिये हमने उनका पृथक् संकेतके साथ कोई निर्देश करना उपयुक्त नहीं समझा ।

प्राप्त आदर्शोंका वर्गीकरण.

इस प्रकार हमारे पास जो यह आदर्श-सामग्री उपस्थित हुई उसका परीक्षण करने पर हमें इसके ४ वर्ग मालूम दिये । १ ला वर्ग, A आदर्शका है जिसकी समानता प्रायः Po, D, Da और Dc आदर्शोंमें पाई जाती है ।

२ रा वर्ग, B आदर्शका है जिसकी समानता Db और Dd आदर्शोंके साथ है। ३ रा वर्ग, Pa और Pb का; और ४ था वर्ग, P का है।

इन वर्गोंमेंसे पहले और दूसरे वर्गमें तो परस्पर विशेष करके कुछ शब्दों और प्रतिशब्दोंका ही पाठभेद है और कुछ थोडेसे पद्योंकी न्यूनाधिकता मिलती है। ३ रा वर्ग, भोजप्रबन्धवाले प्रकरणोंमें कुछ विशेष रूपसे भेद प्रदर्शित करता है। इसमें भी Pa आदर्शकी अपेक्षा Pb आदर्श अधिक भिन्न है। इसमें कई प्रकरण, अन्यान्य आदर्शोंकी अपेक्षा आगे-पीछे लिखे हुए मिलते हैं इतना ही नहीं परंतु वे न्यूनाधिकरूपमें भी मिलते हैं।

P सञ्ज्ञक आदर्शकी विशेषता.

४ था वर्ग जो P आदर्शका है वह एक विषयमें सबसे भिन्नता और विशिष्टता रखता है। इस आदर्शमें सिद्धराज, कुमारपाल, वस्तुपाल-तेजपाल और अन्यान्य व्यक्तियोंके प्रशंसात्मक जो पद्यसमूह-सोमेश्वरदेव रचित कीर्तिकौमुदी नामक काव्यमेंसे-तत्तत्स्थलों पर, उद्धृत किया गया है वह अन्य किसी भी आदर्शमें उपलब्ध नहीं है। इन पद्योंकी संख्या कोई सब मिला कर १२० है। इतनी बडी पद्यसंख्याका इसमें प्राप्त होना; और, दूसरे सब आदर्शोंमें उसका सर्वथा अभाव मिलना; एक बहुत बडी समस्या उपस्थित करता है। क्या ये पद्य स्वयं ग्रंथकारने, पहले या पीछे, उद्धृत किये हैं या किसी अन्य लेखक द्वारा ये प्रक्षिप्त हैं ?। ग्रंथकार स्वयं यत्र तत्र ऐसे बहुतसे पद्योंका अवतरण करनेमें खूब अभ्यस्त हैं, यह तो, उनके इस ग्रंथका अवलोकन मात्र करने ही से, निर्विवादरूपसे, मान लेना पडता है। सोमेश्वरदेवकी कीर्तिकौमुदीमेंसे भी इसी प्रकार उद्धृत किये हुए दो-एक अन्य पद्योंका अवतरण, (देखो पृ० ४८, और ६३) और और आदर्शोंमें भी दिखाई देनेके कारण, ग्रंथकारके सन्मुख कीर्तिकौमुदी काव्य भी रखा हुआ होगा, इस बातको मान लेनेमें भी कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती। तो क्या ये सब पद्य भी उन्होंने ही अवतारित किये हैं ?। अगर उन्हों ही ने किये हैं तो फिर, केवल इस आदर्शको छोड कर, और और आदर्शोंमें भी ये क्यों नहीं मिलते ?। कोई विशेष साधन जब तक प्राप्त नहीं हो सकता, तब तक इस प्रश्नका निश्चित उत्तर देना अशक्य है। तो भी एक अनुमान जो हमें हो रहा है उसे पाठकोंके जाननेके लिये यहां निर्दिष्ट कर देते हैं। जैसा कि हम ऊपर, इस P प्रतिका परिचय देते हुए लिख आये हैं, कि यह प्रति, जिस आदर्श परसे उतारी गई है वह आदर्श बहुत पुराना होना चाहिए। अतः आदर्शके प्राचीन होनेमें तो हमें विश्वसनीय आधार प्राप्त होता है। इस प्राचीनत्वसे हमारा अभिप्राय स्वयं ग्रंथकारके समसामयिकत्वसे है। यदि यह प्रति, जैसा कि हम अनुमान करते हैं, ३-४ सौ वर्ष जितनी पुरानी है; तो, इसका मूल आदर्श, जो उस समय जीर्ण दशामें विद्यमान होना चाहिए, कमसे कम वह भी ३-४ सौ वर्ष जितना पुरातन होना चाहिए। यदि यह बात ठीक हो तो उस प्राचीन आदर्शका समय उतना ही पुरातन हो जायगा जितना ग्रंथकार मेरुतुङ्गाचार्यका है। मेरुतुङ्गाचार्यको प्रबन्धचिन्तामणिकी रचना समाप्त किये आज ६२८-२९ वर्ष हुए। हमारे अनुमानके मुताबिक उक्त प्राचीन आदर्शको भी इतने वर्ष तो सहज हो सकते हैं। इससे हम यह अनुमान करनेके लिये अनुप्रेरित होते हैं कि, इस आदर्शका जो मूल आदर्श होगा वह स्वयं मेरुतुङ्गाचार्यका, वह आदर्श होगा, जिसे या तो उन्होंने सबसे पहले तैयार किया हो; या सबसे पीछे तैयार किया हो। सबसे पहले तैयार करनेका तात्पर्य यह, कि पहले पहल ग्रंथकारने, जब ग्रंथकी रचना की, तब उन्होंने प्रसंगप्राप्त कीर्तिकौमुदीके ये सब पद्य, ग्रन्थगत वर्णनमें बहुत उपयुक्त समझकर, विपुलताके साथ उद्धृत कर लिये; लेकिन पीछेसे ग्रंथका पुनः संशोधन करते समय, इतने पद्योंका, एक साथ एक ही ग्रंथमेंसे उद्धरण करना मनमें ठीक न जंचा हो इस लिये उन्हें छोड कर, उस संशोधित आवृत्तिकी, और और नकलें करवाई गईं हों और उन्हींका सर्वत्र प्रचार किया गया हो। वह मूल प्रथमादर्श कहीं भण्डारमें ज्यों का त्यों पडा रहा हो, जिसके नाशकालमें, इस विद्यमान P आदर्शके लेखकने उसका पुनरवतार कर, इस रूपमें, उसे चिरजीवी बना दिया हो। दूसरा विकल्प जो

यह कि–या सबसे पीछे इस आदर्शकी सृष्टि हुई हो; तो उसका कारण यह हो सकता है कि पहला आदर्श जो ठीक तैयार हुआ उसकी अनेक नकलें तैयार हो कर सर्वत्र प्रचारमें आगई हों; और फिर पीछेसे, बहुत कुछ समयके बाद, ग्रंथकारने ग्रंथके कलेवरको विशेष पुष्ट बनानेके लिये, ये सब पद्य अपनी कोईएक प्रतिमें प्रविष्ट कर उसका एक नवीन और परिवर्द्धित संस्करण बनाना चाहा हो; लेकिन उसका कोई विशेष प्रचार न होकर वह ज्यों कि त्यों भण्डारहीमें पडी रही हो और उपर्युक्त अनुमानानुसार, P आदर्शके लेखकने उसका यह पुनरवतार कर लिया हो। इन दोनों विकल्पोंमेंसे कौन विकल्प विशेष बलवान् हो सकता है इसके लिये भी हमें कुछ कल्पना हुई है, लेकिन उसका यहां पर विवेचन करना ज्यादह गौरवरूप हो जायगा, इस लिये आगेके भागमें यथाप्रसङ्ग उसका भी दिग्दर्शन करा दिया जायगा। इससे एक यह खास बात भी सूचित होती है, कि दोनों विकल्पोंमेंसे यदि कोईएक विकल्प भी ठीक हो सकता है, तो उस परसे, इस P आदर्शका मूलादर्श स्वयं ग्रंथकारका एक आदर्श था, यह प्रमाणित हो सकता है।

इस P आदर्शकी नकल उतारने वालेने, पुरातन आदर्शकी लिपिको ठीक ठीक नहीं समझनेके कारण, अक्षरांतर करनेमें बहुत भूलें की हैं जिससे इसका पाठ बहुत कुछ अशुद्ध बन गया है; तो भी जहां अन्य आदर्शोंमें भ्रष्ट पाठ मिलता है या अयथोपयुक्त शब्द दिखाई देते हैं, वहां इस प्रतिमें बहुत शुद्ध पाठ और समुचित शब्द उपलब्ध होते हैं। यह बात भी इस आदर्शके विशिष्ट संशोधित होनेकी सूचना देती है।

पाठभेदोंके संग्रह करनेकी पद्धति.

पाठभेदोंके संग्रह करनेकी हमारी पद्धति यह है, कि व्याकरण या भाषाकी दृष्टिसे जो शब्द शुद्ध मालूम देते हैं उन्हीं शब्दोंका हम संग्रह करते हैं। सर्वथा अशुद्ध शब्दोंका या व्याकरणकी दृष्टिसे अपरूप पाठोंका, जैसा कि पश्चिमीय विद्वान् करते रहते हैं, हम संग्रह नहीं करते। अर्थानुसन्धानसे असंगत मालूम देने पर भी यदि व्याकरणकी दृष्टिसे शब्दप्रयोग शुद्ध मालूम देता है तो उसे हम पाठभेदके रूपमें संगृहीत कर लेते हैं। हां, जहां कहीं पाठमें बहुत कुछ गडबडी मालूम दे और अर्थसंगति ठीक न लगे, वहां हम, ऐसे सर्वथा अशुद्ध शब्दोंको और भ्रष्टरूपोंको भी पूर्णरूपसे संगृहीत कर लेते हैं। देश्य विशेषनामोंके शुद्ध अशुद्ध सब ही रूपोंका संग्रह करना आवश्यक समझते हैं।

हमारे इस संस्करणमें मुख्य आधारभूत A, B और P आदर्शके आदि और अन्तके पत्रोंका हाफटोन चित्र बनाकर इस पुस्तकके साथ लगाये जाते हैं, जिससे पाठकगण, इन पुरातन आदर्शोंकी अक्षराकृति-आदिका दर्शन भी प्रत्यक्षतया कर सकेंगे।

इस ग्रंथकी सम्पूर्ण संकलना कैसी होगी; और कौन कौन भागमें क्या क्या विषय रहेंगे; इसके लिये एक पृथक् पृष्ठपर पूरा विवरण दे दिया गया है जिसके अवलोकनसे पाठकोंको आगेके भागोंका किंचित् विषय-परिचय हो सकेगा।

अन्तमें, अहमदाबादके डेलाके भण्डारके तथा पाटणके भण्डारोंके संरक्षोंका, जिनके द्वारा हमको यह सामग्री प्राप्त हो सकी है, कृतज्ञतापूर्ण उपकार मान कर, इस 'किंचित् प्रास्ताविक'को पूर्ण करते हैं।

वि० सं० १९८८, सांवत्सरिक पर्व.
विश्वभारती. शान्तिनिकेतन। }

जिन विजय

॥ सिंघीजैनग्रन्थमालासम्पादकप्रशस्तिः ॥

स्वस्ति श्रीमेदपाटाख्यो देशो भारतविश्रुतः । रूपाहेलीति सन्नाम्नी पुरिका तत्र सुस्थिता ॥
सदाचार-विचाराभ्यां प्राचीननृपतेः समः । श्रीमच्चतुरसिंहोऽत्र राठोडान्वयभूमिपः ॥
तत्र श्रीवृद्धिसिंहोऽभूत् राजपुत्रः प्रसिद्धिमान् । क्षात्रधर्मधनो यश्च परमारकुलाग्रणीः ॥
मुञ्ज-भोजमुखा भूपा जाता यस्मिन्महाकुले । किं वर्ण्यते कुलीनत्वं तत्कुलजातजन्मनः ॥
पत्नी राजकुमारीति तस्याभूद् गुणसंहिता । चातुर्य-रूप-लावण्य-सुवाक्सौजन्यभूषिता ॥
क्षत्रियाणीप्रभापूर्णां शौर्यदीप्तमुखाकृतिम् । यां दृष्ट्वैव जनो मेने राजन्यकुलजा त्वियम् ॥
सूनुः किसनसिंहाख्यो जातस्तयोरतिप्रियः । रणमल्ल इति ह्यन्यद् यन्नाम जननीकृतम् ॥
श्रीदेवीहंसनामात्र राजपूज्यो यतीश्वरः । ज्योतिर्भैषज्यविद्यानां पारगामी जनप्रियः ॥
अष्टोत्तरशताब्दानामायुर्यस्य महामतेः । स चासीद् वृद्धिसिंहस्य प्रीतिश्रद्धास्पदं परम् ॥
तेनाथाप्रतिमप्रेम्णा स तत्सूनुः स्वसन्निधौ । रक्षितः, शिक्षितः सम्यक् कृतो जैनमतानुगः ॥
दौर्भाग्यात्तच्छिशोर्बाल्ये गुरु-तातौ दिवंगतौ । मुग्धीभूय ततस्तेन त्यक्तं सर्वं गृहादिकम् ॥

तथा च–

परिभ्रम्याथ देशेषु संसेव्य च बहून् नरान् । दीक्षितो मुण्डितो भूत्वा कृत्वाऽऽचारान् सुदुष्करा
ज्ञातान्यनेकशास्त्राणि नानाधर्ममतानि च । मध्यस्थवृत्तिना येन तत्त्वातत्त्वगवेषिणा ॥
अधीता विविधा भाषा भारतीया युरोपजाः । अनेका लिपयोऽप्येवं प्रत्न-नूतनकालिकाः ॥
येन प्रकाशिता नैका ग्रन्था विद्वत्प्रशंसिताः । लिखिता बहवो लेखा ऐतिह्यतथ्यगुम्फिताः ॥
यो बहुभिः सुविद्वद्भिस्तन्मण्डलैश्च सत्कृतः । जातः स्वान्यसमाजेषु माननीयो मनीषिणाम् ॥
यस्य तां विश्रुतिं ज्ञात्वा श्रीमद्गान्धीमहात्मना । आहूतः सादरं पुण्यपत्तनात्स्वयमन्यदा ॥
पुरे चाहम्मदाबादे राष्ट्रीयशिक्षणालयः । विद्यापीठमिति ख्यातः प्रतिष्ठितो यदाऽभवत् ॥
आचार्यत्वेन तत्रोच्चैर्नियुक्तो यो महात्मना । विद्वज्जनकृतश्लाघे पुरातत्त्वाख्यमन्दिरे ॥
वर्षाणामष्टकं यावत् सम्भूष्य तत्पदं ततः । गत्वा जर्मनराष्ट्रे यस्तत्संस्कृतिमधीतवान् ॥
तत आगत्य सँल्लग्नो राष्ट्रकार्ये च सक्रियम् । कारावासोऽपि सम्प्राप्तः येन स्वराज्यपर्वणि ॥
क्रमात्तस्माद् विनिर्मुक्तः प्राप्तः शान्तिनिकेतने । विश्ववन्द्यकवीन्द्रश्रीरवीन्द्रनाथभूषिते ॥
सिंघीपदयुतं जैनज्ञानपीठं यदाश्रितम् । स्थापितं तत्र सिंघीश्रीडालचन्दस्य सूनुना ॥
श्रीबहादुरसिंहेन दानवीरेण धीमता । स्मृत्यर्थं निजतातस्य जैनज्ञानप्रसारकम् ॥
प्रतिष्ठितश्च यस्तस्य पदेऽधिष्ठातृसञ्ज्ञके । अध्यापयन् वरान् शिष्यान् शोधयन् जैनवाङ्मयम् ॥
तस्यैव प्रेरणां प्राप्य श्रीसिंघीकुलकेतुना । स्वपितृश्रेयसे चैषा ग्रन्थमाला प्रकाश्यते ॥
विद्वज्जनकृताह्लादा सच्चिदानन्ददा सदा । चिरं नन्दत्वियं लोके जिनविजयभारती ॥

श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचितः

॥ प्रबन्धचिन्तामणिः ॥

करतलेन[1] संस्पृश्य, हा दैवमित्युदीरयन् घाते पातिते[2] सति दुर्गतो यथाप्राप्त्या रत्नानि लभते[(1)] । स वृत्तान्तमसुं तस्मात्सम्यगवगम्य विक्रमेण तद्दैन्यं कारयितुमक्षमस्तान्युपकरणानि सहादाय[3] रत्नखननार्थं खनीमध्ये प्रहारोद्यतं विक्रममभिदधे—'यत्[4] कश्चिदवन्त्याः समागतो वैदेशिकः 'स्वगृहकुशलोदन्तं[5] पृष्टो भवन्मातुः पञ्चत्वमाचख्यौ' । तत्तत्क्षवज्रशूचीनिभं वचो निशम्य ललाटं करतलेनाहत्य, हा दैवमित्युच्चरन् खनित्रं करतलाच्चिक्षेप । तेन खनित्राग्रेण विदारितायां भुवि देदीप्यमानं सपादलक्षमूल्यं रत्नं प्रादुरासीत्[6] । [7]भट्टमात्रस्तदादाय विक्रमेण सह प्रत्यावृत्तः । तच्छोकशङ्कुशङ्कापनोदाय[8] खनीवृत्तान्तज्ञापनपूर्वं[9] तत्कालमेव मातुः कुशलमुक्तवान् । विक्रमः[10] सहजां लोलुभतां विस्मृत्य भट्टमात्रस्य क्रुधा तत्करात्द्रत्नमाच्छिद्य पुनः खनी कण्ठे प्राप्तः ।

२. धिग् रोहणं गिरिं दीनदारिद्र्यव्रणरोहणम्[11] । दत्ते हा दैवमित्युक्ते रत्नान्यर्थिजनाय यः ॥ २

इत्युदीर्य सकललोकप्रत्यक्षं तत्रैव तद्रत्नमुत्सृज्य पुनर्देशान्तरं [12]परिभ्राम्यन्नवन्तिपरिसरे[13] प्राप्तः । पटुपटहध्वनिमाकर्ण्य [14]वृत्तान्तमवबुध्य च तं छुप्तवान् । तेन समं स राजमन्दिरे समायातः । तस्मिन्नेवाष्टे मुहूर्ते अहोरात्रप्रमिते राज्ये सचिवैरभिषिक्तो दीर्घदर्शितयेति दध्यौ—यदस्य राज्यस्य[15] प्रबलः[16] कोऽप्यसुरः[17] सुरो वा क्रुद्धः सन् प्रतिदिनमेकैकं नृपं संहरति । नृपाभावे च[18] देशविनाशं करोति । अतो भक्त्या[19] शक्त्या वा तदनुनयः समुचित इति—नानाविधानि भक्ष्यभोज्यानि[20] निर्माप्य,[21] प्रदोपसमये चन्द्रशालायां सर्वमपि सज्जीकृत्य, निशारात्रिकावसरानन्तरमङ्गरक्षैर्नृपैस्तत्र[22] भारशृङ्खलायां निहित[23]पल्यङ्के निजपट्टदुकूलाच्छादितमुच्छीर्षकं[24] नियोज्य स्वयं प्रदीपच्छायामाश्रितः[25] कृपाणपाणिर्धैर्य[26]निर्जितजगत्त्रयो दिगवलोकनपरो यावदास्ते; तावन्महानिशीथसमये वातायनद्वारेण प्रथमं धूमम्, ततो ज्वालाम्, ततः साक्षात्प्रेतप्रतिरूपमिव करालं वेताल[27]मालोकितवान् । स च बुभुक्षाक्षामकुक्षिस्तानि भोज्यानि यदृच्छयोपभुज्य,[28] गन्धद्रव्यैश्च स्वशरीरं विलिप्य, ताम्बूलास्वादनेन[29] परितुष्टस्तत्र पल्यङ्के समुपविश्य श्रीविक्रमं प्राह—'रे मनुज[30] ! अहमग्निवेतालनामा देवराज[31]प्रतीहारतया प्रतीतः[32] प्रतिदिनमेकैकं नृपं निहन्मि[33] । किं तु[34] तवानया [35]भक्त्या प्रीणितेन मयाऽभयदानपूर्वं तव राज्यं प्रदत्तम् । परमेतानि[36] भक्ष्यभोज्यानि[37] मम सदैवोपढौकनीयानि[38] ।' इत्थमुभाभ्यामपि[39] प्रतिपन्ने कियत्यपि गते काले श्रीविक्रमेण राज्ञा निजमायुः पृष्टः—'नाहं वेद्मि, किं तु स्वस्वामिनं विज्ञप्य[40] भवन्तं ज्ञापयिष्यामि[41]' इत्युक्त्वा गतः । पुनरन्यस्यां निशि समेतः—'महेन्द्रेण त्वं[42] सम्पूर्णवर्षशतायुरादिष्ट' इति तं जगौ । स

1 A करतालेन । 2 A पतिते । 3 Da समादाय; Db आदाय । 4 Da तात कश्चित्; Db देवः कश्चित्। B ततः क० । 5 AD स्वगृहे । 6 Db आदर्शे पुस्तकाद्वाक्यादग्रे 'भाग्येन किं न घटते यतः—

(१) यद्यपि कृतसुकृतशतः प्रयाति गिरिकन्दरान्तरेषु नरः । करकलितदीपकलिका तथापि लक्ष्मीस्तमनुसरति ॥' एतावानधिकः पाठः ।
7 B स भट्ट० । 8 B शोकशंकापनोदाय; Da-b शोकापनोदाय । 9 AB ज्ञापना० । 10 Da विक्रमस्तदानीं । 11 Da प्ररोहणं । 12 B ०भ्रमन्० । 13 D परिसरं; B ०देशपरिसरे । 14 A B तं वृत्ता० । 15 Db राज्ये; B राज्ञा । 16 B सार्वभौमः । 17 B कोपि ऽसुरः सुरो वा; P कोपि सुरो असुरो वा । 18 D 'च' नास्ति । 19 A 'शक्त्या' नास्ति; B शक्त्याशक्त्या वा; Da-b यथाशक्त्या भक्त्या वा । 20 P भक्ष्यखाद्यानि । 21 P विधाप्य; Dc निर्माय । 22 D ०र्नृपैस्तत्र । 23 AP निहितः । पर्यं० । 24 A ०मुच्छीर्षकं । 25 AD आश्रित्य । 26 B निर्जितजयविजयो । 27 करालवेतालं । 28 A भुंज्य । 29 B ०स्वादेन । 30 B मनुष्य; P मनुष्य । 31 P देवराजेन । 32 P विहितः । 33 BP हन्मि । 34 BP 'किंतु' नास्ति । 35 BP ऽत्यन्तभक्त्या । 36 Da-b ०एतद्० । 37 BP ०भोज्यादि । 38 BP ०नीयम् । 39 P 'अपि' नास्ति । 40 D विज्ञाप्य । 41 D विज्ञाप०; Da विज्ञप० । 42 D 'त्वं' नास्ति । 43 P विनानान्यत्र 'संपूर्णं' नास्ति ।

राज्ञा[1] मित्रधर्ममधिकमधिरोप्य[2] इत्युपरुद्धः[3]–'यन्महेन्द्रपार्श्वादेकेन[4] हायनेन[5] हीनमधिकं वा[6] वर्षशतं कारयेति[7]'। स तदङ्गीकृत्य भूयोऽभ्युपेतः [8]'सन्निति वाचमुवाच[9]–'महेन्द्रेणापि न[10] नवनवतिनैकोत्तरं[11] वर्षशतं[12] भवति'। इति[13] निर्णये ज्ञाते, यावत्परस्मिन् दिने तद्योग्यं भक्ष्यभोज्यादिपाकं[14] निषिध्य[15], नृपः संग्रामसज्जो भूत्वा निशि तस्थौ। तावत्तत्रैव रीत्या[16] समुपागतः सन्[17] [18]तद्भोज्यादिकमवीक्ष्य क्रुद्धो राजानमधिचिक्षेप[20]। तयोश्चिरं [21]द्वन्द्वयुद्धे जायमाने सुकृतसहायेन राज्ञा तं [22]पृथ्वीतले पातयित्वा, हृदि चरणमारोप्य–'इष्टं दैवतं स्मरे'त्यादिष्टः[23] स नृपं जगौ–'तवाद्भुतसाहसेनाहं[24][25] परितुष्टोऽस्मि[26][27]; यत्कृत्यादेशकारी अग्निवेतालनामाहं तव सिद्धः[28]'। एवं निष्कण्टकं तस्य राज्यमजनि। इत्थं तेन[28] परा[29]क्रमाक्रान्तदिग्वलयेन[30] षण्णवति प्रतिनृपतिमण्डलानि स्वभोगमानिन्ये[31]।

३. वन्यो[32] हस्ती [33]स्फटिकघटिते भित्तिभागे[34] स्वबिम्बं दृष्ट्वा दूरात्प्रतिगज इति त्वद्द्विषां मन्दिरेषु।
हत्वा[35] कोपाद्गलितरदनस्तं पुनर्वीक्ष्य[36]माणो मन्दं मन्दं स्पृशति करिणीशङ्कया साहसाङ्कः[37] ॥ ३

[38]कालिदासाद्यैर्महाकविभिरित्थं[38] संस्तूयमानश्चिरं प्राज्यं साम्राज्यं[39] बुभुजे।

साम्प्रतमवसरायातां श्रीकालिदास[40]महाकवेरुत्पत्तिं संक्षेपतो[41] ब्रूमः।*

२) अवन्त्यां पुरि श्रीविक्रमादित्यराज्ञः[42] सुता प्रियङ्गुमञ्जरी। साऽध्ययनाय [43]वररुचिनाम्नः पण्डितस्य समर्पिता[44]। सा प्राज्ञतया सर्वाणि शास्त्राणि त[45]त्पार्श्वे कियद्भि[46]र्वासरैरधीत्य, यौवनभरवर्तमाना[47] जनकं नित्यमाराधयन्ती, कदाचिद्वसन्तसमये [48]वर्तमाने गवाक्षे सुखासनासीना[49], मध्यन्दिनप्रस्तावे ललाटन्तपे तपने पथि सञ्चरन्तमुपाध्यायमालोक्य वातायनच्छायासु[50] विश्रान्तं तमुवाच। परिपाकपेशलानि सहकारफलानि दर्शयन्ती तं [51]तल्लोलुभमवबुध्य–'अमूनि फलानि शीतलान्युष्णानि वा तुभ्यं रोचन्ते'–इति तद्वचनचातुरीतत्त्वमनवबुध्य 'तान्युष्णान्येवाभिलषामी'ति तेनोक्ते [52]तदुपढौकितवस्त्राञ्चले तिर्यक् तानि मुमोच। [53]भूतलपाताद्रजोऽवगुण्ठ-

---

1 B राजा। 2 P ०धर्ममधिरोप्य। 3 AD ०रुध्य; Da नास्ति। 4 Da आमहान्महेन्द्र०। 5 A नास्ति। 6 AD 'अधिकं वा' नास्ति। 7 B नास्ति। 8 A 'सन्' नास्ति। 9 AD 'वाचम्' नास्ति। 10 A नास्ति। 11 P नवति०। 12 B शतं; P श (श?) तं। 13 Db भवतीति कथितमिति। 14 B ०भोज्यादिकं; P भोज्यादिकं पाकं। 15 P निषेध्य। 16 D पूर्वरीत्या। 17 AD नास्ति; D स नृपं जगौ। 18 P 'तद्' नास्ति। 19 AD नास्ति। 20 D ०क्षेप च। 21 B ०चिरद्वन्द्व०; P तयोर्द्वन्द्व०। 22 B पृथिवी०। 23 अत्र Db आदर्शे–'आदिष्टः सन् अहो अस्य करीघटाविघट्टनैकपंचाननस्य महासाहसम्। धाष्टर्येन किं न जायते। यतः—

(२) सात्त्विकतामवृत्तीनां प्रतिज्ञातार्थकारिणाम्। प्रभविष्णुर्न देवोऽपि किं पुनः प्राकृतो जनः॥ एवं विमृश्य' एतावानधिकः पाठः। 24 AD समुनाद्भुत०। 25 AD 'अहं' नास्ति। 26 P तुष्टो। 27 BP 'अस्मि' नास्ति। 28 BP तेन राज्ञा। 29 B परि०। 30 P ०दिग्वलयेन; Dc ०क्रान्तमण्डलेन। 31 B स्वभोगतां निन्यिरे। 32 P विज्ञे। 33 AD स्फुटिक०। 34 P भित्तिभागे। 35 P हित्वा। 36 P वीक्ष०। 37 ADP साहसाङ्क। * एष द्वितारकान्तर्गतः पाठः ADP आदर्शेषु नोपलभ्यते। 38 P कालिदासैर्भिः कविभिरित्थं। 39 P राज्यं। 40 P कालिदासकवे०। 41 B संक्षेपात्। 42 B विक्रमादित्यसुता; P ०दित्यस्य सुता। 43 BP वेदगर्भनाम्नः। 44 Dd प्रदत्ता। 45 B तस्य। 46 B कियद्०वासरै०। 47 B यौवनभरे वर्तमाने; P यौवने भरे वर्तमाना। 48 P प्रवर्त०। 49 P सुखासीना। 50 ०च्छायाविश्रान्तं। 51 P तत्र लो०। 52 तदः किञ्चिदुपढौ०। 53 P भूतलपतितानि रजो०।

तानि करतलाभ्यामादाय, स[1] मुखमारुतेन[2] तद्रजोऽपनयन्, राजकन्यया 'सोपहासम[3]भिदधे-'किमत्युष्णान्यमूनि वदनवातेन[4] शिशिरीकुरुषे[5]?' इति तस्याः सोपहासवचसा सामर्षः स द्विजः प्राह-'रे विदग्धमानिनि! गुरुवितर्कपराया भवत्याः पशुपाल एव पतिरस्तु' इति[6] तच्छापं श्रुत्वा तयोक्तं-'यस्तव त्रैविद्यस्याप्यधिकविद्यतया[7] परमगुरुस्तमेव विवाहयिष्यामि।' सेति प्रतिज्ञालवती। अथ श्रीविक्रमे[8] तदुचितप्रवरवरचिन्तासमुद्रमग्ने[9] स पण्डितः कदाचिदभिलषितवरनिवेदनोत्सुकीकृतराजशासनादरण्यानीमवगाहमानोऽतितृष्णातरलितः सर्वतः सर्वतोमुखा[10]भावात् पशुपालमेकमालोक्य जलं याचितवान्। तेनापि 'जलाभावाद्दुग्धं पिबे'त्युक्त्वा 'करचंडी[11] विधेही'त्यभिहिते सर्वेष्वभिधानेषु[12] अभिधानमिदमश्रुतचरमाकर्ण्य[13] चिन्ताचान्तस्वान्तः स्वहस्तं तन्मस्तके दत्त्वा महिष्यास्तले निवेश्य[14] करचंडीसञ्ज्ञां करतलयुगलयोजनां कारयित्वा आकण्ठं पयः पायितः। स तं[15] मस्तकहस्तदानात् करचंडीविशेषशब्दज्ञापनाच्च गुरुप्रायं [16]मन्यमानस्तस्याः समुचितपतिमवगम्य महिषीपरिहारात्तं निजं सौधमानीय षण्मासीं यावत्तद्वपुःपरिकर्मणापूर्वं[17] 'ॐ नमः शिवाय' इत्याशीर्वादाध्यापनं कारितः। षड्भिर्मासैस्तस्य तान्यक्षराणि कण्ठपीठस्थितान्यवगम्य, शुभे मुहूर्ते कृतशृङ्गारः स पण्डितेन नृपसभां नीतो नृपं प्रति सदभ्यस्तमाशीर्वादं सभाक्षोभवशाद् 'उशरट' इत्यक्षरैर्जगौ। तस्य[18] विसंस्थूलवचसा[19] विस्मितस्य[20] नृपतेरसतीं[21] तच्चातुरीमारोपयितुकामः स[22] पण्डितः—[23]

४. [24]"उमया सहितो रुद्रः शङ्करः शूलपाणिभृत्। रक्षतु त्वां महीपाल टङ्कारबलगर्वितः॥ ४

इति विदितेन[25] श्लोकेन तत्पाण्डित्यगम्भीरतां वचनविस्तरेण व्याख्यातवान्। तत्प्रत्ययप्रीतेन नृपतिना स[26] महिषीपालः स्वां[27] पुत्रीं परिणायितः। पण्डितोपदिष्टं सर्वथा मौनमेवालम्ब[28]मानो राजकन्यकया[29] तद्वैदग्ध्यजिज्ञासया नवलिखितपुस्तकस्य शोधनायोपरुद्धः। करतले पुस्तकं विन्यस्य तदक्षराणि बिन्दुमात्रारहितानि नखच्छेदिन्या[30] केवलान्येव कुर्वन् राजपुत्र्या मूर्खोऽयमिति निर्णीतः। ततःप्रभृति जामातृशुद्धिरिति सर्वतः प्रसिद्धिरभूत्। कदाचिच्च[31] चित्रभित्तौ महिषीनिवहे दर्शिते सति प्रमोदात्स्वप्रतिष्ठां विस्मृत्य तदाह्वानोचितानि विकृतिवचनान्युच्चरन्महिषीपाल इति तया निश्चिक्ये। स तां तदवज्ञामाकलय्य कालिकां[34] देवीं विद्वत्ताकृते आरराधं। पुत्रीवैधव्य भीतेन राज्ञा निशि च्छद्मना दासीं[36] प्रहित्य, तवाहं तुष्टास्मीत्यभिधाय, यावत्स उत्थाप्यते तावद्विलक्षभीता कालिकैव देवी प्रत्यक्षीभूय तमनुजग्राह। तद्वृत्तान्तावबोधात्प्रमुदितया राजकन्यया तत्रागत्य 'अस्ति कश्चिद्वाग्विशेषः' इत्यभिहिते, स तदैव कालिदासनाम्ना प्रसिद्धः

---

1 D स्व। 2 P मारुतेन॰। 3 BP 'सोपहासम्' नास्ति। 4 P वदनमारुतैः। 5 P कुरुषे॰। 6 B 'इति तत्' नास्ति। 7 A त्रैविद्यस्याप्यधिकतया; D ॰प्यधिको विद्यया; P ॰अधिकविद्यया। 8 B विक्रमे। 9 Db ॰एवा॰। 10 A सर्वतो मनुष्याभा॰; D सर्वतो मूर्खाभा॰। 11 D करचडीं। 12 Da अभिधानेष्विदं। 13 AD अश्रुतमाकर्ण्य। 14 AD 'च' नास्ति। 15 AD मस्तके। 16 D विना नास्त्यन्यत्र 'मन्यमानः'। 17 D ॰कर्मपूर्वं। 18 B विहाय नास्त्यन्यत्र। 19 B ॰स्थूलेन वचसा। 20 A तस्य भूपतेः; P तस्य विस्मितस्य भूपतेः। 21 Db मनसि असतीं। 22 B विनान्यत्र न। 23 D पण्डितः प्राह। 24 B आदर्शेऽस्य श्लोकस्य केवलं प्रथमः पाद एव उपलभ्यते। P आदर्शे उत्तरार्धमेतादृशम्—'रक्षतु तव राजेन्द्र टणत्कारं यशः।'; Da-b रक्ष तावत् तव॰। 25 BP निवेदितेन। 26 AP हि। 27 A नास्ति। 28 A मौनममायलम्ब॰। 29 AP कन्यया। 30 Da नखछेदिन्या, Dd छेदिन्या; Ds नास्ति। 31 AD महिषी पाल एव। 32 AD कदाचिच्चित्र॰। 33 AD नास्ति। 34 BP कालिका॰। 35 Da b [illegible] गुपविष्टः। न भुंक्ते। दिनाष्टकं जातं। 36 Da-b कालिको नाम्नीं दासीं। 37 B कालिकाप्रसाद॰।

कुमारसम्भवप्रभृतिमहाकाव्यत्रयषट्प्रबन्धान्[1] रचयामास। इति कालिदासोत्पत्तिप्रबन्धः[*] ॥ १ ॥

३) अन्यदा[2] तन्नगरवास्तव्यो दान्ताभिधानश्रेष्ठी[3] सभासंस्थितं विक्रमार्कमुपायनपाणिरुपागत्य प्रणामपूर्वकं[4] विज्ञपयामास–'स्वामिन्! मया शुभे मुहूर्त्ते प्रधानवर्द्धकि[5]भिर्धवलगृहं कारितम्। तत्र महतोत्सवेन प्रवेशः कृतः। यावदहं तत्र निशीथे पल्यङ्क[6]स्थितः[7] सुप्तजाग्रदवस्थया तिष्ठामि, तावत्, पतामीत्याकस्मिकीं गिरं[8] निशम्य, भयभ्रान्तो मा पतेत्युदीरयंस्तदैव पलायनमकार्षम्। तस्य धवलगृहस्य सम्बन्धे[9] नैमित्तिकैः[10] स्थपतिभिश्च यथावसरमर्हणादिभिः[11] सत्कारैर्वृथादण्डितः। इत्यर्थे देवः प्रमाणम्'। तमुदन्तं सम्यगवधार्य तदुक्तं तद्धवलगृहमूल्यं लक्ष[12]त्रयं तस्मै प्रदाय सन्ध्यायां[13] सर्वावसरानन्तरं तस्मिन्नात्मीयीकृते[14] सौधे श्रीविक्रमः सुखं[15] प्रसुप्तः। तामेव पतामीति गिरमाकर्ण्यासमसाहसिकतया सत्वरं पतेत्युदीरयन् समीपे[16] पतितं सुवर्णपुरुषं प्राप। इत्थं [सुवर्ण] पुरुषसिद्धिः ॥ २ ॥

४) अथान्यस्मिन्नवसरे[17] कश्चिद्दुर्विधः पुरुषः[18] करकृतलोहमयकृशतर[19]दरिद्रपुत्रको द्वाःस्थनिवेदितो नृपं प्राह–'स्वामिन्! भवता नाथेन प्रथितायामवन्त्यां सर्वाण्यपि वस्तूनि सत्वर[20]मत्र विक्रयं यान्ति लभन्ते[21] चेति प्रसिद्धिं[22] बुद्ध्वा[23] चतुरशीतिसंख्येषु चतुःपथेष्वहोरात्रं विक्रयाय दरिद्रपुत्रको भ्रामितोऽपि केनापि न गृहीतः। प्रत्युताहं निर्भर्त्सितः। इति नगर्यां यथावस्थितं कलङ्कं महाराज्ञे विज्ञप्य यथागतं व्रजामीत्यापृच्छन्नस्मि[24]'। तदैव तं महान्तं कलङ्कपङ्कं पुर्याः पर्यालोच्य दीनारलक्षं तस्मै प्रदाय नृपस्तं दरिद्र[25]लोहपुत्रकं कोशे निवेशयामास[26]। तस्यामेव निशि[27] प्रथमयामे सुखप्रसुप्तस्य[28] राज्ञः समीपे गजाधिष्ठातृदैवतम्[29], द्वितीययामे हयाधिष्ठातृदैवतम्, तृतीययामे लक्ष्मीश्चाविर्भूय 'महाराज्ञ[30] दारिद्र्यपुत्रके क्रीते नास्माकमिहावस्था[31]नमुचितमि'त्यापृच्छ्य, राज्ञां[32] साहस[33]भङ्गो माभूदित्यनुज्ञातानि तानि[34] जग्मुः। चतुर्थयामे तु[35] कश्चिदुदारपुरुषो दिव्यतेजोमयमूर्त्तिः प्रादुर्भूय 'अहं सत्त्वनामा भवन्तमापृच्छे[36]' इत्युदिते करतलेन नृपः कृपाणिकामादाय यावदात्मघाताय व्यवस्यति तावत्तेनैव करे गृहीत्वा तुष्टोऽस्मीत्यभिधाय स्खलितः। गजा[37]द्यधिष्ठातृणि त्रीणि दैवतानि प्रत्यावृत्य नृपं प्रोचुः–'गमनसङ्केतव्याघातिना सत्त्वेन [38]विमलस्थानं त्वां विहाय नास्माकं गमनमुचितमि'ति तान्यप्ययत्नं[39] तस्थुः।

[१] †अर्थास्तावद् गुणास्तावद् तावत्कीर्तिः समुज्ज्वला। यावत्खेलसि सत्त्व त्वं चित्तपत्तनमध्यमः(गः) ॥
[२] †राज्यं यातु श्रियो यान्तु यातु श्लोकोऽपि लोकतः। न ते गमनमाजीवमनुमन्यामहे वयम् ॥

इति विक्रमादित्यसत्त्वप्रबन्धः‡ ॥ ३ ॥

1 B कुमारसंभवमहाकाव्यत्रयप्रभृतीन् षट्०; P कुमारसंभवादि षट्; Dc ०महाकाव्यप्रबन्धान्। * एतत्प्रकरणसमाप्तिवाक्यं ADP आदर्शेषु नोपलभ्यते। 2 Dc अथान्यदा। 3 B ०प्रवरश्रेष्ठी। 4 P ०पूर्वं। 5 A वार्द्धकि; B वर्द्धकि। 6 B पर्यंके। 7 Db ०स्थितः पुरुषमेकमवलोक्य सुप्त०। 8 B नास्ति। 9 D सम्बन्धि। 10 P नैमित्तिक०। 11 D ०सत्महीनादिभिः; Da ०सरं महादानादिभिः सत्कारैश्च। 12 BP नास्ति। 13 AD सन्ध्यासर्वा०; P सन्ध्याह्नसर्वा०। 14 A ०आत्मीयकृते; B ०आत्मीकृते। 15 BP सुख०। 16 A 'समीपे' नास्ति। 17 ABD अथान्यस्मिन्नव०। 18 AD दुर्विधपुरुष०; P दुर्विदग्धः पुरुषः। 19 B ०तर०। 20 B 'सत्वरं' नास्ति। 21 B लभते; D लभ्यन्ते; P लभ्यते। 22 B प्रसिद्धं। 23 P श्रुत्वा। 24 B ०पृच्छमानोऽस्मि। 25 AD 'दरिद्र' नास्ति। 26 B संस्थापितवान्। 27 P निशायां। 28 BP प्रसुप्तराज्ञः। 29 D राज्या०। 30 B महाराजा। 31 B ०स्थान०। 32 राज्ञः०। 33 B साहसस्य। 34 BP नास्ति। 35 D च; AP नास्ति। 36 D भवन्तमापृच्छे अयं स्थितो गन्तुमापृच्छे। 37 A गजाधिष्ठा०। 38 ABP विमलस्था०। 39 A ०पयमत्र। † केवलं P आदर्शे पूर्वमौ द्वौ श्लोकौ लिखितौ लभ्येते। ‡ BP आदर्शौ विहाय नान्यत्र प्रकरणसमाप्तिसूचकमिदं वाक्यम्।

४) अथान्यस्मिन्नवसरे सभास्थितं श्रीविक्रमं सामुद्रिकशास्त्रवेदी कश्चिद्वैदेशिको[1] द्वाःस्थनिवेदितः प्रविश्य नृपलक्षणानि निरीक्ष्यमाणः शिरोधूननपरो, [2]नृपेण स विषादकारणं पृष्टः, ऊचे-'देव ! त्वां[3] सर्वापलक्षणनिधिमपि षण्णवतिदेशसाम्राज्यलक्ष्मीं भुञ्जानमवेक्ष्य सामुद्रिकशास्त्रे[4] निर्वेदपरोऽभवम्। तत्किमपि कर्बुरास्त्रं न पश्यामि यत्प्रभावेण त्वमपि राज्यं कुरुषे[5]'। इति तद्वाक्यानन्तरमेव[6] कृपाणिकामाकृष्य[7] यावदुदरे निधत्ते तावत्तेन 'किमेतदि'ति पृष्टः श्रीविक्रमः प्राह-'उदरं विदार्य तव[8] तद्विधमस्त्रं[9] दर्शयिष्यामी'ति वदन्, 'द्वात्रिंशतोऽधिकमिदं[10] सत्त्वलक्षणं तव[11] नावगतमि'ति पारितोपिकदानपूर्वकं नृपस्तं विससर्ज। इति सत्त्वपरीक्षाप्रबन्धः[†] ॥ ४ ॥

५) अथ [12]कस्मिँश्चिदवसरे, [13]परपुरप्रवेशविषयाँ[14] निराकृताः[15] पराः[16] सर्वा अपि विफलाः कला इति निशम्य तदधिगमाय श्रीपर्वते भैरवानन्दयोगिनः समीपे श्रीविक्रमस्तं चिरमाराराध। तत्पूर्वसेवकेन केनापि[17] द्विजातिना [[‡]राज्ञोऽग्रे इति कथितम्-यत्त्वया] 'मां विहाय परपुरप्रवेशविद्या गुरोर्नादेया।' इत्युपरुद्धो नृपो विद्यादानोद्यतं गुरुं विज्ञपयामास-[[‡]यत्प्रथममसौ द्विजाय विद्यां देहि पश्चान्मह्यम्। हे राजन्] 'अयं विद्यायाः सर्वथाऽनर्ह' इति गुरुणोदिते, भूयोभूयः, तव पश्चात्तापो भविष्यतीत्युपदिश्य, नृपोपरोधात्तेन विप्राय विद्या प्रदत्ता। ततः प्रत्यावृत्तौ द्वावप्युज्जयिनीं प्राप्य पट्टहस्तिविपत्तिविषण्णं राजलोकमालोक्य परपुरप्रवेशविद्यानुभवनिमित्तं च राजा निजगजशरीरे आत्मानं न्यवेशयत्। तद्यथा-

५. विप्रे[18] प्राहरिके नृपो निजगजस्याङ्गेऽविशद्विद्यया, विप्रो भूपवपुर्विवेश, नृपतिः क्रीडाशुकोऽभूत्ततः।*
पल्लीगात्रनिवेशितात्मनि नृपे व्यावृत्य देव्या मृतिं[19], विप्रैः कीरमजीवयत्, निजतनुं श्रीविक्रमो लब्धवान् ॥५

इत्थं श्रीविक्रमार्कस्य परपुरप्रवेशविद्या सिद्धा[23]। इति विद्यासिद्धिप्रबन्धः[24] ॥ ५ ॥

---

1 P आदर्शे 'कश्चिद्देशादिविको' इत्येवंरूपोऽपपाठः। 2 एतद् वाक्यस्थाने B आदर्शे 'नृपेणोचे सविषादं कथं त्वं पृष्टः' एतादृशं वाक्यम्। 3 'देव त्वां' स्थाने D 'यत्वां'। 4 B सामुद्रशा०। 5 A करोति; D करोषि। 6 AD 'एव' नास्ति। 7 AD ०मादाय। 8 BP नास्ति। 9 B ०मस्त्रं च। 10 B ०शतोदितमिदं। 11 A तवावगत०; D तव नोपगत०। † केवलं Da-b आदर्शयोः इदं वाक्यं लभ्यते। 12 B कस्मिन्नवसरे। 13 A परप्रवेश। 14 B विद्या०। 15 P विषया विमाकृताः। 16 B वि हाय 'पराः' नास्ति। 17 B सेवकेनापि द्विजन्मना। ‡ एषः पाठः BP सञ्ज्ञके आदर्शेऽनुपलभ्यः। 18 A विज्ञापया०। 19 ADB भूपः प्राहरिके द्विजे। 20 B पल्ली; P भृंगी। 21 B मृतं। 22 B विप्रं।

* अस्य पद्यस्य द्वितीय-तृतीययोः पादयोर्मध्ये P संज्ञके आदर्शे निम्नावतारितः कियानधिकः पाठः प्रक्षिप्तो दृश्यते—

"शुकोक्तिः—(३) 'यमी किं ध्यायते ध्याने गुरवे क्रियते किमु। प्रतिपक्षं सतां कीदृगादौ छात्राः पठन्ति किम् ॥' ॐ नमः सिद्धं।

राज्ञी कथयति—(४)'किं जीवियस्स चिह्नं का भज्जा होइ मयणरायस्स। का पुप्फाण पहाणा परिणीया किं कुणइ बाला॥ सासुरइ्जाइ।'

शुकोक्तिः—(५) 'निवडइ प(?)णाण मज्झे कामिणी हारो न होइ रे सुहय। तकहिओ वि न याणसि पंडिय गव्वं किमुव्वहसि ॥"

23 P एवं श्रीविक्रमपरपुरप्रवेशविद्यासिद्धिः। 24 Da आदर्शे एवेदं समाप्तिवाक्यं दृश्यते।

अत्र, विद्यासिद्धिप्रबन्धानन्तरं D पुस्तकस्थस्य परिशिष्टानुसारेण कस्मिंश्चिदादर्शे निम्नलिखितोवृत्तान्तोऽधिक उपलभ्यते।

"एकदा नृपो गुरुवन्दनाय गतः। तत्र वृद्धं कमपि तपस्विनं पठन्तं वन्दयामास। तेन नाशीर्निर्गदिता पठनभ्रमेण। राज्ञोक्तं-वृद्ध! पठन् मुशलं फुल्लावयिष्यसि ?। तदवगम्य तेन पठित्वा सूरिपदे प्राप्ते तत्रैव राज्ञः सदसि गत्वा मुशलमालाय्यालवालं विधाय श्रीऋषभदेवस्तवेन मुशलं पुष्पयित्वा गतः। तावता सिद्धसेनेनापि तदवगत्य पादाय पृष्ठे गतम्। परेण केतलारसग्रामं व्रजन् वृद्धवादी दृष्टः। वादं विधेहीति। तेनोक्तं-पुरे गम्यते, तत्र सभ्या भवन्ति। पुनः प्रतिवादिनोचे-अत्रैव वादः। अमी गोपाः सभ्याः। तेऽप्याकारिताः। प्रथमं सिद्धसेनेनोपन्यासो विहितो गीर्वाणवाण्या। तदनु वृद्धवादिना गण्डीयकं बद्ध्वा गोपकुण्डकं विधाय प्रोचे-

७) [1]अथान्यस्मिन्नवसरे श्रीविक्रमो राजपाटिकायां[2] व्रजंस्तन्नगरनिवासिना श्रीसङ्घेनानुगम्यमानं[3] वन्दिवृन्दैः[4] 'सर्वज्ञपुत्र' इति स्तूयमानं श्रीसिद्धसेनाचार्यमागच्छन्तमवलोक्य[6] सर्वज्ञपुत्र इति वचसा कुपितस्तत्सर्वज्ञतापरीक्षार्थं तस्मै मानसं नमस्कारमकरोत् ।[*] सिद्धसेनोपि पूर्वगतश्रुतबलेन[8] नृपभावमवगम्य [9]दक्षिणं पाणिमुद्दस्य धर्मलाभाशिषं ददौ । नृपतिनाऽऽशीर्वादहेतुं पृष्टः सन् महर्षिः-'तव मानसनमस्कारस्याशीर्वादः प्रदीयमानोस्ती'त्यभिहिते तज्ज्ञानचमत्कृतेन राज्ञा तत्पारितोषिके सुवर्णकोटिर्व्यतीर्यत ।

८) [10]अथान्यस्मिन्नवसरे राज्ञा[11] कोशाध्यक्षस्तस्य[12] दापितसुवर्णवृत्तान्तं पृष्टः प्राह-'यद्धर्मवहिकायां श्लोकबन्धेन मया सुवर्णदानं निहितम् ।' तथाहि-

६. धर्मलाभ इति प्रोक्ते दूरादुच्छ्रितपाणये । सूरये सिद्धसेनाय ददौ कोटिं धराधिपः[13] ॥ ६

ततः श्रीसिद्धसेनसूरीन् सभायामाकार्य 'तत्सुवर्णं गृह्यतामि'ति प्रोक्ते, 'वृथा भुक्तस्य[14] भोजनमित्युच्चारपुरःसरमनेन सुवर्णदानेन[15] ऋणग्रस्तामवनीमनृणीकुरु इत्युपदिष्टे तत्सन्तोषपरितुष्टेन राज्ञा तदङ्गीकृतम् ।*

---

(६) नवि मारीयए नवि चोरीयए, परदारागमण निवारीयए ।
थोवावि हु थोवं दाईयए, इम सग्गि टगमगु जाईयए ॥

एवं पठति गोपा नृत्यन्ति । तैरुक्तं-अनेन जितं; त्वं किमपि न वेत्सि । ततो वृद्धवादिना पुरे गत्वा वादं विधाय जितः शिष्यो बभूव । ततः सिद्धसेनदिवाकरेण गुरुचरणसंवाहनां विधीयमानेन गुरव उक्ताः-यदि यूयमादेशं दद्ध तदाहमागमं संस्कृतेन करोमि । गुरुभिरुक्तं-तव महत्पापमजनि, त्वं गुरुगच्छयोग्यो न, गच्छेः । तेनोक्तं-प्रायश्चित्तं दद्त । गुरुभिरुक्तं-यत्र जिनधर्मो न तत्र जिनप्रभावनां विधाय पुनः समागन्तव्यमित्यवधूतवेषेण चलितः । द्वादशवर्षाणि यावदन्यत्र परिभ्रम्य तदनन्तरं मालवके गूढमहाकालप्रासादे शिवाभिमुखं चरणौ कृत्वा चरणप्राणौ द्वारकाष्ठे नियोज्य सुप्तः । तत्र वारितोऽपि तथैव । अत्रान्तरे राज्ञाऽऽरक्षिकपुरुषात् भेषधिमोपद्रुतः । तावदन्तःपुरे रय-प्रदीपनं लग्नम् । समागत्य पृष्टः-कथं शिवस्य नमस्कारं न विदधासि । तेनोक्तं-मम नमो असौ न सहते । विधेहि । तेन सकललोकसमक्षं-

(७) प्रशान्तं दर्शनं यस्य सर्वभूताभयप्रदम् । माङ्गल्यं च प्रशस्तं च शिवस्तेन विभाव्यते ॥

इति द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशतिका कृता । तदा लिङ्गमध्यादवन्तिसुकुमालद्वात्रिंशत्पत्नीकारितप्रासादे श्रीपार्श्वनाथबिम्बं प्रकटीभूतं नमस्कृतं च । असौ सहते नमस्कारम् । तदा प्रभृति गूढमहाकालोऽजनि । राजा विक्रमार्कः परमजैनोऽभूत् । सिद्धसेनोऽपि स्वगुरुपार्श्वं समेत्य सूरिपदं प्राप्यैकदोज्जयिन्यामेव चातुर्मासकं स्थितः ।"

1 AD अथास्मिन्न० । 2 B पाटिकाया । 3 AB ०मान० । 4 AD वन्दिपुत्रैः । 5 BP श्री सर्व० । 6 BP ०मालोक्य । * अत्रान्तरे D पुस्तके निम्नलिखितं पद्यमधिकमुपलभ्यते ।

(८') "आहे दर्शनमागते दशशती सम्भाषिते चायुतं यद्वाचा च हसेदभाग्नु भवता लक्षोऽस्य विधाप्यताम् ।
निष्काणां परितोषके मम सदा कोटिर्मदाज्ञा परा कोशाधीश सदेति विक्रमनृपश्चक्रे यदान्यस्थितिम् ॥"

A आदर्शे पृष्ठस्याधोभागे टिप्पणीरूपेणेदं पद्यं लिखितं विद्यते ।

8 D पूर्वगतबलेन । 9 P दक्षिणपा० । 10 B अथास्मिन्न० । 11 P नास्ति । 12 D तस्मै । 13 BP नराधिपः । 14 BP वृतस्य । 15 AD सुवर्णेन ।

* अस्यानन्तरं D पुस्तके निम्नावतारितानि पद्यानि विद्यन्ते । A आदर्शे अमूनि पद्यानि पृष्ठपार्श्वभागेषु टिप्पणीरूपेण लिखितानि लभ्यन्ते ।

(९) "दिदृक्षुर्भिक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारि वारितः । हस्तन्यस्तचतुःश्लोको यद्वागच्छतु गच्छतु ॥
(१०) दीयन्तां दश लक्षाणि शासनानि चतुर्दश । हस्तन्यस्तचतुःश्लोको यद्वागच्छतु गच्छतु ॥
(११) सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे बुधैः । नारयो लेभिरे पृष्ठिं न वक्षः परयोषितः ॥
(१२) सरस्वती स्थिता वक्त्रे लक्ष्मीः करसरोरुहे । कीर्तिः किं कुपिता राजन् येन देशान्तरं गता ॥
(१३) अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कुतः । मार्गणौघः समभ्येति गुणो याति दिगन्तरम् ॥

९) तस्यामेव निशि नृपो वीरचर्यायां पुरि परिभ्रमन्[1] भूयो भूयस्तैलिकमुखेन पठ्यमानमिदमश्रौषीत्।

७. अम्मीणउ[2] सन्देसडउ[3] तारय[4] कन्ह कहिज्ज।

प्रभातशेषां रजनीमवधीकृत्य तदुत्तरार्द्धमशृण्वन्निर्विण्णो नृपः सौधं प्राप्य निद्रामकरोत्। प्रत्यूषकालेऽवसरकृत्यानन्तरं नृपेण तत्राहूतस्तैलिकस्तदुत्तरार्द्धं पृष्टः।

जगु[6] दालिदिहिं[7] दुत्थियउ[8] बलिबन्धणह मुइज्ज॥ ७

इत्याकर्ण्य श्रीसिद्धसेनोपदेशं पुनरुक्तं निर्णीय पृथिवीमनृणां कर्त्तुमारेभे।

* [उज्जयिन्यां राजा विक्रमादित्यो भट्टमात्रेण समं महाकाले नाटकालोकनार्थं गुप्तवेषो गतः। कालान्तरितेन नागरिकसुतेन कार्यमाणे नाटके सूत्रधारमुखात् तद्वर्णनं श्रुत्वा राजापि नागरिकद्रव्यग्रहणाय मनसि लोभं कृतवान्। पश्चात् कियत्कालमतिक्रम्य तृषितो मुख्यवेश्यागृहे भट्टमात्रपार्श्वात् पानीयं याचितवान्। तत्र वृद्धवेश्या प्रधानान् पुरुषान् भणित्वा तन्निमित्तमिक्षुरसमादातुमुपवने गता। सकलैरिक्षुदण्डान् भित्त्वा तयार्द्धघटेऽप्यसम्भृते दुर्मनस्का करकं भृत्वा वेलाविलम्बेनागता। राजा इक्षुरसे पीते भट्टमात्रेण वेलाविलम्बदौर्मनस्यकारणं पृष्टा जगाद–अन्यदिने एकेन निर्भिन्नेक्षुदण्डेन सकरको घटो भ्रियते। अद्य घटोपि न सम्पूरितः। तत्कारणं न ज्ञायते। भट्टमात्रेण [पुनः] पृष्टं यूयमेवं परिणतमतयस्तत्कारणं जानीत। ततो विचार्य निवेदयन्तु। वेश्यापि वदति–पृथ्वीपतेर्मनः प्रजासु विरुद्धं जातं ततः पृथ्वीरसोपि क्षीणो जातः। इति कारणं निवेदितवती। राजापि तद्बुद्धिकौशलाच्चमत्कृतः। स्वभुवनशयनीये सुप्त इति चिन्तितवान्–अकृतेऽपि प्रजापीडने विरुद्धचिन्तामात्रेणापि पृथ्वीरसहानिर्जाता। अतः प्रजां न पीडयिष्यामि इति कृतनिश्चयो नृप इति परीक्षणार्थं द्वितीयायां निशायां वृपामिपाचद्गृहे गत्वा शीघ्रमेव सहर्षया तयाऽऽनीतमिक्षुरसं पीत्वा शयनीये सुप्तवान्। वेश्यापि भट्टमात्रपृष्टा राज्ञः प्रजासु हृष्टं मनो निवेदितवती। राज्ञाऽपि आत्मनिशावृत्तान्तं निवेद्य पुनरपि तस्मै वृद्धवेश्यायै परिचितोपलक्षणतुष्टेनहारो दत्तः। इति नृपतिमनोऽनुसारी पृथ्वीरसप्रबन्धः॥ †]

१०) 'अथ 'मत्सदृशः कोऽपि जैनो[10] नृपतिर्भावी'ति पृष्टे श्रीसिद्धसेनसूरिभिरभिदधे/–

८. पुन्ने वाससहस्से सयम्मि वरिसाण नवनवइ अहिए। होही कुमरनरिन्दो तुह विक्कमराय सारिच्छो॥ ८

११) अथापरस्मिन्नवसरे जगत्यनृणीक्रियमाणे निजौदार्यगुणेनाहंकृतिं दधानः प्रातः कीर्त्तिस्तम्भं कारयिष्यामीति चिन्तयंस्तस्मिन्नेव निशीथे वीरचर्यया[13] चतुष्पथान्तः परिभ्रमन् युध्यमानवृषाभ्यां[14] त्रासितः कस्यापि दारिद्र्योपद्रुतद्विजन्मनो जीर्णकूपभकुटीस्तम्भमध्यारूढो याव-

(१४) आहते तव निःस्वाने स्फुटितं रिपुहृद्घटैः। गलिते तत्प्रियानेत्रे राजंश्चित्रमिदं महत्॥

(१५) यत्राम्भोजे सरस्वत्यधिवसति सदा शोण एवाधरस्ते बाहुः काकुत्स्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः।
वाहिन्यः पार्श्वमेताः क्षणमपि भवतो नैव मुञ्चन्त्यभीक्ष्णं स्वच्छेऽन्तर्मानसेऽस्मिन्कथमवनिपते तेऽम्बुपानाभिलाषः॥

(१६) उदयन्नस्त्याहव्यवी अणपव्ययरोमरायवणगहणे। सुरनरगणगन्धव्वा भगवीआ भयणचोरेण॥ १६॥"

1 D 'परि' नास्ति। 2 B आमीणउ; P अम्हीणउ; D अम्मणिओ। 3 A संदेसउ। 4 D तारय; Ta तारयकन्ह। 5 B ॰मधिकृत्य। 6 D जग। 7 P दालिद्दइं। 8 D दुत्थिउं; A दुत्थिउं। 9 AD नास्ति 'इत्याकर्ण्य'। * केवलं Db आदर्शेऽयं प्रबन्ध अत्र दृश्यते, अन्यान्यादर्शानुसारेण तु अग्रे भोजराजप्रबन्धे पृथ्वीरसवृत्तान्त उपलभ्यते। † एवं द्विरुक्तप्रकारेण वर्धितः B आदर्शे भोजप्रबन्धे। 10 P महाजैनो। 11 AD अथान्यस्मिन्॰। 12 B विमलपद। 13 P ॰चर्यायां। 14 B वृषभाभ्यां।

तिष्ठति तावत्तावेव वृषौ[1] शृङ्गाग्रेण तं[2] स्तम्भं भूयो भूयस्ताडयतः[3] । अत्रान्तरे स विप्रोऽकस्मान्निद्राभङ्गमासाद्याकाशे शुक्रगुरुभ्यां निरुद्धं चन्द्रमण्डलमवलोक्य गृहिणीमुत्थाप्य चन्द्रमण्डलसूचितं तन्नृपतेः प्राणसङ्कटमवगम्य, 'होतव्यद्रव्याणि तदुपशान्तये होमार्थमुपढौकयिष्ये'[5] इति सावधानं नृपे शृण्वति, स गृहिण्योचे-'अयं नृपः पृथिवीमनृणां कुर्वन्नपि[6] मम कन्याससकस्य विवाहाय द्रव्यमयच्छन् शान्तिककर्मणा[7] कथं [8]व्यसनान्मोचयितुमुचित' इति तद्वचसा सर्वथा परिहृतगर्वस्तत्सङ्कटाच्छुटितः कीर्त्तिस्तम्भवार्त्ता[9] विसरन् राज्यं चिरं चकार । इति विक्रमार्कस्य निर्गर्वताप्रबन्धः ॥ ६ ॥

[*अथान्यस्यां निशि एका रजकी राज्ञा पृष्टा-वस्त्राणि विरूपाणि कथं ससैकतानि । तयोक्तम्-

[३] यासौ दक्षिणदक्षिणार्णववधू रेवाप्रतिस्पर्द्धिनी गोविन्दप्रियगोकुलाकुलतटी गोदावरी विश्रुता ।
तस्यां देव गतेऽपि मेघसमये स्वच्छं न जातं जलं त्वद्दण्डद्विरदेन्द्रदन्तमुसलप्रक्षोभितैः पांशुभिः ॥

[४] रजकवधूवचनमिदं श्रुत्वा नरनाथनायकः स ददौ । स्वाङ्गणएककसहितं लक्षं भ्रूक्षेपमात्रेण ॥

[५] चौरमागधविप्रेभ्यो रजक्यै कवितास्तुतौ । चातुःप्रहरिकं दानं दत्तं विक्रमभूभुजा ॥]

॥ [11]इति श्रीविक्रमस्यात्र विविधाः प्रबन्धा यथाश्रुतं ज्ञेयाः ॥

१२) कदाचिदायुःप्रान्ते केनाप्यायुर्वेदविदा श्रीविक्रमस्य वपुरपाटवे वायसपिशिताहारेण रोगशान्तिर्भवतीत्युपदिष्टे नृपेण तस्मिन्पाके कार्यमाणे प्रकृतिव्यत्ययं विमृश्य नृप इति ज्ञापितः-'साम्प्रतं धर्मोपधमेव बलवत् । प्रकृतेर्विकृतिरुत्पातः । जीवितलोलुपतया लोकोत्तरां सत्त्वप्रकृतिमपहाय काकमांसमभिलषन्सर्वथा न जीवसी'ति वैद्येनाभिहितः । तं पारितोषिकदानार्थं परमार्थबान्धवमिति श्लाघमानो गजतुरगकोशादिसर्वस्वमर्थिभ्यो वितीर्य राजलोकं नगरमापृच्छ्य विजने क्वापि धवलगृहप्रदेशे तत्कालोचितस्नानदानदेवतार्चनपूर्वं दर्भसंस्तराधिरूढो ब्रह्मद्वारेण प्राणोत्क्रान्तिं करिष्यामीति विमृशन्नकस्मादाविर्भूतमप्सरोगणं स[12] ददर्श । अञ्जलिं[13] बद्धा प्रणामपूर्वं 'का यूयमि'ति पृष्टे-'न वाग्विस्तरार्होऽयमवसरः, [14]परमापृच्छनायैव वयमुपागता इ[15]त्यभिधायाप्सरसोऽपसरन्त्यो नृपेण भूयोऽभिदधिरे-'नवीनब्रह्मणा निर्मितानां भवतीनामद्वैतरूपवतीनामेकैमेव रूपं नासया[16] हीनमि'ति जिज्ञासुरस्मि । अथ ताः [17]सहस्ततालं विहस्य 'निजमेवा[18]पराधमस्मासु सम्भावयसी'ति ता मौनमाश्रिता नृपेणोचिरे-'स्वर्गलोकस्थितासु भवतीषु ममापराधः

1 B वृषभौ । 2 B नास्ति । 3 अत्र Db आदर्शे पुस्तके 'उपरि च पक्षी पुच्छावष्टम्भेनाधोभूय कुसुमगन्धि नृपशिरसि ईसाय पुनः पुनः फूत्कुर्वन्ति' एतादृशोऽधिकः पाठः समुपलभ्यते । 4 B 'तन्' नास्ति; P स । 5 D ढौकयेति । 6 AD 'अपि' नास्ति । 7 AD शान्तिकर्म॰ । 8 B सोप्यः स राजा तद्दृत्तं श्रुत्वा मुषितः । 9 AD ॰स्तम्भं विसर॰ । * कोष्ठकान्तर्गतः सन्दर्भः Db आदर्शे लभ्यते । 10 AD नास्त्येषा पङ्क्तिः । अत्र D पुस्तके निम्नलिखिता गाथा मुद्रिता लभ्यते परं सा प्रक्षिप्ता अस्ति APB आदर्शेष्वनुपलभ्यमानात् । A आदर्शे पृष्ठाधोभागे टिप्पणीरूपेण लिखिता दृश्यते ।

(१०) 'कहं काउं मुक्कं च साहसं महल्लिम्मं च अप्पाणं । अजरामरं न पत्तं [illegible] विक्कम हारिओ जम्मो ॥'

Db संज्ञक आदर्शेऽत्र निम्नलिखितोऽधिकः पाठः समुपलभ्यते—

(१८) 'भक्ष्यं सप्तनवित्तवद्बहुतरं दीनार्थिभ्यस्तीलकं मुक्तालिङ्गनतया च मधुरं वात्स्य समस्तवत् ।
पृथ्वीवीरस्वयञ्चन्दनसर्वं स्पर्शानिशपाटल्युत्पलकेतकीसुरभितं पानीयमानीयताम् ॥

(१९) यदा जीवम्य शुक्रश्च परितश्चन्द्रमण्डलम् । परिवेष्टयतस्तर्हि राजा कष्टेन जीवति ॥'

11 D 'श्रात्र' स्थाने 'स्वात्म' शब्दः । 12 B स मुक्तो । 13 B कश्चन्द्रिदप्रणाम॰ । 14 AD 'परं' नास्ति । 15 B इत्यभ्यागतोऽभिधायाप्सरस्यः । 16 D 'चक्षुष्' नास्ति । 17 B नासाग्रहीनं । 18 Da-b दुष्पदन्त॰ । 19 D 'पुष' नास्ति ।

कथं सम्भाव्यत?' इति नृपवचःप्रान्ते ताभ्यो[1] मुख्यया[2] सुमुख्याऽऽचचक्षे–'राजन् प्राक्पुण्योदयेन साम्प्रतं नवापि निधयस्तव [5]'सौधेऽवतेरुस्तदधिष्ठात्र्यो वयम् । भवताऽऽजन्मावधि महादानानि ददतैकस्यैव[6] निधेरेतावदेव व्ययकलितं यावत्त्वं नासाग्रं न पश्यसि' । इत्थं तदुक्तिमाकर्ण्य ललाटं करतलेन स्पृशन् 'यद्यहं नवनिधीनवतीर्णान्[7] वेद्मि तदा नवभ्यः पुरुषेभ्यस्तान्समर्पयामी'ति दैवेनाज्ञानभावाद्वञ्चितं[8] इत्युचरंस्ताभिः[9] 'कलौ भवानेवोदार' इति प्रतिबोधितः परलोकमाप । †ततः प्रभृति तस्य विक्रमादित्यस्य जगत्त्रयमधुनापि संवत्सरः प्रवर्त्तते† ॥ ७ ॥

॥ श्रीविक्रमार्कस्य दाने[10] विविधाः प्रबन्धाः ॥

[२. अथ सातवाहनप्रबन्धः ।]

१३) अथ दाने विद्वत्तायां च श्रीसातवाहनकथा यथाश्रुता[11] ज्ञेया । तत्पूर्वभवकथा चैवं–श्रीप्रतिष्ठानपुरे सातवाहनभूपो[12] राजपाटिकायां गच्छन्नगरप्रत्यासन्ननद्यां वीचिभिर्नीरतीरनिक्षिप्तं[13] मत्स्यमेकं हसन्तमालोक्य प्रकृतेर्विकृतिरुत्पात इति भयभ्रान्तो नृपः सर्वानेवं विदग्धपुरुषान् सन्देहमस्य पृच्छन् ज्ञानसागरनामानं जैनमुनिं पप्रच्छ । ज्ञानातिशयेन तेन तत्पूर्वभवं विज्ञायेत्युपदिष्टम्–'यत्पुरातनभवे त्वमस्मिन्नेव पत्तने उञ्छिन्नवंशः काष्ठभारवाहनैकवृत्तिः* अस्यामेव नद्यां भोजनावसरे सन्निहितशिलातले सक्तून् पयसाऽऽलोड्य नित्यमश्नासि । कस्मिन्नप्यहनि मासोपवासपारणाहेतोः[22] पुरे[23] व्रजन्तं ‡जैनमुनिमाहूय तं सक्तुपिण्डं तस्मै प्रादात्‡ । तस्य पात्रदानस्यातिशयात्त्वं सातवाहननामा नृपतिरासीः । स मुनिर्देवो जातः' । तद्देवताधिष्ठानवशात्तं काष्ठभारवाहिनो जीवं त्वां नृपतितयोपलक्ष्य प्रमोदाद्धसितवान्' । तत्कथासङ्ग्रहश्चैतत्काव्यम्–

९. मीनानने प्रहसिते भयभीतमाह श्रीसातवाहनमृपिर्भवतोऽत्र नद्याम् ।
यत्सक्तुभिर्मुनिरकार्यत पारणं प्राक् दैवाद्भवन्तमुपलक्ष्य झषो जहास ॥

स श्रीसातवाहनस्तं[30] पूर्वभववृत्तान्तं जातिस्मृत्या साक्षात्कृत्य ततःप्रभृति दानधर्ममाराधयन् सर्वेषां महाकवीनां विदुषां च सङ्ग्रहपरः चतसृभिः स्वर्णकोटीभिर्गाथाचतुष्टयं क्रीत्वा सप्तशतीगाथाप्रमाणं सातवाहनाभिधानं सङ्ग्रहगाथाकोशं[34] शास्त्रं निर्माप्य नानावदातनिधिः सुचिरं राज्यं चकार । तद्गाथाचतुष्टयमेतद् । यथा—

---

1 B ताभ्यां । 2 A मुख्या । 3 D सुमुख्यया; A नास्ति । 4 B तव प्राक्० । 5 B 'तव सौधे' नास्ति । 6 AD भवता देवता रूपेणाजन्मा० । 7 AD 'अवतीर्णान्' नास्ति । 8 B दैवे ज्ञान० । 9 'वञ्चित' स्थाने B 'न चिन्तित' । † इत्यन्तर्गता पङ्क्तिः B आदर्शे नास्ति । 10 B दानविविधाः । 11 Db सातवाहनप्रबन्धा लिख्यन्ते । 12 A शालवाहन । 13 BP यथाश्रुतं । 14 BP सातवाहननरेन्द्रो । 15 AD तीरक्षिप्तं । 16 B प्रकृतिवि० । 17 BP सर्वानपि । 18 BP ज्ञानातिशयात् । 19 B उच्छन्न० । * अत्र वृत्तिशब्दाग्रे P Db सञ्ज्ञके आदर्शे–

(२०) 'अहो कोऽपि दरिद्राणां दारिद्र्यव्याधिरद्भुतः । बुभुक्षायेऽपि यः पीयमाने न क्षयमृच्छति ॥' एषोऽधिकः श्लोकः उपलभ्यते । 20 AD 'अस्यां' स्थाने 'तस्यां' । 21 AD जैनमुनिं मासोप० । 22 A पारणहेतोः; BP पारणकारणे । 23 AD पुरो । ‡ अत्र Db आदर्शे–'जैनमुनिं दृष्ट्वा पूर्वभवे मया कर्मेषिया ददे तस्येदं फलम् । यदुक्तं—

(२१) स्पन्देषु वस्तुषु मनोहरतां गतेषु रे चित्त! खेदमुपयासि कथं वृथा त्वम् ।
पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा पुण्यैर्विना नहि भवन्ति समीहितार्थाः ॥

इत्थं चिन्तयित्वा मुनिमाकार्य तं सक्तुपिण्डं–' एतावान् समधिकः पाठोऽस्ति । 24 B ०माकार्य । 25 B प्रदात् । 26 AD शालवाहननृपति० । 27 BP एतद्वाक्यं नास्ति । 28 B देवाधिष्ठान० । 29 P नास्ति । 30 BP नृपतया । 31 AD सङ्ग्रहश्चैवं । 32 AD 'तं' नास्ति । 33 A शालवाहनानाम०; D शालिवाहनाभि० । 34 P ०कोश० । 35 P ०निर्म्य; B Db आदर्शे–'तद् गाथाचतुष्टयं बहुश्रुतेभ्यो ज्ञेयम् ।' एवंरूप उल्लेखोऽस्ति । अग्रेतना गाथाश्च न सन्ति ।

१०. हारो वेणीदण्डो खट्टुग्गलियाइं तह य तालु चि । एयाइं नवरि सालाहणेण दहकोडिगहियाइं ॥ १
११. मग्गं चिय अलहन्तो[1] हारो पीणुन्नयाण थणयाणं[2] । उव्विम्बो[3] भमइ उरे जउणानइफेणपुञ्जं[4] व ॥ २
१२. कंसिणुजलो[5] य रेहइ वेणीदण्डो नियम्वविम्बम्मि । तुंह[6] सुन्दरि सुरयमहानिहाणरक्खाभुयङ्गं[7] व ॥ ३
१३. परिओससुन्दराइं सुरए[8] जायन्ति जाइं सुक्खाइं । विरहाउ ताइं पियसहि खट्टुग्गलियाइं[9] कीरन्ति ॥ ४
१४. मा जाण कीर जंह[10] चञ्चुललियं पडइ पक्कमाइन्दं । जरढत्तणदुल्ललियं उं[11]भुयतालाहलं एयं ॥ ५

* * * * *

१५. ताण पुरोयं[12] मरीहं[13] कयलीथम्भाणं[14] सरिसपुरिसाण । जे अचणो विणासं फलाइं दिन्ता न चिन्तन्ति ॥६
१६. जह सरसे तंह[15] सुक्के वि पायवे धरइ अणुदिणं विञ्झो । उच्छंगवड्ढियं निग्गुणं पि गरुया[16] न छड्डन्ति[17] ॥७
१७. †पढमो नेहाहारो तेहिं तिसिएहिं तंह[18] कहवि गहीउ । पिच्छन्ति जं न अन्नं तच्चिय आजम्म भुञ्जारो[19] ॥८
१८. सयलजणाणन्दयरो सुक्खस्स वि एस परिमलो जस्स । तस्स नवसरसभावम्मि हुज्ज किं चन्दणदुमस्स ॥९
१९. कयलितरू विञ्झगिरी नेहाहारो य चन्दणदुमो य । एयाओ नवरि सालाहणेण नंव[20]कोडिगहियाओ† ॥१०

[३. अथ शीलव्रते भूयराज-प्रबन्धः ।]

१४) तद्यथा[21]-*षड्त्रिंशद्ग्रामलक्षप्रमिते कन्यकुब्जदेशे कल्याणकटकनाम्नि[22] राजधानीनगरे भूयराज[23] इति राजा राज्यं कुर्वन् कस्मिंश्चित्प्रभातसमये राजपाटिकायां सञ्चरन्नेकस्मिन्[24]सौधतले वातायनस्थितां कामपि मृगाक्षीं मृगयमाणो निजचित्तापहारापराधिनीं तामप[25]जिहीर्षुर्निजं पानीयाधिकृतपुरुषं समादिदेश । स च तां नृपसौधे समानीय क्वचित् सङ्केतप्रदेशे स्थापयित्वा नृपं विज्ञपयामास । नृपेण च तत्रागतेन बाहुदण्डे धृता सती सा[26] तं भूपमवादीत्–'स्वामिन्! सर्वदेवतावतारस्य भवतो हन्त कोऽयं नीचनार्यामभिलापः' । ततस्तद्वाक्यामृतेनेष[27]च्छान्तकामानलो नृपः 'काऽसी'ति तां प्रोचे । तया–'अहं तव[28] दासी'त्यभिहिते 'किं तथ्यमेतदि'ति नृपादेशात् 'प्रभोर्दासः पानीयाधिकृतस्तस्य[29] पल्यहं दासानुदासीति' । तद्वार्त्तयान्तश्चमत्कृतो नृपतिः सर्वथा विलीनकामार्त्तिस्तां[30] सुतां मन्यमानो विससर्ज । तस्या वपुषि निजकरौ लग्नाविति विचिन्त्य तन्निग्रहवाञ्छया निशीथे निजैरेव यामिकैर्गवाक्षप्रविष्टनरकरभ्रान्त्या निजावेव भुजौ निग्राहयामास । अथ प्रत्यूषे तान् यामिकान् सचिवैर्निगृह्यमाणान् निवार्य मालवमण्डले महाकालदेवप्रासादे गत्वा स्वयं देवमाराधयंस्तस्थौ । देवादेशात्भुजद्वये लग्ने सति तं मालवदेशं सान्तःपुरं तस्मै देवाय दत्त्वा तद्रक्षाधिकृतान् परमारराजपुत्रान् नियोज्य स्वयमेव तापसीं दीक्षामङ्गीचक्रे[31] । इति शीलव्रते भू[य]राजप्रबन्धः ॥ ९ ॥

1 A मग्गु । 2 A थणियाण । 3 Dbc उब्विम्गो । 4 A ०पुंजु व्व । 5 A कसिय० । 6 AD तह । 7 D भुयङ्ग । 8 Dd सुरएसु लहन्ति । 9 Db खट्टुग्गिआइ; Dd खट्टुग्गिणिहाइ । 10 P जं । 11 A उत्तुय०; P उज्झड । 12 P पुरोउ । 13 D मरिउं । 14 P कयलियखंभाण । 15 A नास्ति । 16 A गुरूया । 17 P मुञ्चन्ति । 18 Dc तहवि । 19 Db भुञ्जारो । 20 A चउ० । † अन्तिमं गाथात्रिकं P आदर्शे नोपलभ्यम् । 21 P नास्ति 'तद्यथा' ।

* AD Da-b सञ्ज्ञकेष्वादर्शेषु एष समग्रोऽपि प्रबन्धो निम्नलिखितरूपेण संक्षिप्तात्मकतयोपलभ्यते—"षड्त्रिंशद्ग्रामलक्षप्रमिते कन्यकुब्जे नगरे कल्याणकटके पानीयाधिकृतप्रियाभिलाषव्यतिकरात् राजा भूयदेवो (D भूदेवो) मालवके श्रीरुद्रमहाकालमाराध्य मालवकं तस्मै देवाय दत्त्वा स्वयं तापसोऽभूदिति संक्षेपः ।"

22 B नाम निजराज०; P नास्ति तद्राज० । 23 B भूराज । 24 BP कस्मिन् । 25 AD 'अप' नास्ति । 26 B 'सा' नास्ति; Db सती । 27 P 'ईषत्' नास्ति । 28 B Db 'तव' नास्ति । 29 BP तस्य० । 30 Db ०स्तां । 31 BP ०चकार ।

[४. वनराजादिप्रबन्धः ।]

१५) *तस्य कन्यकुब्जस्यैकदेशो गूर्जरधरित्री, तस्यां* गूर्जरभुवि वढीयाराभिधानदेशे पञ्चाशरग्रामे चापोत्कटवंश्यं झोलिकासंस्थं बालकं वणनाम्नि[1] वृक्षे निधाय तन्मातेन्धनमवचिनोति । प्रस्तावात्तत्रायातैर्जैनाचार्यैः श्रीशीलगुणसूरि[2]नामभिरपराह्णेऽपि[3] तस्य वृक्षस्य छायामनर्मन्तीमा[4]लोक्य, झोलिकास्थितस्य तस्यैव बालकस्य पुण्य[5]प्रभावोऽयमिति विमृश्य, जिनशासनप्रभावकोऽयं भावीत्याशया वृत्तिदानपूर्वं तन्मातुः पार्श्वात्स बालो जगृहे । वीरमतीगणिन्या स बालः परिपाल्यमानो[6] गुरुभिर्दत्तवनराजाभिधानोऽष्टवार्षिको देवपूजाविनाशकारिणां मूषकाणां रक्षाधिकारे नियुक्तः । स तान्[7] बाणेन[8] निघ्नन् गुरुभिर्निषिद्धोऽपि चतुर्थोपायसाध्यांस्तानेवं जगौ । तस्य जातके राजयोगमवधार्याऽयं महान्नृपतिरेवं[9] भावीति निर्णीय स[10] तन्मातुः पुनः प्रत्यर्पितः[11] । मात्रा समं कस्यामपि पल्लिभूमौ समातुलस्य चौरवृत्त्या वर्तमानस्य [†सन्मानपात्रतां प्राप्तो जनपदस्यान्तरस्खलितपौरुषवृत्तिर्नगरग्रामसार्थानेव....(?)†] सर्वत्र धाटीप्रपात[12]मकरोत्‡ ।

१६) कदाचित्[13] काकरग्रामे खात्रपातनपूर्वं कस्यापि व्यवहारिणो गृहे धनं मुष्णन्[14] दधि[15]भाण्डे करे पतिते सत्यत्र भुक्तोऽहमिति विचिन्त्य तत्सर्वस्वं तत्रैव मुक्त्वा विनिर्ययौ । परस्मिन्नहनि तद्भगिन्या श्रीदेव्या निशि गुप्तवृत्त्या सहोदरवात्सल्यादाहूतः । §पृष्टः–'कथं मद्गृहे प्रविश्य सर्वसारं [गृहीत्वा] त्वया पुनरेव मुक्तम् ?' । तेनोक्तं–

२०. कह नाम तस्स पावं चिंतिज्जइ आगए वि कोवम्मि । उप्पलदलसुकुमालो जस्स घरे अच्छिओ हत्थो ॥

सापि तद्वचनमाकर्ण्य तच्चरित्रेण चमत्कृता भोजनवस्त्रदानादिकमुपकारं चकार§ । 'मम पट्टाभिषेके भवत्यैव भगिन्या तिलकं विधेयमि'ति प्रतिपेदे[16] ।

१७) अथान्यस्मिन्नवसरे तस्य[17] चरटवृत्त्या वर्तमानस्य चौरैः क्वाप्यरण्यप्रदेशे रुद्धो जाम्बा[18]भिधानो वणिक् तं[19] चौरत्रयं दृष्ट्वा संधाण[20]पञ्चकमध्याद्बाणद्वयं भञ्जंस्तैः पृष्ट इति[21] प्राह–'भवत्रितयाधिकं बाणद्वयं विफलमि'त्युक्ते, तदुक्तं चल[22]वेध्यं बाणेनाहत्य तैः परितुष्टैरात्मना सह नीतस्तद्[23]धोधविद्याचमत्कृतेन [24]श्रीवनराजेन 'मम पट्टाभिषेके त्वं महामात्यो भावी'त्यादिश्य विसृष्टः ।

१८) अथ कन्यकुब्जादायातपञ्चकुलेन तद्[25]देशराज्ञः सुतायाः श्रीमहणं[26]काभिधानायाः कञ्चुकसम्बन्धे पितृप्रदत्त[27]गूर्जरदेशस्योद्ग्राहणकहेतवे समागतेन सेल्लभृद्[28]वनराजाभिधानश्चक्रे । षण्मासीं

---

* द्विसारकान्तर्गतः पाठः AD नास्ति । 1 Db वाण० । 2 Da शीलगणि; Db शीलगण । 3 B सूरिभिः; A सूरिभिर्नामभिः । 4 B ०मचलमन्ती० । 5 B 'पुण्य' नास्ति । 6 Db परिपाल्य० । 7 B नास्ति । 8 D लोष्टैः; Pa पाणैः । 9 AD नृपतिर्भा० । 10 P 'स' नास्ति; AD 'तन्' नास्ति । 11 B समर्पितः । † एतत्कोष्ठकान्तर्गतः पाठः केवलं P आदर्शे एवोपलभ्यते । 12 ०प्रदान० । ‡ एतदग्रे Po आदर्शे 'चौरस्वभावे रुग्ने न सुखं कदाचिदपि । यतः—

(२२) नक्तं दिवा न शयनं प्रकटा न चर्या स्वैरं न पानजलवस्त्रकलत्रभोगः ।
शंकानुजादपि सुतादपि दारतोऽपि लोकस्तथापि कुरुते ननु चौर्यवृत्तिम् ॥'

एतावान् प्रक्षिप्तः पाठः समुपलभ्यते । 13 केवलं B आदर्शे एव एष शब्दः । 14 B नास्ति । 15 B दद्धि० । § एतद्द्विचिह्नान्तर्गतपाठस्थाने AD आदर्शे 'तया भोजनवस्त्र(वसु D)दानपूर्वकमुपकृतो'; B आदर्शे 'स्नानभोजनवस्त्रदान०' एतादृशः संक्षिप्तः पाठः प्राप्यते । 16 P प्रतिपन्नम् । 17 AD नास्ति । 18 D जम्बा० । 19 P तच्चौर० । 20 AD 'स्व' नास्ति । 21 B 'इति' नास्ति । 22 D चल० । 23 P 'तद्' नास्ति । 24 BP 'श्री' नास्ति । 25 D तद्देश० । 26 D महणिका० । 27 P ०प्रतिपन्न । 28 B सोल्लभृद्; P सल्लभृद् ।

यावद्देशमुद्ग्राह्य[1] चतुर्विंशतिसंख्यान् पारूथकद्रम्मलक्षांस्तेजोजात्यांश्चतुःसहस्रसंख्यांस्तुरङ्गमान्[3] गृहीत्वा पुनः स्वदेशं प्रति प्रस्थितं पञ्चकुलं सौराष्ट्राभिधानघाटे वनराजो निहत्य कस्मिन्नपि वननिकुञ्जे तद्राजभयाद्वर्षं[4] यावद्दस्युवृत्त्या तस्थौ ।

१९) अथ निजराज्याभिषेकाय राजधानीनगरनिवेशचिकीः शूरां भूमिमवलोकमानः पीपलुलातडाग[5]पाल्यां सुखनिषण्णेन[6] भारूयाडसाखड[7]सुतेनाणहिल्लनाम्ना पृष्टः–'किमवलोक्यते[8]' । 'नगरनिवेशयोग्या शूरा भूमिरवलोक्यते' इति तैः प्रधानै[9]रभिहिते, 'यदि तस्य नगरनिवेशस्य मन्नाम[10] दत्से[11] ततस्तां भुवमावेदयामी'त्यभिधाय जालिवृक्षसमीपे गत्वा यावतीं भुवं शशकेन श्वा त्रासितस्तावतीं[12] भुवं दर्शयामास । तत्र प्रदेशे[13] अ ण हि ल्ल पु र मिति[14] नाम्ना[15] नगरं निवेशयामास ।[16]

[अत्रान्तरे P आदर्शे निम्नोद्धृतानि पद्यानि लिखितानि प्राप्यन्ते—

[६] कुवहारानुकारेण प्रकारेण चकास्ति यत् । सुकृतेन घृतीभूय त्रायमाणं कलेरिव ॥
[७] चन्द्रशालासु बालानां खेलन्तीनां निशामुखे । यत्र वक्त्रश्रिया भाति शतचन्द्रं नभःस्थलम् ॥
[८] लङ्का शङ्कावती चम्पा सकम्पा विदिशा कृशा । काशिनांञ्चितसम्पत्तिर्मिथिला शिथिलादरा ॥
[९] त्रिपुरी विपरीतश्रीर्मथुरा मन्थराकृतिः । धाराप्यभून्निराधारा यत्र जैत्रगुणे सति ॥ युग्मम् ॥
[१०] कौरवेश्वरसैन्यस्य यत्पौरस्त्रीजनस्य च । बलाद् गांगेय-कर्णस्य न पश्याम्यहमन्तरम् ॥
[११] प्रौढश्रीरलका न जातपुलका लङ्कातिशङ्काकुला, नैवाप्युज्जयिनी कदापि जयिनी चम्पातिकम्पान्विता ।
कान्ती कान्तिविभूषिता नहि तथाऽयोध्याऽतियोध्याभवत् , यस्याग्रे तदिहाद्भुतं विजयते श्रीनर्तनं पत्तनम्॥]

२०) ८०२ अधिकाष्टशतसंवत्सरे (A D संवत् ८०२ वर्षे वैशाखसुदि २ सोमे) श्रीविक्रमार्कतस्तस्य जालितरोर्मूले[17] धवलगृहं कारयित्वा राज्याभिषेकलग्ने काकरग्रामवास्तव्यां तां प्रतिपन्नभगिनीं श्रियादेवीमाहूय[18] तया कृततिलकः श्रीवनराजो[19] राज्याभिषेकं पञ्चाशद्वर्षदेश्यः कारयामास । स जाम्बाभिधानो वणिग् महामात्यश्चक्रे । पञ्चासरग्रामतः श्रीशीलगुणसूरीन् सभक्तिकमानीय धवलगृहे निजसिंहासने निवेश्य कृतज्ञचूडामणितया सप्ताङ्गमपि राज्यं तेभ्यः समर्पयंस्तैर्निःस्पृहैर्भूयो भूयो निषिद्धस्तैत्प्रत्युपकारबुद्ध्या तदादेशाच्छ्रीपार्श्वनाथप्रतिमालङ्कृतं पञ्चासराभिधानं चैत्यं निजाराधकमूर्त्तिसमेतं[21] च कारयामास । तथा[22] धवलगृहे[23] कंण्टेश्वरीप्रसादश्च[24] कारितः ।

२१. गूर्जराणामिदं राज्यं वनराजात्प्रभृत्यपि । जैनैस्तु स्थापितं मन्त्रैस्तद्द्वेषी नैव नन्दति[25] ॥

२१) संव० ८०२ पूर्वं निरुद्धं वर्ष ५९, मास २ दिन २१ श्रीवनराजेन राज्यं कृतम् ।

श्रीवनराजस्य सर्वायुर्वर्ष १०९, मास २ दिन २१ ।

1 B 'यावत्' नास्ति । 2 P पारुत्थक; Db पारुत्थक; D रूप्यक । 3 BP चतुःसहस्रान् तुरगान् । 4 AD 'राजधानी' नास्ति । 5 P तटाक । 6 BP ०निषण्णो । 7 P भाडभाडसांखडा०; B 'सांखडा' नास्ति । 8 A किमु विलो० । 9 BP 'प्रधानैः' नास्ति । 10 D नाम मम । 11 BD दत्त । 12 B शशकेन यावतीं भुवं श्वा०; D यावती भूः शशकेनोच्छ्राशिता । 13 AD 'प्रदेशे' नास्ति । 14 AD 'इति' नास्ति । 15 P नास्ति । 16 BD निवेश्य । 17 BP ०तरोस्तले । 18 BP ०माकार्य । 19 BP नास्ति । 20 D नास्ति 'तत्'; A ततः । 21 P ०सहितं । 22 AD तथा तेन । 23 D ०गृहकण्टे । 24 D कण्टे० । 25 Db तद्द्वेष्टा न वर्धते ।

संवत् ८९२ वर्षे आषाढसुदि ३ गुरौ अश्विन्यां सिंहलग्ने वहमाने वनराजसुतस्य श्रीयोगराजस्य राज्याभिषेकः ।

[B P प्रत्यन्तरे—'संवत् ८०२ पूर्वं वर्ष ६० श्रीवनराजेन राज्यं कृतम् । संवत् ८९२ वर्षे श्रीयोगराजस्य राज्याभिषेकः (P श्रीजोगराजेन राज्यमलंचक्रे)'–इत्येव पाठः ।]

२२) तस्य राज्ञः[1] त्रयः कुमाराः । अन्यस्मिन्नवसरे क्षेमराजनाम्ना कुमारेण राजेति विज्ञपयांचक्रे–'देशान्तरीयस्य राज्ञः प्रवहणानि वात्यावर्त्तेन विपर्यस्तानि । अन्यवेलाकूलेभ्यः श्रीसोमेश्वरपत्तने समागतानि । ततस्तेषु तेजस्वितुरंगमसहस्रं दश (१००००) तथा गजानां सार्द्धघटा[2] संख्यया[3] रूप[4] १८ । अपरवस्तूनि कोटिसंख्यया । एतावत्सर्वं निजदेशोपरि स्वदेशमध्ये भूत्वा[5] सञ्चरिष्यति । यदि स्वाम्यादिशति तदाऽऽनीयते[6]' इति विज्ञप्तेन राज्ञा तन्निषेधः कृतः ।

तदनन्तरं तैस्त्रिभिः कुमारै राज्ञो वयोवृद्ध[7]भावाद्वैकल्यमाकल्य तस्यामपि स्वदेशप्रान्तप्रान्तरं[8] भूमौ स्वसैन्यं[9] सज्जीकृत्याज्ञातचौरवृत्त्या तत्सर्वमाच्छिद्य स्वपितुरुपनिन्ये । अन्तःकुपितेन मौनावलम्बिना तेन[10] राज्ञा न किमपि तेषां प्रति[11] प्रत्यादिष्टम् । तत्सर्वं नृपतिसात्कृत्वा 'क्षेमराजकुमारेणैतत्कार्यं सुन्दरं कृतमसुन्दरं वे'ति विज्ञप्तो नृपतिर्बभाषे–'यदि सुन्दरमुच्यते तदा परस्वलुण्टनपातकम्; यद्यसुन्दरमभिधीयते तदा भवदीयचेतस्सु[12] विरक्तिः । अतो मौनमेव श्रेय इति सिद्धम् । श्रूयतां भवदीयप्रथमप्रश्ने परवित्तापहृतौ निषेधहेतुः । यदा परमण्डलेषु नृपतयः सर्वेषामपि राज्ञां राज्यप्रशंसां कुर्वन्ति तदा गूर्जरदेशे 'च र ट रा ज्य मि'त्युपहसन्ति[13] । अस्मत्स्थाने[14] पुरुषैरित्यादिस्वरूपं वयं[15] विज्ञप्तिकया ज्ञाप्यमानाः किञ्चिन्निजपूर्वज[16]वैमनस्यमावहन्तो दूयामहे । यद्ययं पूर्वजकलङ्कः सर्वलोकहृदये विस्मृतिमावहति तदा समस्तराजपङ्क्तिषु वयमपि राजशब्दं लभामहे । धनलवलोभ[17]लोलुभैर्भवद्भिः स पूर्वजकलङ्क उन्मृज्य[18] पुनर्नवीकृतः' । तदनन्तरं राज्ञा शस्त्रागारान्निजं धनुरुपानीय 'यो भवत्सु बलवान् स इदमारोपयत्वि[20]'ति समादिष्टे सर्वाभिसारेण तन्नैकेनाप्यधिरोप्यत इति राज्ञा हेलयैवाधिज्यीकृत्याभिदधे[19]–

२२. आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणां वृत्तिच्छेदोऽनुजीविनाम् । पृथक्शय्या च नारीणामशस्त्रो वध उच्यते ॥

इति नीतिशास्त्रोपदेशात् आज्ञाभङ्गा[21]दस्मादशस्त्रवधकारिषु पुत्रेषु को दण्ड[22] उचितः । अतो राज्ञा प्रायोपवेशनपूर्वकं विंशत्यधिक[23]वर्षशते पूर्णे चिताप्रवेशः कृतः । अनेन राज्ञा भट्टारिकाश्रीयोगीश्वरीप्रासादः कृतः[24] ।

२३) अनेन (योगराजनाम्ना) राज्ञा वर्ष ३५ राज्यं कृतम् ।

सं० ८९७ पूर्वं वर्ष २५ श्रीक्षेमराजेन राज्यं कृतम् ।

सं० ९२२ पूर्वं वर्ष २९ श्रीभूयडेन राज्यं कृतम् ।

अनेन श्रीपत्तने भूयडेश्वरप्रासादः कारितः ।

---

1 AD 'राज्ञः' नास्ति । 2 A सार्द्धघटाः; D सार्द्धशती । 3 B संख्यायां । 4 D 'रूप १८' नास्ति । 5 B 'भूत्वा' नास्ति । 6 BP तदादिश्यते । 7 P ०वृद्धताभा० । 8 B प्रान्तरप्रान्तम्०; A प्रान्तप्रान्तम्०; D प्रान्तम्० । 9 D 'स्व' नास्ति । 10 AD 'तेन' नास्ति । 11 P 'प्रति' नास्ति; B प्रतिपत्त्यादिष्टं; D प्रतिपत्त्यादि कृतं । 12 AD चेतसो । 13 P ०हसन्तः । 14 AD 'स्थान' नास्ति । 15 AD 'वयं' नास्ति । 16 AD पूर्वज० । 17 PD 'लोभ' नास्ति । 18 AD उन्मृज्य । 19 B ०निजस्याभिदधे । 20 P द्विजम्मन्ता । 21 D 'आज्ञाभङ्गा०' नास्ति । 22 BP दण्डः कः । 23 BP विंशत्यधिकं । 24 BP आदर्शे पुनः पङ्क्तिर्नास्ति ।

सं० ९५१ पूर्वं श्रीवैरसिंहेन वर्षं २५ राज्यं कृतम् ।

सं० ९७६ पूर्वं वर्षं १५ श्रीरत्नादित्येन राज्यं कृतम् ।

सं० ९९१ पूर्वं वर्षं ७ श्रीसामन्तसिंहेन राज्यं कृतम् ।

एवं चापोत्कटवंशे सप्त नृपतयोऽभूवन् । विक्रमकालात् संख्यया वर्षं ९९८ ।

[A आदर्शे तथा प्रायस्तत्सदृशे D पुस्तके एषा वंशावलिः निम्नस्वरूपा लिखिता लभ्यते—

सं० ८......(?) श्रावणसुदि ४ निरुद्धं वर्ष १० मास १ दिन १ श्रीयोगराजेन राज्यं कृतम् ।

सं० ८.......... श्रावणसुदि ५ उत्तराषाढनक्षत्रे धनुर्लग्ने रत्नादित्यस्य राज्याभिषेको बभूव ।

सं० ८......... कार्त्तिकसुदि ९ निरुद्धं वर्ष ३ मास ३ दिन ४ अनेन राज्ञा राज्यं कृतं ।

सं० ८......... कार्त्तिकसुदि ९ रवौ मघानक्षत्रे वृषलग्ने श्रीवैरसिंहो राज्ये समुपविष्टः ।

सं० ८......... ज्येष्ठसुदि १० शुक्रे निरुद्धं वर्ष ११ मास ७ दिन २ अनेन राज्ञा राज्यं चक्रे ।

सं० ८......... ज्येष्ठसुदि १३ शनौ हस्तनक्षत्रे सिंहलग्ने श्रीक्षेमराजदेवस्य राज्याभिषेकः समजनि ।

सं० ९२ ...... भाद्रपदसुदि १५ रवौ वर्ष ३८ मास ३ दिन १० अस्य राज्ञो राज्यनिबन्धः ।

सं० ९३५ वर्षे अश्वीनीसुदि १ सोमे रोहिणीनक्षत्रे कुम्भलग्ने श्रीचामुण्डराजदेवस्य पट्टाभिषेकः समजनि ।

सं० ९.........माघवदि ३ सोमे निरुद्धं वर्ष १३ मास ४ दिन १७ अनेन राज्ञा राज्यं विदधे ।

सं० ९३८ (?) माघवदि ४ भौमे स्वातिनक्षत्रे सिंहलग्ने श्रीआगडदेवो राज्ये उपविष्टः । अनेन कर्करायां पुर्यां आगडेश्वर-कण्टेश्वरीप्रासादौ कारितौ ।

सं० ९६५ पौषसुदि ९ बुधे निरुद्धं वर्ष २६ मास १ दिन २० राज्यं कृतं ।

सं० ९......... पौषसुदि १० गुरौ आर्द्रानक्षत्रे कुम्भलग्ने भूयगडदेवः पट्टे समुपविष्टः । अनेन राज्ञा भूयगडेश्वरप्रासादः कारितः श्रीपत्तने प्राकारश्च ।

सं० ९......... वर्षे आषाढसुदि १५ निरुद्धं वर्ष २७ मास ६ दिन ५ राज्यं कृतं ।

एवं चापोत्कटवंशे पुरुष ८; तद्वंशे १९० वर्ष, मास २, दिन सप्त राज्यं कृतम् ।]

---

२३. *असेव्या मातङ्गाः परिगलितपक्षाः शिखरिणो जडप्रीतिः कूर्मः फणिपतिरयं च द्विरसनः ।
इति ध्यातुर्धातुर्धरणिधृतये साम्ध्यचुलुकात्समुत्पन्नौ कश्चिद्विलसदसिपट्टः स सुभटः ॥ इति ॥

[५. मूलराजप्रबन्धः ।]

२४) अथ पूर्वोक्तश्रीमूयराजवंशे मुञ्जालदेवसुताः राज-बीज-दण्डक-नामानस्त्रयः सहोदरा यात्रायां श्रीसोमनाथं नमस्कृत्य ततः प्रत्यावृत्ताः श्रीमदणहिल्लपुरे श्रीसामन्तसिंहनृपं वाहकेल्यामवलोकमानास्तुरगस्य नृपेण कशाघाते दत्ते सति कार्पटिकवेशधारी राजनामा क्षत्रियोऽनवसरदत्तेन तेन कशाघातेन पीडितः शिरःकम्पपूर्वकं हा हेति शब्दमवादीत् । राज्ञा तत्कारणं पृष्टः स-'तुरङ्गमेन कृतं गतिविशेषं न्युञ्छनयोग्यमनवधार्य कशाघाते दीयमाने ममैव मर्माभिघातः समजनि' । तेन तद्वचसा चमत्कृतेन राज्ञा स तुरङ्गमो वाहनाय समर्पितस्तस्यैव । अश्वाश्ववारयोः सदृशं योगमालोक्य पदे पदे तयोर्न्युञ्छनानि कुर्वंस्तेनैव तदाचारेण तस्य महत्कुलमाकलय्य लीलादेवीनाम्नीं स्वभगिनीं तस्मै ददौ । आधानानन्तरं कियत्यपि गते काले, तस्या अकाण्ड-

---

* पद्यमिदं BP आदर्शे नोपलभ्यते । 1 BP 'अथ' नास्ति । 2 D भूयगडरा०, P भूयडरा० । 3 BP नास्ति । 4 AD श्रीभूयराजेन्द्रं । 5 BP ०कशाघातेन ।

मरणे सञ्जाते सति, सचिवैरपत्यमरणं पर्यालोच्य तदुदरविदारणपूर्वमपत्यमुद्धृतम्। मूलनक्षत्रजातत्वात्स 'श्रीमूलराजाभिधया समजनि । बालार्क इव आजन्म तेजोमयत्वात्सर्ववल्लभतया पराक्रमेण मातुलमहीपालं प्रवर्द्धमानसाम्राज्यं कुर्वन् मदमत्तेन श्रीसामन्तसिंहेन स साम्राज्येऽभिषिच्यते अनुन्मत्तेनोत्थाप्यते च । तदादिचापोत्कटानां दानमुपहासनया प्रसिद्धम् । स इत्थमनुदिनं विडम्ब्यमानो निजपरिकरं सज्जीकृत्य विकलेन मातुलेन स्थापितो राज्ये तं निहत्य सत्य एव भूपतिर्बभूव ।

२५) सं० ९९३ वर्षे आषाढसुदि १५ गुरौ, अश्विनीनक्षत्रे सिंहलग्ने रात्रिप्रहरद्वयसमये जन्मत एकविंशतितमे वर्षे श्रीमूलराजस्य राज्याभिषेकः समजनि ।

(B P आदर्शे—'सं० ९९८ वर्षे श्रीमूलराजस्य राज्याभिषेको निष्पन्नः ।' एतावानेव पाठः)

२४. *मूलार्कः श्रूयते शास्त्रे सर्वकल्याणकारकः । अधुना मूलराजेन योगाश्चित्रं प्रशस्यते ॥

[१२] ‡स्वप्ने एत्य वने जगाद स विभुश्चापोत्कटानां विभोर्वंशे हैहयभूपतेर्गुणवती कन्यास्ति यं...... ।
तासौ मुदितेन विगताशङ्कं विवाह्या त्वया गर्भं धास्यति सार्वभौममुदरे सेयं मृगाक्षी यतः ॥

[१३] ‡तरकुलावजनिष्ट विष्टपमणिः श्रीराजिराजाङ्गजः श्रीमद्गूर्जरमण्डलेऽथ नृपतिः श्रीमूलराजाह्वयः ।
यस्मिन् दिग्विजयोद्यमव्यतिकरे प्रौढप्रभावाद्भुते कम्पन्ते स्म मनांसि नाम्न न परं भूम्योऽपि भूमीभुजाम् ॥

श्रीसौराष्ट्रमंडले युद्धं सा...सीहेन इति प्रबन्धः* ।

[१४] ‡आवर्जिता जितारातेर्गुणैर्बाणरिपोरिव । गूर्जरेश्वरराज्यश्रीर्यस्य जज्ञे स्वयंवरा ॥

[१५] ‡सपत्राकृतशत्रूणां संपराये स्वपत्रिणाम् । महेच्छः कच्छभूपालं लक्षं लक्षीचकार यः ॥

[१६] ‡लाटेश्वरस्य सेनान्यमसामान्यपराक्रमः । दुर्वारं बारपं हित्वा हास्तिकं यः समग्रहीत् ॥

[१७] ‡दानोपहतदारिद्र्यं शौर्यनिर्जितदुर्जनम् । कीर्तिस्थगितकाकुत्स्थं यो राज्यमकरोच्चिरम् ॥

[इत्यादिभिः स्तुतिभिः बुधैः स्तूयमानः साम्राज्यं कुर्वन्-] कस्मिन्नप्यवसरे सपादलक्षीयः क्षितिपतिः श्रीमूलराजमभिषेणयितुं गूर्जरदेशसन्धौ समाजगाम । तथैतस्मिन्नवसरे तैलङ्गदेशीयराज्ञो बारपनामा सेनापतिरुपाययौ । श्रीमूलराजेन तयोरेकस्मिन्विगृह्यमाणेऽपरः पार्ष्णिग्राहं कुरुत इति सचिवैः सह विमृशंस्तैरूचे-'श्रीकन्थादुर्गं प्रविश्य कियन्त्यपि दिनान्यतियाप्यन्ताम्' । नवरात्रिकेषु समागतेषु सपादलक्षक्षितिपतिः स्वराजधान्यां शाकम्भर्यामेव स्वगोत्रजामाराधयिष्यति । तस्मिन्नवसरे श्रीबारपनामा सेनानीर्जीयते । तदनुक्रमागतः सपादलक्षक्षोणीपतिरपि।' इत्थं तदीये मन्त्रे श्रुते सति नृपः प्राह-'मम लोके पलायनापवादः किं न भविष्यती'त्यादिष्टे,ते ऊचुः-

२५. यदपसरति मेषः कारणं तत्प्रहर्तुं मृगपतिरपि कोपात्संकुचत्युत्पतिष्णुः ।
हृदयनिहितवैरा गूढमन्त्रप्रचाराः किमपि विगणयन्तो बुद्धिमन्तः सहन्ते ॥

इति तद्वचसा श्रीमूलराजः श्रीकन्थादुर्गं प्रविवेश । श्रीसपादलक्षीयभूपतिः श्रीगूर्जरदेश एव

1 AD 'सति' नास्ति । 2 P 'मूलनक्षत्रजातत्वात् मूलराज इति' इत्येव पाठः । 3 AD श्रीमूलराजेन । 4 AB अनुन्मत्तेन; D मेव तु मत्ते० । 5 AD ०हासनमिदं । 6 BP राज्ये स्थापितो । 7 BP स एव ।

* B आदर्शे एतादृश एषः श्लोकः—मूलार्कः श्रूयते लोके सर्वकार्यस्य कारकः । अधुना मूलराजस्तु चित्रं लोकेषु गीयते ॥

‡ एतच्चिह्नाङ्कितानि पद्यानि P आदर्शं विना नान्यत्रोपलभ्यन्ते । * एषा पङ्क्तिः अपि P प्रत्यावेव दृश्यते ।

8 BP आदर्शे पूर्वतः श्लोकद्वयमेतत् प्राप्यते । 9 Dab स्मारेषु । 10 B नवरात्रिकपर्वदेशागतो । 11 AD ०स्तवो । 12 BP 'से अनु.' नास्ति । 13 P ०दुर्गं । 14 AD 'एव' नास्ति ।

वर्षाकालमतिक्रामन्नवरात्रेषु समागतेषु तस्यामेव कटकभूमौ शाकम्भरीनगरं निवेश्य तत्र गोत्रमानीय तत्रैव नवरात्राणि प्रारेभे । श्रीमूलराजस्तत्स्वरूपमवगम्य निरुपायान् मन्त्रिणो मत्वा[1] तत्कालोत्पन्नमतिवैभवो राजलाहणिकां प्रारभ्य राजादेशेन समस्तान् समन्ततः सामन्तानाहूय कूटलेखनव्ययकरणप्रतिबद्धपञ्चकुलमुखेन सर्वानपि राजपुत्रान् पदातींश्चान्वयावदाताभ्यामुपलक्ष्य यथोचितदानादिभिरावर्ज्य च समयसङ्केतज्ञापनपूर्वकं तान् सर्वान् सपादलक्षीयनृपतिशिबिरसन्निहितान् विधाय, स्वयं निर्णीते वासरे प्रधानकरभीमारुह्य तत्प्रतिपालकेन समं भूयसीमपि भुवमाक्रम्य, प्रत्यूषकालेऽप्रतर्कित एव सपादलक्षीयनृपतेः कटकं प्रविश्य करभ्या अवरुह्य कृपाणपाणिरेकाक्येव श्रीमूलराजस्तद्दौवारिकमभिहितवान्–'साम्प्रतं नृपतेः कः समयः ? श्रीमूलराजो राजद्वारे प्रविशतीति स्वस्वामिने विज्ञपय'–इति वदंस्तं दोर्दण्डप्रहारेण द्वारदेशादपसार्य, 'अयं श्रीमूलराज एव द्वारे प्रविशती'ति तस्मिन्नभिदधाने शुरुदरान्तःप्रविश्य तस्य राज्ञः पल्यङ्के स्वयं निषसाद । भयभ्रान्तः स राजा क्षणमेकं मौनमवलम्ब्येपत्साध्वसं विधूय, 'भवानेव श्रीमूलराजः?' इत्यभिहिते, श्रीमूलराजस्य ओमिति गिरमाकर्ण्य यावत्समयोचितं किञ्चिद्वक्ति तावत्पूर्वसङ्केतितैस्तैश्चतुःसहस्रप्रमितैः पत्तिभिः स शुरुदरः परितः[10] परिवेष्टयांचक्रे । अथ श्रीमूलराजेन स नृप इत्यभिदधे–'अस्मिन्भूवलये नृपतिः समरवीरः समरे यो मम सम्मुखस्तिष्ठति स कोऽपि नास्त्यस्ति वेति मम विमृशतस्त्वमुपयाचितशतैरुपस्थितोऽसि । परमशनावसरे मक्षिकासन्निपात इव तिलङ्गदेशीयतैलिपाभिधानराज्ञः सेनापतिं मन्नयाय समागतं यावच्छिक्षयामि तावत्त्वया पार्ष्णिघातादिव्यापाररहितेन स्थातव्यमिति त्वामुपरोद्धुमहमागतोऽस्मि' । श्रीमूलराजेनेत्यभिहिते स भूपतिरेवमवादीत्–"यस्त्वं नृपतिरपि सामान्यपत्तिरिव जीवितनिरपेक्षतयेत्थं वैरिगृह एक एव प्रविशसि तेन त्वया सार्द्धमाजीवितान्तं मे सन्धिः' । तेन राज्ञेत्युदिते 'मा मैवं वदे'ति तं निवारयंस्तेन भोजनाय निमन्त्रितोऽवज्ञया तं निषिद्ध्य, करे तरवारिमादायोत्थितस्तां करभीमारुह्य तेन स्कन्धावारेण परिवेष्टितो बारपसेनापतेः कटके पतितः । तं निहत्य दशसहस्रसंख्यांस्तद्वाजिनोऽष्टादशगजरूपाणि यावदयं यावदावासान् दत्ते तावत्प्रणिधिभिरस्मिन्वृत्तान्ते ज्ञापिते सपादलक्षनृपतिः पलायांचक्रे ।

२६) तेन राज्ञा श्रीपत्तने श्रीमूलराजवसहिका[21] कारिता, श्रीमुञ्जालदेवस्वामिनः[22] प्रासादश्च । तथा नित्यं नित्यं सोमवासरे श्रीसोमेश्वरपत्तने[23] यात्रायां शिवभक्तितया व्रजंस्तद्भक्तिपरितुष्टः सोमनाथ उपदेशदानपूर्वं मण्डलीनगरमागतः । तेन राज्ञा तत्र मूलेश्वर इति प्रासादः कारितः । तत्र नमस्त्रिकीपार्हपण प्रतिदिनमागच्छतस्तस्य "नृपतेस्तद्भक्तिपरितुष्टः श्रीसोमेश्वरः 'अहं ससागर एव भवन्नगरे समेष्यामी'त्यभिधाय श्रीमदणहिल्लपुरेऽवतारमकरोत् । समागतसागरसङ्केतेन सर्वेष्वपि जलाशयेषु सर्वाण्यपि वारीणि क्षाराण्यभवन् । तेन राज्ञा तत्र त्रिपुरुषप्रासादः कारितः ।

1 AD शास्त्र । 2 D राजा टिहणिकां; A लिहिणिकां । 3 BP कूणलेखक । 4 DP ज्ञापना० । 5 AD 'स्वयं' नास्ति । 6 D ज्ञात्वा । 7 B शुरुदरा०; P शुरुदरा० । 8 B इत्यभिहिते; P इति तेनाभिहिते । 9 B मूलराजः स्पष्टं जगौ ओमिति० । 10 AD नास्ति । 11 B कोटरतिः; P नास्ति । 12 D विराय 'मम' नास्ति । 13 BP मन्मुखे अवनिष्ठते । 14 BP सारमेर्निर्केति । 15 AD पार्थिवेदर० । 16 AD तैलप० । 17 AD 'स' नास्ति । 18 D यस्य । 19 B जीवितान्तमेव सन्धिः; P ०जीवितमेव सन्धिः । 20 D 'नृपतिः' नास्ति । 21 BP मूलराजसहिका । 22 BP मुञ्जालस्वामिदेवस्या० । 23 AD सोमपत्तने । 24 शिवभक्त्या । 25 BP मण्डलीपुरमागतः । 26 AD 'नृपतेः' नास्ति । 27 AD 'अहं' नास्ति । 28 P ०हिल्लपत्तने ।

२७) अथ तस्य प्रासादस्य[1] चिन्तायकमुचितं तपस्विनं कञ्चिदालोकमानः[2] सरस्वतीसरित्तीरे[3] एकान्तरोपवासपारणकेऽनिर्दिष्टपञ्चग्रासभिक्षाहारं कान्थडि[4]नामानं स[5] तपस्विनमश्रौषीत्। यावत्तन्नमस्याहेतवे नृपतिस्तत्र प्रयाति तावत्तेन तृतीयज्वरिणा स ज्वरः कन्थायां नियोजित इति नृपतिरालोक्य,[6] तेन राज्ञा 'कथं कन्था कम्पते?' इति पृष्टः। 'नृपेण सह वार्त्ता[7] कर्तुमक्षमतयेह ज्वर आरोपित' इत्यभिहिते पार्थिवः प्राह–'यद्येतावती शक्तिर्भवतस्तदा ज्वरः किं न सर्वथा प्रहीयते' इति राजादेशे–

२६. 'उपतिष्ठन्तु मे रोगा ये केचित्पूर्वसञ्चिताः। आनृण्ये[8] गन्तुमिच्छामि तच्छम्भोः परमं पदम्॥

इति शिवपुराणोक्तान्यधीयन्, नाभुक्तं कर्म न क्षीयते इति जानन् कथममुं विसृजामी'ति तेनाभिहिते त्रिपुरुषधर्मस्थानस्य[9] चिन्तायकत्वाय नृपतिरभ्यर्थयामास।

२७. 'अधिकारात्त्रिभिर्मासैर्माठपत्यात्त्रिभिर्दिनैः। शीघ्रं नरकवाञ्छा चेद्दिनमेकं[10] पुरोहितः॥

इति स्मृतिवाक्यतत्त्वं[11] जानंस्तप उडुपेन संसारसागरमुत्तीर्य कथं[12] गोष्पदे निमज्जामी'ति वचसा निषिद्धो नृपस्ताम्रशासनं मण्डकवेष्टितं निर्माय तस्मै भिक्षागताय पत्रपुटे मोचयामास। स तदजानंस्ततः प्रत्यावृत्तः। पुरा दत्त[13]मार्गोऽपि सरस्वत्याः पूरे तदा न[14] दीयमानमार्गः, आजन्म निजदूषणानि विमृशंस्तात्कालिकभिक्षादोषपरिज्ञानाय यावद्विलोकते तावत्तद्दत्तं[15] ताम्रशासनं ददर्श। तदनु क्रुद्धं तपोधनं विज्ञाय तत्रागत्य नृपस्तत्सान्त्वनाय यावद्विनयवाक्यानि ब्रूते तावत्तेन 'मया दक्षिणपाणिना गृहीतं भवत्ताम्रशासनं कथं वृथा भवती'ति वयजल्लदेवनामा निजविनेयो नृपाय समर्पितः। तेन वयजल्लदेवेन 'प्रतिदिनमङ्गोद्वर्त्तनाय जात्यघुसृणस्याष्टौ पलानि, मृगमदपलचतुष्टयम्, कर्पूरपलमेकम्, द्वात्रिंशद्वाराङ्गनाः, ग्रास[16]सहितं सितातपत्रं च यदा ददासि तदा चिन्तायकत्वमङ्गीकरोमी'त्यभिहिते राज्ञा तत्सर्वं प्रतिपद्य त्रिपुरुषधर्मस्थाने तपस्विभूपतिपदे सोऽभिषिक्तः। कंकूलोल[17] इति प्रसिद्धः*। इत्थं भोगान् भुञ्जानोऽप्य[18]जिह्मब्रह्मचर्यव्रत[19]निरतः स कदाचिन्निशि मूलराजमत्या परीक्षितुमारब्धः[20]। तां[21] ताम्बूलप्रहारेण कुष्ठिनीं विधाय पुनरनुनीतो निजोद्वर्त्तनविलेपनार्तं[22] स्नानोत्सृष्टपयःप्रक्षालनाच्च सज्जीचकार।

[‡अथात्रैव लाखाकोत्पत्ति-विपत्तिप्रबन्धः।]

२८) पुरा कस्मिन्नपि परमारवंशे कीर्त्तिराजदेवा[23]धिपतेः सुता कामलतानाम्नी। सा बाल्ये सममालिभिः[24] कस्यापि प्रासादस्य पुरो रममाणा, वरान् वृणीतेति ताभिर्व्याह्रियमाणा[25] सा कामलता घोरान्धकारनिरुद्धनयनमार्गा प्रासादस्तम्भान्तरितं फूलडा[26]भिधानं पशुपालमज्ञातवृत्तान्त[27]मेव वृत्वा[28], तदनन्तरं कतिपयैर्वर्षैः प्रधानवरेभ्य उपढौक्यमाना पतिव्रताव्रतनिर्वहणाय पितरावनुज्ञाप्य निर्बन्धात्तमेवोपयेमे। तयोर्नन्दनो लाखाकः। स कच्छदेशाधिपतिः, प्रसादितयशोराज-

1 AD नास्ति। 2 P ॰दवलोकमानः। 3 BP सरस्वत्याः सरित्तीरे। 4 D कन्थडि॰। 5 D 'स' नास्ति। 6 P ॰रालोकते। 7 BP नास्ति। 8 BP आनृणे। 9 BP चिन्तायकत्वाय त्रिपुरुषधर्मस्थानस्य। 10 ॰दिनं मम। 11 AD 'तत्त्वं' नास्ति। 12 AD 'कथं' नास्ति। 13 AD दत्त॰। 14 P पूरेऽदीयमान॰। 15 B स दत्तताम्र॰; AD तावत्तत्ताम्र॰। 16 D ग्राम॰। 17 A कुंकूलोल; D कंकरौल; Da-c कूंकूरौल। * B नास्त्येतद्वाक्यं। 18 B 'अपि' नास्ति। 19 BD 'व्रत' नास्ति। 20 P ॰मारेभे। 21 D नास्ति 'तां'। 22 D विलेपनस्नानो॰। ‡ D पुस्तक एवैषा पङ्क्तिर्दृश्यते, नान्यत्र। 23 P विनाऽन्यत्र 'देवाधि॰'। 24 P समं सखिभिः। 25 AP ॰माणे। 26 B फूलहा॰। 27 AD ॰मज्ञातवृत्ता तमेव। 28 A वृतं।

वरप्रसादात्सर्वतोऽप्यजेयः, एकादशकृत्वस्त्रासितश्रीमूलराजसैन्यः, कस्मिन्नप्यवसरे कपिलकोट्टदुर्गस्थित एव लाखाकः राज्ञा स्वयं निरुद्धः। तदनु स लक्षः क्वाप्यवस्कन्ददानाय प्रहितं निर्व्यूढसाहसं माहेचाभिधं भृत्यमागच्छन्तमियेष। तत्स्वरूपमवधार्य श्रीमूलराजेन तदागमनमार्गेषु निरुद्धेषु स समासन्नकार्यस्तत्रागच्छन् 'शस्त्रं त्यजे'ति राजपुरुषैरुक्तः स्वस्वामिकार्यसमर्थनाय तथैव कृत्वा समरसज्जं लाखाकमुपेत्य प्राणंसीत्। अथ संग्रामावसरे—

२८. उग्गा गाविउ जिहिं न किउ लक्खउ भणइ तिं घट्ठ। गणिया लब्भइं दीहडा कें दह अहवा अट्ठ॥

इत्यादियोधवाक्यानि "बहूनि व्याहरन् माहेचाभृत्येनोद्भटसुभटवृत्तिदर्शनेन प्रोत्साहितसाहसः श्रीमूलराजेन समं द्वन्द्वयुद्धं कुर्वाणस्तस्याजेयतां दिनत्रयेण विमृश्य तुर्यदिने श्रीसोमेश्वरमनुस्मृत्य ततोऽवतीर्णरुद्रकलया स लक्षो निजघ्ने। अथ भूपतिस्तस्याजिभूपतितस्य वातचलिते श्मश्रुणि पदा स्पृशन् लक्षजनन्या 'लूति'रोगेण भवद्वंशो विपद्यतां' इति शप्तः।

२९. स्वप्रतापानले येन लक्षहोमं वितन्वता। क्षत्रियास्तत्कलत्राणां बाष्पावग्रहनिग्रहः॥

३०. कच्छपलक्षं हत्वा सहसाधिकलम्बजालमायातम्। सङ्गरसागरमध्ये धीवरतां दर्शिता येन॥

३१. मेदिन्यां लब्धजन्मा जितबलिनि बलौ बद्धमूला दधीचौ रामे रूढप्रवाला दिनकरतनये जातशाखोपशाखा। किञ्चिद्भागार्जुनेन प्रकटितकलिका पुष्पिता साहसाङ्के आमूला मूलराज त्वयि फलितवती त्यागिनि त्यागवल्ली॥

३२. स्नाता प्रावृषि वारिवाहसलिलैः संरूढदूर्वाङ्कुरव्याजेनात्तकुशाः प्रणालसलिलैर्दत्त्वा निवापाञ्जलीन्। प्रासादास्तव विद्विषां परिपतत्कुड्यस्थपिण्डच्छलात्कुर्वन्ति प्रतिवासरं निजपतिप्रेताय पिण्डक्रियाम्॥

॥ इति लाखाफूलउत्र-उत्पत्तिविपत्तिप्रबन्धः ॥ ११ ॥

२९) इत्थं तेन राज्ञा पञ्चपञ्चाशद्वर्षाणि निष्कण्टकं साम्राज्यं विधाय सैन्यनीराजनाविधेरनन्तरं राज्ञा प्रसादीकृतं ताम्बूलं षण्ढेन करतलाभ्यामादाय तत्र कृमिदर्शनान्निर्बन्धेन तत्स्वरूपमवगम्य वैराग्यात्संन्यासाङ्गीकारपूर्वं दक्षिणचरणाङ्गुष्ठे वह्निनियोजनापूर्वं गजदानप्रभृतीनि महादानानि ददानोऽष्टभिर्दिनैः—

३३. उन्मेषं पदलग्नमग्निमेकं विषेहे विनयैकवश्यः। प्रतापिनोऽन्यस्य कथैव का यैर्भिमेद भानोरपि मण्डलं यः॥

इत्यादिभिः स्तुतिभिः स्तूयमानो दिवमारुरोह।

संव० ९९८ पूर्वं वर्ष ५५ राज्यं श्रीमूलराजस्य॥ इति मूलराजप्रबन्धः॥ १२॥

[१८] *वल्मिषय कपाले निःशेषितनिजद्विषि। राज्ञा चामुण्डराजोऽभूत् महीमण्डलमण्डनम्॥

[१९] *विरोधिवनिताचित्तताप्याप्यापनपण्डिताः। यदीयाः कटकारम्भाः कृतजम्मारिभीतयः॥

[२०] *पाणिपङ्कजसंगिन्या स्फुरत्कोशनिलामया। यस्यासिभ्रमरश्रेण्या भिन्ना वंशाः क्षमाभृताम्॥

---

1 AD कोट; B कोट। 2 BP 'लाखाक.' नास्ति। 3 A 'राज्ञा' नास्ति। 4 P ०मिधानभृत्यं। 5 B सायंः; P [illegible]। 6 D [illegible]। 7 P ते। 8 B [illegible]। 9 P [illegible]। 10 B ०बहूनि योधवाक्यानि व्या०; AD 'बहूनि' स्थाने [illegible] इति पाठान्तरम्। 11 D ०भृत्येनोद्भटवृत्तिद०। 12 B नास्ति 'अथ'। 13 P विना भाववन्मत्र 'भूपतिः'। 14 P [illegible]। 15 AD [illegible]। 16 B [illegible]। 17 B [illegible]। 18 AD प्रसाद०। 19 P दिवा। 20 P [illegible]। * इदं पद्यत्रयं [illegible] B प्रतौ। ‡ B प्रतौ [illegible]; AD प्रतौ तु द्वितीयपद्यान्ते लिखिता दृश्यते। 21 AD [illegible]। 22 D [illegible] नास्ति। 23 BP [illegible]। 24 B [illegible]; P [illegible]। 25 P केवलं 'इति'। § D[illegible] इदं [illegible]। * [illegible] P [illegible]।

३०) संवत् १०५३ पूर्वं वर्ष १३ श्रीचामुण्डराजेन[1] राज्यं कृतम् ।

[२१] *लोकत्रयोल्लसत्कीर्तिर्महीपतिमतल्लिका । राजा वल्लभराजाख्यस्ततस्तत्तनुभूरभूत् ॥

[२२] *उपरुन्धन् विरुद्धानां पुरीः पुरुपपौरुषः । जगज्झम्पन इत्येष विशेषज्ञैरुदीरितः ॥

३१) सं० १०६६ पूर्वं मास ६ श्रीवल्लभराजेन राज्यं कृतम् ।

[२३] *बभूव भूपतिस्तस्यावरजो विरजस्तमाः । श्रीमान् दुर्लभराजाख्यः सुदुर्लभयशाः परैः ॥

[२४] *कालेन करवालेन भोगिनेवाभिरक्षितम् । निधानमिव यद्राज्यमनाहार्यं परैरभूत् ॥

[२५] *सर्वथानुपभोग्येषु यस्य सौभाग्यभासिनः । न करः परदारेषु द्विजसारेषु चापतत् ॥

३२) सं० १०६६ पूर्वं व० ११ मा० ६ श्रीदुर्लभराजेन राज्यं कृतम् ।
अथ तेन राज्ञा दुर्लभेन श्रीपत्तने श्रीदुर्लभसरो रचयांचक्रे ।

[२६] *तस्य भ्रातृसुतः श्रीमान् भीमाख्यः पृथिवीपतिः । विष्टपत्रितयामीष्टप्रवृत्तिप्रतिभूरभूत् ॥

(अत्र A आदर्शानुसारी मुद्रितपुस्तकस्थः कालक्रमसूचकोऽयं पाठ एतादृशः—)

[अथ सं० १५० (? १०५२) श्रावणसुदि ११ शुक्रे पुष्यनक्षत्रे वृषलग्ने श्रीचामुण्डराजो राज्ये उपाविशत् । अनेन श्रीपत्तने चन्दनाथदेव–चाचिणेश्वरदेवप्रासादौ कारितौ ।

सं० ५५ (? १०६५) अश्विनिशुदि ५ सोमे निरुद्धं वर्ष १३, मास १, दिन २४ राज्यं कृतं ।

सं० १०५५ (? १०६५) अश्विनशुदि ६ भौमे ज्येष्ठानक्षत्रे मिथुनलग्ने श्रीवल्लभराजदेवो राज्ये उपविष्टः ।

अस्य राज्ञो मालवकदेशे धाराप्राकारं वेष्टयित्वा शीलीरोगेण विपत्तिः सञ्जाता । अस्य 'राजमदनशंकर' इति तथा 'जगझंपण' इति बिरुदद्वयं संजातम् । सं० १० (? १०६६) चैत्रशुदि ५ निरुद्धं मास ५, दिन २९ अनेन राज्ञा राज्यं कृतम् ।

सं० १५५(१०६६ ?) चैत्रशुदि ६ गुरौ, उत्तराषाढनक्षत्रे मकरलग्ने तद्भ्राता दुर्लभराजनामा राज्येऽभिषिक्तः। अनेन श्रीपत्तने सप्तभूमिधवलगृहकरणं व्ययकरणहस्तिशालाघटिकागृहसहितं कारितम् । स्वभ्रातृवल्लभराजश्रेयसे मदनशङ्करप्रासादः कारितस्तथा दुर्लभसरः कारयांचक्रे । एवं १२ वर्ष राज्यं कृतं ।]

३३) तदनु [AD प्रतौ–सं० १०५ (१०७८) ज्येष्ठसुदि १२ भौमे अश्विनीनक्षत्रे मकरलग्ने— एतावानधिकः पाठः] श्रीभीमाभिधानं निजमङ्गजं राज्येऽभिषिच्य स्वयं तीर्थोपासनवासनया वाणारसीं प्रति प्रतिष्ठासुर्मालवकमण्डलं प्राप्य तन्महाराजश्रीमुञ्जेन 'छत्रचामरादिराजचिह्नानि विमुच्य कार्पटिकवेषेणैव पुरतो व्रजं, यद्वा युद्धं विधेहि'–इत्यभिहितोऽन्तरा धर्मान्तरायमुदितमवगम्य तं वृत्तान्तं नितान्तं श्रीभीमराजाय समादिश्य कार्पटिकवेषेण तीर्थे गत्वा परलोकं साधयामास ।

३४) ततः प्रभृति मालविकराजभिः सह गूर्जरनृपतीनां मूलविरोधबन्धः संवृत्तः ॥१३॥

---

1 P चामुण्डेन । * तारकचिह्नाङ्कितानीमानि पद्यानि केवल P प्रतौ प्राप्यन्ते । 2 AD मा(भा?)गुः शुदं । 3 P भासाय । 4 AD मजेति । 5 A भीमराजे । 6 P तीर्थं । 7 BP मालवराजा । 8 AD ०विरोधः, P विरोधबन्धः प्रवृत्तः ।

[६. मुञ्जराजप्रबन्धः।]

३५) अथ प्रस्तावायातं[1] मालवकमण्डलमण्डनश्रीमुञ्जराजचरितमेवम्—पुरा तस्मिन्मण्डले[2] श्रीपरमारवंश्यः श्रीसिंहभट[3]नामा नृपती राजपाटिकायां परिभ्रमन् शरवणमध्ये जातमात्रमतिमात्ररूपपात्रं[4] कमपि बालमालोक्य[5] पुत्रवात्सल्यादुपादाय[6] देव्यै समर्पयामास। तस्य सान्वयं[7] मुञ्ज इति नाम निर्ममे†। तदनु सीन्धल[8] इति नाम्ना सुतः समजनि। निःशेषराज[9]गुणपुञ्जमञ्जुलस्य [10]श्रीमुञ्जस्य राज्याभिषेकचिकीर्षु[11]र्नृपस्तत्सौधमलङ्कुर्वन्नमन्दमन्दाक्षतया निजवधूं वेत्रासनान्तरितां विधाय प्रणामपूर्वं भूपति[12]माराराध। राजा[13] तं प्रदेशं विजनमवलोक्य[14] तज्जन्मवृत्तान्तमादित एव तस्मै निवेद्य 'तव[15] भक्त्या परितोषितः सन् सुतं विहाय तुभ्यं राज्यं प्रयच्छामी[16]'ति वदन्; 'परमनेन सीन्धलनाम्ना बान्धवेन समं प्रीत्या वर्त्तितव्यमि'त्यनुशास्तिं दत्त्वा तस्याभिषेकं चकार। स्वजन्म[17]वृत्तान्तप्रसरशङ्किना तेन स्वदयिताऽपि निजघ्ने। तदनु पराक्रमाक्रान्तभूतलः समस्तविद्वज्जन[18]चक्रवर्ती रुद्रादित्यनाम्ना महामात्येन चिन्तितराज्यभारः[19], तं सीन्धलनामानं[20] भ्रातरमुत्कटतयाऽऽज्ञाभङ्गकारिणं स्वदेशान्निर्वास्य सुचिरं राज्यं चकार।

३६) स सीन्धलो गूर्जरदेशे समागत्य [अर्बुदतलहट्टिकायां][21] काशहृदनगरसन्निधौ निजां पल्लीं निवेश्य दीपोत्सव[22]रात्रौ मृगयां कर्तुं प्रयातः। चौरवध्य[23]भूमेः सन्निधौ शूकरं चरन्तमालोक्य, शूलिकायाः पतितं चौरशवमजानन्, जानुनाधो विधाय यावत्प्रतिकिरि[24] शरं सज्जीकुरुते तावत्तेन शवेन सङ्केतितः। ततस्तं करस्पर्शान्निवार्य, शूकरं तं शरेण विदार्य, यावदाकर्षति तावत्स शवो †ऽट्टहा[25]सपूर्वमुत्तिष्ठन् सीन्धलेन प्रोचे–'तव सङ्केतकाले शूकरे शरप्रहारः श्रेयान्, किं वाऽवबुध्य मत्प्रदत्तः[26] प्रहारः?' इति तद्वाक्यान्ते स[27] छिद्रान्वेषी प्रेतः तन्निःसीमसाहसेन परितुष्टो वरं वृणु† इत्यभिहितः, 'मम बाणः क्षितौ मा पतत्वि'ति याचिते, भूयोऽपि 'वरं वृणु' इति श्रुत्वा, 'मत्सुतयोः सर्वापि लक्ष्मीः स्वाधीने'ति। तत्साहसचमत्कृतः स प्रेत इत्याह–'त्वया मालवमण्डले गन्तव्यमिति। तत्र श्रीमुञ्जराजा सन्निहितविनाशस्तत्र[28] त्वया स्थातव्यम्। तत्र तवान्वये राज्यं भविष्यती'ति तत्प्रेषितस्तत्र गत्वा श्रीमुञ्जराज्ञः सम्पदः पदं कमपि जनपदमवाप्य पुनरुत्कटतया [*प्रवृत्ते। अन्यदा तैलिकात् पाराचिर्याचिता। तेन नार्पिता। ततः कोपादुद्दाल्य तत्कण्ठे झालयित्वा क्षिप्ता। तैलिकेन रावा कृता। राजा पुनः सरलामकारयत्। अलोकटरवेन भीतो मुञ्जनृपः। इतश्च केऽपि मर्दनकारिणो महाकला-

1 Pa ०एव व्याख्यास्यामः। 2 Pb मालवमण्डले। 3 D सिंहदन्तभट०; BP श्रीहर्षनामा। 4 A रूपमात्रं; B रूपपात्रमतिमात्रं। 5 Pa बालकमवलोक्य। 6 Pb सपुत्रत्वेन पुत्रवा०। 7 A चान्वयं। † P प्रतौ 'सा स्वयं तस्य मुञ्ज इति नाम विदधे' एतादृशं वाक्यम्। 8 B सींधुल; P सिन्धुराज। 9 AD 'राज' नास्ति। 10 AD ०मञ्जुलमुञ्जस्य। 11 Pb चिकीर्षु०। 12 BP नृपति०। 13 Pa राजानं तं। 14 BP ०मालोक्य। 15 BP भवद्भक्त्या। 16 BP ददामि। 17 B Pa तस्य स्वज०। 18 D सज्जन०। 19 AD ०राज्यः। इतोऽग्रे D पुस्तके एतादृश्यधिका पङ्क्तिरुपलभ्यते—

'चिरं सुखमनुभवन् कस्यामपि योषितनुरक्तश्चित्रशालाभिधकरसमधिरूढ़ः द्वादशयोजनीं निशि प्रयाति प्रत्यायाति च। तया समं निक्षेपे जाते इमं दोधकमप्रेषीत्—(२२) *मुञ्ज पवड्डा दोरडी पेक्खिजसि न गमारि। असाढि घण गज्जीइं चिक्खिल्लि होसेऽवारि ॥१'

20 B सिन्धुराजनामानं। 21 केवलं Pb प्रतौ इदं पदं दृश्यते। 22 AD दीपोत्सवे। 23 AD वध०। 24 Pb शूकरं प्रति। 25 B स्वहास०। 26 D महाप्रदत्तः। 27 Pa तस्य स। † एतद्द्विदण्डान्तर्गतपाठस्थाने Pb प्रतौ 'अट्टहासं कृत्वोत्पपात, भणीते तुष्टः प्रेतो वरं वृणु' एतावान् एव संक्षिप्तः पाठो लभ्यते। 28 AD ०विनाशस्तथापि तत्र त्वया गन्तव्यमेव। * एतत्कोष्ठकान्तर्गताः पङ्क्तयः केवलं Pb प्रतौ लिखिता लभ्यन्ते।

वन्तो देशान्तरादागता राज्ञो मिलिताः । तत्पार्श्वात्स्वाङ्गे मर्दनान् दापयति । ते च स्वकलया हस्तपादायङ्गान्युत्तार्य पुनः सज्जीकुर्वन्ति । एवं द्वित्रिः कारितम् । हृष्टो राजा सीन्धलस्याप्येवं कारयति । तस्याङ्गेषूत्तारितेषु निश्चेष्टतां गतस्य नेत्रोद्धारं चकार । सज्जस्य तस्य नेत्रहरणे कः शक्तः । अतोऽनेन प्रकारेण] श्रीमुञ्जेन निगृहीतनेत्रः काष्ठपञ्जरनियन्त्रितो भोजं सुतमजीजनत् । सोऽभ्यस्तसमस्तशास्त्रः षट्त्रिंशद्दण्डायुधान्यधीत्य द्वासप्ततिकलाकूपारपारद्रुमः समस्तलक्षणलक्षितो ववृधे । तज्जन्मनि जातकविदा केनापि नैमित्तिकेन जातकं समर्पितम् ।

३४. पञ्चाशत्पञ्च वर्षाणि मासाः सप्त दिनत्रयम् । भोक्तव्यं भोजराजेन सगौडं दक्षिणापथम् ॥

इति श्लोकार्थमवगम्यास्मिन्सति मत्सूनो राज्यं न भविष्यतीत्याशङ्क्यान्त्यजेभ्यो वधाय तं समर्पयामास । अथ तैर्निशीथे माधुर्यधुर्यां तन्मूर्त्तिमवलोक्य जातानुकम्पैः सकम्पैश्चेष्टदैवतं स्मरेत्यभिहिते—

३५. मान्धाता स महीपतिः कृतयुगालङ्कारभूतो गतः सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः ।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो यावद्भवान् भूपते नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति ॥

इदं काव्यं पत्रके आलिख्य तत्करेण नृपतये समर्पयामास । नृपतिस्तद्दर्शनात्खेदमेदुरमना अश्रूणि मुञ्चन् भ्रूणहत्याकारिणं स्वं निनिन्द ।

[२७] [*हा हा सछ्इ हियए कवं तुह भोज भणिय जं मरणे । मुह पाव दुट्ठ दोहगनिठामठामस्स तउं सरणे ॥
[२८] इणि राजिइं न हु काजु भोज गुणागर तूह विणु । काठ दिवारउ आज जिम जाई भोजह मिर्दु ॥
ततो मंत्रिप्रबोधवाक्यं राज्ञः—
[२९] सामिय अतिहिं अजाणु जं इण परि बोलइ हिव । जाण्या एहु प्रमाणु कीधउं जं न कयत्थियइ ॥
इति राज्ञा भूयो भूयो विलप्यमानेन]

३७) अथ तैस्तं सबहुमानमानीय युवराजपदवीदानपूर्वं संम्मान्य तिलङ्गदेशीयराज्ञा श्रीतैलिपदेवनाम्ना सैन्यप्रेषणैराक्रान्तो रोगग्रस्तेन रुद्रादित्यनाम्ना महामात्येन निषिद्ध्यमानोऽपि तं प्रति प्रतिष्ठासुः,

[*मंत्रिणा उक्तम्—
[३०] देव अम्हारी सीष कीजइ अवगणिअइ नही । तूं चालंती भीष इणि मंत्रिहिं हुसइ सही ॥
[३१] हलीयउं रायह राजु तई थइठइ मई लंघीयइ । ए पुणि वडउं अकाजु तूं जाणे मालव धणी ॥
[३२] सामी मुहतउ वीनवइ ए छेहलउ जुहारु । अम्ह आइसु हिव सीसि तुह पडतउं देपूं छारु ॥
—इति मंत्रिणा निषिद्धोऽपि ससैन्यश्चचाल ।]

गोदावरीं सरितमवधीकृत्य तामुल्लङ्घ्य प्रयाणकं न कार्यमिति शपथदानपूर्वं व्यापिद्धोऽपि तं पुरा षोढा निर्जितमित्यवज्ञया पश्यन्नतिरेकवशात्तां सरितमुत्तीर्य स्कन्धावारं निवेशयामास । रुद्रादित्यो नृपतेस्तद्वृत्तान्तमवगम्य कामपि भाविनीमविनीततया विपदं विमृश्य स्वयं चितानले

---

1 ADPa समस्तराजन्याय । 2 ADP 'दण्ड' नास्ति । 3 A जातिकविदा । 4 BP सप्तमासा ; Pa सप्तमास॰ । 5 PPa भोजदेवेन भोक्तव्यं । 6 PPa ॰मवधार्य । 7 AD ॰मवधार्य । 8 BP ॰भिहित । 9 Dc ॰स्मरद । 10 Db सर्वेऽपि चास्तं गताः । 11 Db मुञ्ज । * कोष्ठकान्तर्गता॰ पद्यः केवल Pa प्रतौ लभ्यन्ते । 12 Pb स्थापिते । 13 AP व्यापिध्य; Pa निषिध्य; B व्यापिधि । 14 P निवेश्य स्थित॰ । 15 B तं नृपतेर्वृ॰; P तं नृपस्य वृ॰। AD नृपतेर्वृ॰ । 16 PPa ॰माकर्ण्य । 17 P भाविनीं विपदं विमृश्य नृपस्याविनीततया चितानले ।

प्रविवेश। अथ तैलिपेन[1] तत्सैन्यं छलबलाभ्यां हतविप्रहतं कृत्वा मुञ्जरज्वा[3] विबध्य श्रीमुञ्जराजो जगृहे[4]। कारागृहे[5] निहितः। काष्ठपञ्जरनियन्त्रितो मृणालवत्या तद्भगिन्या परिचार्यमाणस्तया सह जातकलत्रसम्बन्धः, पाश्चात्यैर्निजप्रधानैः सुरङ्गादानपूर्वं तत्र ज्ञापितसङ्केतः, कदाचिद्दर्पणे स्वं प्रतिबिम्बं पश्यन्नज्ञातवृत्त्या पृष्ठतः समागताया मृणालवत्या वदनप्रतिबिम्बं जराजर्जरं मुकुरे निरीक्ष्य यूनः श्रीमुञ्जस्य वदनसामीप्यात्तद्विशेषविच्छायतया तां विषण्णामालोक्यैवमवादीत्–

३६. मुञ्जु[6] मणइ मुणालवइ[7] जुव्वणु[8] गयउं[9] न झूरि। जइ सक्कर सयखण्ड थियँ[10] तोइ स मींठी चूरि[11]॥

इति तां सम्भाष्य स्वस्थानं प्रति यियासुस्तद्विरहासहो भयात्तं वृत्तान्तं ज्ञापयितुमशक्तो[12] भूयो भूयः प्रोच्यमानोऽपि तां चिन्तामनुचरन्, अलवणातिलवणै[13]रसवतीं भोजितोऽपि तदास्वादानवबोधात्तया निर्बन्धयन्धुरया गिरा सप्रणयं पृष्टः प्राह–'अहमनया सुरङ्गया स्वस्थाने गन्तास्मीति। चेद्भवती तत्र समुपैति तदा महादेवीपदेऽभिषिच्य प्रसाददफलं दर्शयामी[14]'त्यभिहिते, 'यावदाभरणकरण्डिकामुपानयामि तावत्क्षणं प्रतीक्षस्वे'त्यभिदधानाऽसौ[15] कालायिनी 'तत्र गतो मां परिहरिष्यती'ति विमृशन्ती स्वभ्रातुर्भूपतेस्तं वृत्तान्तं निवेद्य, विशेषतो विडम्बनाय बन्धनबद्धं कारयित्वा प्रतिदिनं[16] भिक्षाटनं कारयामास। स प्रतिगृहं परिभ्रमन्निर्वेदमेदुर[17]तयेमानि वाक्यानि पपाठ। तथाहि[18]–

३७. *सउ चित्तह सट्ठी मणह बत्तीसडा[19] हियांह[20]। अम्मी[21] ते नर ढड्ढसी[22] जे वीससइं तियांह[23]॥

अपि च[24]–

३८. झोली[25] तुट्टवि[26] किं न मूउं[27] किं[28] हुउ न छारह पुञ्जु[29]। †हिण्डइ दोरी दोरियउं[30] जिम मक्कडु[31] तिम मुञ्जु[32]॥

‡तदा प्रोक्तं सज्जनैः–

[३३] ‡चित्ति विसाउ न चिंतीयइ रयणायर गुणपुञ्ज। जिम जिम वायइ विहि पडहु तिम नच्चिज्जइ मुञ्ज॥

‡ततः केनापि दयार्द्रचेतसा सता कथितम्–

[३४] ‡सायरु पा(खा)इ लंक गढु गढवइ दस सिरु राउ। भग्ग प(ख)इ सो भज्जि गउ मुंज म करसि विसाउ॥

तथा च[33]–

३९. गय[34] गय रह गय तुरय गय पायक्कडा निभिच्च। सग्गट्ठियँ[35] करि मन्तणउं मुहुंता[36] रुद्दाइच्च॥

अथान्यस्मिन्नवसरे कस्यापि गृहपतेर्गृहे भिक्षा[37]निमित्तं नीतः। पङ्कजरूपाणिं तत्पत्नीं तक्रं पाययित्वा गर्वोद्धुरकन्धरां भिक्षादाननिषेधं विदधतीं मुञ्जः प्राह–

1 Pa तैलपदेवेन। 2 Pa नास्ति। 3 Pb रज्जुभिः°। 4 Pa निजगृहे। 5 P कारागारे काष्ठपञ्जरे क्षिप्तः। कमलादित्यमंत्रिणा मोचितः। काष्ठपञ्जरमध्ये रक्ष्यमाणो मृणालवत्या°। 6 PD मुञ्ज; B पभणइ मुञ्जु। 7 P मिणाल°; Pa मणाल°। 8 DP जुव्वण। 9 A गयुं मन, D गयुं न; P गिउं म। 10 P थिय; Pb हुइ। 11 Pb चूरि। 12 AD ज्ञापयितु°। 13 Pa °लवणौ। 14 Pa दर्शयामि इति तावत्क्षणं; Pb दर्शयामीति तावत् क्षणं प्रतीक्षस्वेत्यभिदधाना आभरणकरण्डिकामुपानयामि असौ तत्र। 15 PPa असौ तत्र गतो मां कालायिनी परि°। 16 ABD प्रतिगृहं। 17 Pb मेदुरवेषतया°। 18 A तिना नास्त्यत्र। * D पुस्तके– सउचित्तहरिसट्ठी मम्मणह बत्तीसडीहियाँ। हिअम्मि ते नर दड्ढसीसे जे वीससइं तियाँ।' एतादृशीयं अस्पष्टा गाथा। 19 B बत्तीसडी; Pa पंचासडी। 20 A हियाहं; B हियाइं। 21 Pa अम्मी। 22 P ढड्ढसी। 23 Pa त्रियांह; Da जे पत्तिमइ तांह। 24 AD नास्ति। 25 D झाली। 26 A तुट्टी; B तुटी; P तुट्टवि; Pa तुट्टवि। 27 A मुय; Pa मूयउ। 28 A किं न हूय; B हूय किम हउ; Pa न हूयउ। 29 AD पुञ्ज। † Pa प्रतौ 'घरि घरि बद्धउ माचीयइ' एतादृशः पादः। 30 P दोरिउ; D बन्धीयउ। 31 [illegible] मक्कडु; PD मंकड। 32 DP मुञ्ज। ‡ एतच्चिह्नाङ्कितानि पद्यानि पङ्क्तयोश्च केवलं Pa प्रतौ प्राप्यन्ते। 33 P नास्ति। 34 B हय। 35 Pa °ट्ठिय। 36 B महुता, Pa महंता; Pb रहुर। 37 Pa भिक्षार्थं।

४०. *मोली मुन्धि म गव्वु करि पिक्खिवि पड्डुरूयाइं। चउदह[1] सइं छहुत्तरइं[2] मुञ्जह गयह गयाइं ॥

{†सा इत्थमुत्तरं ददौ–

[३५] ‡च्यारि बइल्ला धेनु दुइ मिट्ठा[4] बुल्ली नारि। कांहुं[5] मुंज कुडंबियांहं[6] गयवर बज्झइं[7] बारि ॥

¶पुनर्भ्राम्यमाणेन मुंजेन वाप्याद्युपविष्टेन राज्ञा वितर्कितेन सता प्रोक्तम्–

[३६] ¶आपद्गतं हससि किं द्रविणान्ध मूढ लक्ष्मीः स्थिरा न भवतीति किमत्र चित्रम्।
त्वं किं न पश्यसि घटीर्जलयन्त्रचक्रे रिक्ता भवन्ति भरिताः पुनरेव रिक्ताः ॥

¶तथा पृष्ठे लग्नैः पुरुषैर्विडम्ब्यमान इत्यूचे–

[३७] ¶जे थक्का गोला नई हूं बलि कीजूं ताह। मुंज न दिट्ठउ विहलिउ रिद्धि न दिट्ठ खलाहं ॥

¶पुनः स्वं मन्दबुद्धित्वं स्मरन् इत्युक्तवान्–

[३८] ¶दासिहिं नेह न होइ नाना निराहिं आणीयइ। राउ मुंजेसरु जोइ घरि घरि भिक्खु भमाडीइ ॥

¶अपि च–

[३९] ¶वेसा छंडि वडायती जे दासिहिं रवंति। ते नर मुंजनरिन्द जिम परिभव घणा सहंति ॥

[४०] §मा मङ्कड कुरूद्वेगं यदहं खण्डितोऽनया। रामरावणमुञ्जाद्याः स्त्रीभिः के के न खण्डिताः ॥

[४१] §रे रे यन्त्रक मा रोदीर्यदहं भ्रामितोऽनया। कटाक्षाक्षेपमात्रेण कराकृष्टौ च का कथा ॥

[४२] §जा मति पच्छइ सम्पजइ सा मति पहिली होइ। मुञ्ज भणइ मुणालवइ विघन न वेढइ कोइ ॥||

[४३] §सुहृद्देवेन्द्रस्य क्रतुपुरुषतेजोंऽशजनकः प्रमीतः शय्यायां सुतविरहदुःखाद्दशरथः।
ज्वलत्तैलद्रोण्यां निहितवपुषस्तस्य नृपतेश्चिरात्संस्कारोऽभूदहह विषमाः कर्मगतयः ॥+

[४४] §अलङ्कारः शङ्काकरनरकपालं परिजनो विशीर्णाङ्गो भृङ्गी वसु च वृष एको बहुवयाः।
अवस्थेयं स्थाणोरपि भवति सर्वामरगुरोर्विधौ वक्रे मूर्ध्नि स्थितवति वयं के पुनरमी ॥÷ }

इत्थं सुचिरं भिक्षां भ्रामयित्वा वध्यभूमौ नृपादेशाद्वधविधौ नीतः {×सन् परिधानवस्त्रं गृहीतः। तदोचे–

[४५] इयं कटी मत्तगजेन्द्रगामिनी विचित्रसिंहासनसंस्थिता सदा।
अनेकरामाजघनेषु लालिता विधेर्वशाद्भिर्वसनीकृताऽधुना ॥

तदनु मुञ्जेन पृष्टं कया मारणविडम्बनया मां मारयिष्यथ। वृक्षशाखावलम्बनात्। तदोवाच–

[४६] क्व तरुरेष महावनमध्यगः क्व च वयं जगतीपतिसूनवः।
अघटमानविधानपटीयसो दुरवबोधमहो चरितं विधेः ॥ }

---

* P धणवन्ती मा गव्व वहिसि; Pa मा गोलिणि गव्वु वहिसि। 1 AD चउदसइं। 2 A छहत्तरइं; P बहुत्तरह। {† एतत् कोष्ठकान्तर्गतः एषः सर्वोऽपि पाठः AB प्रतौ न विद्यते। D, P, Pa, Pb आदर्शेषु भिन्नभिन्नक्रमेण न्यूनाधिकरूपेण च एतत्पाठगतानि पद्यानि समुपलभ्यन्ते। 3 Pa अथ तया प्रोक्तम्। ‡ D पुस्तके नास्तीदं पद्यम्। 4 Pa मीठा बोली। 5 Pa काहइं। 6 Pa कुणंबिया। 7 Pa बज्झइ। ¶ एतच्चिह्नाङ्कितानि एतानि पद्यानि वाक्यानि च Pa आदर्शे एवोपलभ्यन्ते। $ इमौ द्वौ श्लोकौ D पुस्तके लभ्येते; Pb प्रतौ अनयोः स्थाने एतादृश एक एव श्लोकः–

रे रे मण्डक मा रोदीर्यदहं खण्डितोऽनया। रामरावणभीमाद्या योषिद्भिः के न खण्डिताः ॥

§ एतच्चिह्नाङ्कितानि पद्यानि Pa प्रतौ नोपलभ्यन्ते। || D पुस्तके एतत्पद्याग्रे 'यश पुञ्जो मुञ्जो॰' एतत्पद्यं लिखितं लभ्यते, तच्च P आदर्शानुसारेण प्रकरणान्ते स्थितं, तत्रैव सम्बद्धं प्रतिभाति। + इतोऽग्रे D पुस्तके 'आपद्गतं हससि किं॰' एतत्पद्यं प्राप्यते, तच्च Pa आदर्शानुसारेणेतः पूर्वमेवागतमस्ति। ÷ इतोऽग्रे D पुस्तके 'सायरखाइ लंकगढ॰' इदं पद्यं विद्यते, तच्च Pa आदर्शानुसारेणोपर्यागतम्। {× एष पाठः केवलं Pa प्रतौ प्राप्यते।

तैरिष्टं[1] दैवतं स्मर इत्यभिहितः प्राह[2]–

४१. लक्ष्मीर्यास्यति गोविन्दे वीरश्रीर्वीरवेश्मनि[3] । गते मुञ्जे यशःपुञ्जे निरालम्बा सरस्वती ॥

इत्यादि तद्वाक्यानि [4]बहूनि यथाश्रुतमवगन्तव्यानि । तदनु तं मुञ्जं निहत्य तच्छिरो राजाङ्गणे शूलिकाप्रोतं कृत्वा नित्यं दधिविलिप्तं कारयन्निजममर्षं पुपोष ।

४२. यशःपुञ्जो मुञ्जो गजपतिरवन्तिक्षितिपतिः सरस्वत्याः सूनुः समजनि पुरा यः कृतिरिति ।
■ कर्णाटेशेन स्वसचिवकुशुञ्जैव विधृतः कृतः शूलीप्रोतोऽस्त्यहह विषमाः कर्मगतयः ॥

* * * * *

३८) [5]अथ मालवमण्डले तद्वृत्तान्तवेदिभिः सचिवैस्तद्भ्रातृव्यो भोजनामा राज्येऽभ्यषिच्यत ।

॥ इति श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिते[6] प्रबन्धचिन्तामणौ[7] नृपश्रीविक्रमादित्यप्रमुखमहासात्त्विकपरोपकारादि-गुणरत्नालङ्कृतनृपतिचरित्रवर्णनो नाम प्रथमः प्रकाशः[§] ॥　ग्रंथाग्र ४०४ ॥

[७. अथ भोज-भीमप्रबन्धः ।]

३९) अथ [[7]संवत् १०७८ वर्षे] यदा मालवकमण्डले श्रीभोजराजा राज्यं चकार तदाऽत्र गूर्जरधरित्र्यां चौलुक्य[8]चक्रवर्ती श्रीभीमः पृथिवीं शशास । कस्मिन्नपि निशाशेषे स श्रीभोज[9]ः[10] श्रियं[11] चञ्चलतां निजचेतसि चिन्तयन् कल्लोललोलं निजं[12] जीवितं च विमृशन्[14] प्रातःकृत्यानन्तरं दानमण्डपेऽनुचरैराहूतेभ्योऽर्थिभ्यो यदृच्छया [15]सुवर्णटङ्कान् दातुमारेभे ।

४०) अथ रोहं[16]काभिधानस्तन्महामात्यः कोशविनाशात्तदौदार्यगुणं दोषं मन्यमानोऽपरथा तं दानविधिं निषेद्धुमक्षमः [17]सेवावसरे भग्ने सभामण्डपभारपट्टे–

४३. *'आपदर्थे धनं रक्षेत्' इत्यक्षराणि खटिकयाऽलेखि[18] । प्रातर्यथावसरं नृपतिस्तान्वर्णान्निवर्ण्य समस्तपरिजने[19] तं व्यतिकरमपह्नु[20]वाने †'भाग्यभाजः क्व चापदः' इति नृपतिना लिखिते, 'दैवं हि कुप्यते[21] क्वापि' एवं मन्त्रिलिखनादनन्तरं[22] नृपतिनां[23] तद्विलोक्य 'संश्चितोऽपि[24] विनश्यति ॥' इति पुरो लिखिते स सचिवोऽभयं याचित्वा [25]स्वलिखितं विज्ञ[26]पयामास । तदनु [27]'इयं पण्डितानां पञ्चशती मम मनोगजं ज्ञानाङ्कुशेन वशीकर्तुममा[28]त्रं महामा[29]त्रसन्निभा यथा याचितं ग्रासं लभते । तथा हि,–कङ्कणोत्कीर्णमार्याचतुष्टयमेतत्[30]–

1 AD तैरुक्तमिष्टं । 2 D नास्ति; A ■ मुञ्जः; Pa इत्यभिहिते । 3 Pa ०मन्दिरे । 4 D 'बहूनि' नास्ति; P 'तद्वाक्यानि बहूनि' स्थाने 'तास्सूक्तानि' । 5 Pb प्रतौ इयं पंक्तिरेतादृशी लभ्यते–'ततो मालवे तद् विदित्वा तत्सचिवैस्तद्भ्रातृव्यो भोजो राज्ये न्यस्तः ।' 5 P Pa ०चार्याभिःकृते । 6 Pa ०चूडामणौ । § AD प्रतौ अस्याः पंक्त्याः स्थाने 'इति श्रीविक्रमप्रमुखनृपवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ।' एतादृशी पंक्तिर्लभ्यते । 7 एतद् वाक्यमात्रं Pb प्रतौ उपलभ्यते । 8 A चौलक्य० । 9 D ०वंशीय । 10 P नास्ति; B मालवमहीपालो । 11 B राजश्रिय० । 12 BP 'निज' नास्ति । 13 Pa स्वं । 14 Pa चिन्तयन् । 15 P हेमटं०; Pa स्वर्णटं० । 16 P Pa रोद्दिकाभि० । 17 Pb सेवाव० । * Pa प्रतौ 'आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥' एष संपूर्णः श्लोको लिखितो लभ्यते । 18 BP लिलेख । 19 B परिजनेन; Pa परिषज्जने । 20 B ०मपह्नुवानेन । † एतत्पादस्थाने B 'श्रीमतां कुत आपदः'; P 'महतामापदः कुतः' एतादृशः पाठः । 21 BP कुप्यति । 22 P मन्त्रिणा लिखिते । 23 BP नृपेण । 24 ADP सञ्चयोपि । 25 BP Pa स्वं लेखकं । 26 BP ज्ञापयामास । 27 AD 'इयं' नास्ति । 28 P अमात्र; Dc-d अतिमात्रं; Pb ०मता मत्र । 29 AD महामात्य । 30 Pb चतुष्कमेतत्; BP चतुष्टयमिदं; Pa चतुष्टयं च ।

४४. इदमन्तरमुपकृतये प्रकृतिचला यावदस्ति सम्पदियम् । विपदि नियतोदयायां[1] पुनरुपकर्तुं कुतोऽवसरः ॥

४५. निजकरनिकरसमृद्ध्या धवलय भुवनानि पार्वणशशाङ्क । सुचिरं हन्त न सहते हतविधिरिह सुस्थितं कमपि[2] ॥

४६. अयमवसरः सरस्ते सलिलैरुपकर्तुमर्थिनामनिशम् । इदमपि सुलभमम्भो भवति पुरा जलधराभ्युदये ॥

४७. कतिपयदिवसस्थायी पूरो दूरोन्नतश्च[3] भविता ते । तटिनीतटद्रुपातिनि पातकमेकं चिरस्थायि ॥

४८. किं च[4]– यदनस्तमिते सूर्ये न दत्तं धनमर्थिनाम् । तद्धनं नैव जानामि प्रातः कस्य भविष्यति ॥

इति स्वकृतं कण्ठाभरणीभूतं[5] श्लोकमिष्टं मन्त्रमिव जपन्[6], मन्त्रिन्[7] प्रेतप्रायेण भवता कथं विप्रलभ्ये[8]।

४१) अथान्यस्मिन्नवसरे राजा राजपाटिकायां सञ्चरन् सरित्तीरमुपागतः । तन्नीरमुल्लङ्घ्यागच्छन्तं दारिद्र्योपद्रुतं काष्ठभारवाहकं कमपि विप्रं प्राह–

४९. 'कियन्मात्रं जलं ? विप्र !' 'जानुदघ्नं नराधिप !' । इति तेनोक्ते
'कथं सेयमवस्था ते ?' इति नृपेण[9] पुनरुक्ते 'न सर्वत्र भवादृशाः ॥'

इति †तद्वाक्यान्ते यत् पारितोषिकं नृपतिरस्मै अदापयत्† तन्मन्त्री धर्मवहिकायां श्लोकपदं लिलेख । तद्यथा[10]–

५०. लक्षं लक्षं पुनर्लक्षं मत्ताश्च दश दन्तिनः । दत्तं भोजेन[11] तुष्टेन जानुदघ्नप्रभाषिणे[12] ॥

४२) अथान्यस्यां[13] निशि निशीथसमयेऽकस्माद्विगतनिद्रो राजा राजानं गगनमण्डले नवोदितमालोक्य स्वसारस्वताम्भोधिप्रोन्मीलद्वेलां[14]निभमिदं काव्यार्द्धमाह–

५१. यदेतच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां प्रकुरुते[15] तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति तथा ।

इति राज्ञा भूयोभूयो निगद्यमाने कश्चिच्चौरो नृपसौधे खात्रपातपूर्वं कोशभुवने प्रविश्य[16] प्रतिभाभरं निषेद्धुमक्षमः[17]–

अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्ततरुणीकटाक्षोल्कापातव्रणशतकलङ्काङ्किततनुम् ॥

इति तत्पठनानन्तरं[18] चौरमङ्गरक्षैः[19] कारागारे निवेशयामास । ततोऽहर्मुखे समामुपनीताय[20] तस्मै चौराय यत्पारितोषिकं[21] राज्ञा प्रसादीकृतं तद्धर्मवहिकानियुक्तो नियोग्येवं काव्यमलिखत्[22]–

५२. अमुष्मै चौराय प्रतिनिहितमृत्युप्रतिभिये[23] प्रभुः प्रीतः प्रादादुपरितनपादद्वयकृते ।
सुवर्णानां कोटीर्दश दशनकोटिक्षतगिरीन् करीन्द्रानप्यष्टौ मदमुदितगुञ्जन्मधुलिहः ॥

[‡पुनरन्यदा गवाक्षजालिकाप्रविष्टं चन्द्रं दृष्ट्वा प्राह–

1 AD ॰तोदितायां । 2 AD किमपि । 3 P दूरोन्नतोपि; AD दूरोन्नतोपि चण्डरयः । 4 A 'किं च' नास्ति । 5 AD Pb भरणीकृतं । 6 AD ॰मिष्टमन्त्रवज्जपन् । 7 P Pa नास्ति । 8 A ॰लम्प्यः; D ॰लम्भ्यः । 9 D नृपेणोक्ते विप्र॰ । † द्विदण्डान्तर्गतपाठस्थाने Pb प्रतौ 'तद्वाक्यं चिन्तयन् पारितोषिके लक्षस्वर्णमदापयत् । तद् भाण्डागारिको नार्पयति । फेरकमेव कारयति । तद्वार्ता ज्ञाते प्रतिफेरकं लक्षं वर्द्धयति नृपः । वारद्वयफेरके लक्षत्रयं दश गजानदापयत् विप्राय तस्मै ।' इत्यादरो विस्तृतः पाठः । 10 Pa यथा तत्; P नास्ति । 11 P Pb विनाऽन्यत्र 'देवेन' । 12 D प्रभाषणात् । 13 D अथान्यदा; B अथ निशायां । 14 AD ॰वेल॰ । 15 BP ॰मूचे । 16 Pa वितनुते । 17 Pb प्रविष्टः । 18 BP तत्पठनानन्तरं । 19 BD रक्षकैः । 20 Pb ॰मुपनीय । 21 D तोषकं । 22 P काव्येनालिखत्; Pb काव्यपदम॰ । 23 Pa ॰भये । ‡ कोष्ठकान्तर्गतं वर्णनं Pb विनाऽन्यत्र नोपलभ्यते ।

[४७] गवाक्षमार्गप्रविभक्तचन्द्रिको विराजते वक्षसि सुभ्रु ते शशी ।

तदवसरे प्रविष्टेन चौरेणोक्तम्–

अदृष्टकम्पः स्तनसङ्गवाञ्छया विदूरपातादिव खण्डशो गतः ॥

एतस्यापि तथैव दानं धर्मवहिकायां निवेशनं च ।]

४३) अथ कदाचित्तस्यां वाच्यमानायां स्वमेव स्थूललक्षं मन्यमानो दर्पभूताभिभूत[1] इव

५३. तत्कृतं यन्न केनापि तद्दत्तं यन्न केनचित् । तत्साधितमसाध्यं यत्तेन चेतो न दूयते ॥

इति स्वं मुहुर्मुहुः श्लाघ्यमानः, केनापि पुरातनमन्त्रिणा तद्गर्वखर्वचिकीर्षया श्रीविक्रमार्कधर्मव[3]हिका नृपायोपनिन्ये । तस्या उपरितनविभागे प्रथमतः प्रथमं काव्यमेतत्–

५४. *वक्त्राम्भोजे सरस्वत्यधिवसति सदा शोण एवाधरस्ते बाहुः काकुत्स्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः । वाहिन्यः पार्श्वमेताः क्षणमपि भवतो नैव मुञ्चन्त्यभीक्ष्णं स्वच्छेऽन्तर्मानसेऽस्मिन्कथमवनिपते तेऽम्बुपानाभिलाषः ॥

†अस्य काव्यस्य पारितोषिके दानं यथा–

५५. अष्टौ हाटककोटयस्त्रिनवतिर्मुक्ताफलानां तुलाः पञ्चाशन्मदगन्धमत्तमधुपक्रोधोद्धुराः सिन्धुराः ।
अश्वानामयुतं[4] प्रपञ्चचतुरं वाराङ्गनानां शतं दण्डे पाण्ड्य[5]नृपेण ढौकितमिदं वैतालिकस्यार्पितम् ॥

इति तत्काव्यार्थमवगम्य तदौदार्यविनिर्जितगर्वसर्वस्वस्तां वहिकामर्चयित्वा यथास्थानं प्रस्थापयत्[6]।

४४) प्रतीहारेण विज्ञप्तः–'स्वामिन्! देवदर्शनोत्सुकं सरस्वतीकुटुम्बं[7] द्वारमध्यास्ते' । 'क्षिप्रं प्रवेशये'ति राजादेशादनु प्रथमप्रविष्टा[8] तत्प्रेष्या प्राह–

५६. बापो विद्वान् बापपुत्रोऽपि विद्वान् आई विदुषी[9] आईधुआपि विदुषी ।
काणी चेटी सापि विदुषी[10] वराकी राजन्[11] मन्ये विद्यपुञ्जं कुटुम्बम् ॥

इति तस्याः[12] प्रहसनप्रायेण वचसा नृपतिरीषद्विहस्य तज्ज्येष्ठपुरुषाय समस्यापदमाह–'असारात्सारमुद्धरेत्' ।

५७. दानं वित्ताद् ऋतं वाचः कीर्तिधर्मौ तथायुषः । परोपकरणं कायादसारात्सारमुद्धरेत् ॥

अथ[13] नृपतिस्तत्पुत्राय–'हिमालयो नाम नगाधिराजः; प्रवालशय्याशरणं शरीरं ।' इति नृपतिवाक्यानन्तरम्–

५८. तव प्रतापज्वलनाज्जगाल हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
चकार मेना विरहातुराङ्गी प्रवालशय्याशरणं शरीरम्[14] ॥

इति समस्यायां पूरितायां[15] ज्येष्ठस्य पत्नीं प्रति राज्ञा[16]–'कवणु पियावउं खीरु' इति समस्यापदे समर्पिते[17]–

---

1 BP इति । 2 Pa दर्पाभिभूत । 3 Pa विक्रमार्कस्य; A विक्रमार्कवहिका । * B आदर्शे एतत्पद्यं नोपलभ्यते; AD आदर्शे प्रथमं 'अष्टौ हाटक०' इदं पद्यं तदनन्तरं च एतत्पद्यं टिप्पितं लभ्यते । † केवलं P प्रतौ इयं पंक्तिर्दृश्यते; अस्याः स्थाने Pa प्रतौ 'एतत्तुष्टिदाने' इत्येव वाक्यं । 4 BP तारुण्योदयसंप्रधितरवो, Pa लावण्योदयसंप्रपञ्चचतुरं । 5 BP पाण्डु० । 6 B Pa तं; P यति । 7 AD कन्या० । 8 A प्रथमं प्रविष्टस्तत्. प्रेष्यः; D ०प्रविष्टं तत्प्रेष्यः; P 'तत्प्रेष्या' स्थाने 'चेटी' । 9-10 D पुस्तके 'विदुषी' स्थाने 'विदुरी' । 11 A राजन्मान्यं भोज (B 'भोज' स्थाने 'सिद्धि') विद्वत्कुटुम्बं । 12 D तस्य । 13 Pa इति श्रुत्वा । 14 AD 'चकार मेना विरहातुराङ्गी' इति द्वितीयः पादः । 15 Pb सति । 16 AD राजा; P प्राह । 17 AD समर्पिते; B राज्ञा सम०; P प्रतौ 'इति राजकृते समस्यापदे सा प्राह–' एतादृशं वाक्यमिदम् ।

तदर्थमनवबुध्यमानः, बालिका अपि यत्र एवंविधास्तत्र विद्वांसः कीदृशा भविष्यन्तीति विचार्य पश्चाद्गतः ।]

४७) अथ[1]ान्यस्मिन्नवसरे राजा राजपाटिकायां गजाधिरूढः[2] पुरान्तरा सञ्चरन् कमपि रोरं भूमिपतितकणांश्चिन्वन्तमवलोक्य–

६७. नियउयरपूरणम्मि[3] य असमत्था किं पि[4] तेहिं जाएहिं ।
–इति तेनार्द्धकविना पूर्वार्द्धे प्रोक्ते;
सुसमत्था वि हु[5] न परोवयारिणो तेहि वि न किं पि ॥

६८. *'ते हि वि न किंपि' भणिए भोजनरिन्देण दानसूरेण[†] । दिन्नं [6]मायंगसयं एगा कोडी हिरण्णस्स ॥
इति तद्वचनान्ते;

६९. परपत्थणापवत्तं[7] मा जणणि जणेसु[8] एरिसं पुत्तं ।
–इति तद्वाक्यादनु;
मा[9] उयरे वि धरिज्जसु पत्थणभङ्गो कओ जेहिं[10] ॥

स[11] इति वदन् 'कस्त्वमि'ति राज्ञाभिहितो नगरप्रधानैः[12] 'भवद्भिर्विविधविद्वद्बुधघटायामपरथा प्रवेशमलभमानोऽनेनैव प्रपञ्चेन स्वामिदर्शनचिकीरयं राजशेखरः'–इति ज्ञापितः । तदु[13]चितमहादानैः प्रसादीकृते;[‡]

[५४] [¶]उद्दामाम्बुदनादनृत्तशिखिनीकेकातिरेकाकुले सुप्रापं सलिलं स्थलेष्वपि तदा निस्तर्प···घागमे ।
भीष्मे ग्रीष्मभरे परस्परदशादालोकमानं दिशो दीनं मीनकुलं न पालयसि रे कासार का सारता ॥

७०. भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः पाठीनैः पृथुपङ्कपीठलुठनाद्यस्मिन्मुहुर्मूर्च्छितम् ।
तस्मिन्नेव सरस्यकालजलदेनोन्नम्य तच्चेष्टितं येनाकुम्भनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते ॥
–इत्यकालजलदराजशेखरोक्तिः ।

४८) अथ[14] कस्मिन्नपि संवत्सरे[15] अवृष्टि[16]भावात्कणतृ[17]णानामप्राप्त्या दुःस्थे[18] देशे स्थानपुरुषैर्भोजागमं ज्ञापितः श्रीभीमश्चिन्तां प्रपन्नो दामर[19]नामानं सन्धिविग्रहिकमादिशत्–'यत् किमपि दण्डं दत्त्वाऽस्मिन्[20]वर्षे श्रीभोज इहागच्छन्निवारणीयः' । स इति तदादेशात्तत्र गतः । अत्यन्तविरूपतया[21] परिचितः । श्रीभोजेनेत्यभिदधे–

---

1 D 'अथ' नास्ति । 2 D गजारूढ. । 3 P पूरणे वि । 4 Pa किं च, P तेहिं किं पि । 5 B वि हु जे ।
* D पुस्तके इयं गाथा नास्ति, B आदर्शे पृष्ठस्याधोभागे केनापि पश्चाल्लिखिता दृश्यते । † Pa दिन्न देवेण भोयराएण; Pb दानसूरेण भोजराएण, AB विक्कमराएण रायराएण–एतादृशाः पाठभेदाः । 6 Pa मत्तगयंदाण सयं । 7 D Pa ०पवत्तं । 8 Pa जणेसि; A जिणेसु । 9 A उयरे वि मा धरि०; D मा तुहवि मा धरि० । 10 Pa-b जेण । 11 Pa इति स; Pb इत्थं । 12 Pb प्रधानपुरुषै० । 13 Pb ततस्तदु० । ‡ अत्र Dd आदर्शे एतत्कथनं किञ्चिद् भिन्नप्रकारेण लिखितमुपलभ्यते । यथा–'राजशेखरः इति भाषिणे विप्राय हस्तिनीं ददौ । पुनः स विप्रः–"निर्वाता न कुटी न चाग्निशकटी०" (इति सप्तम पद्यम्) इति श्रुत्वा तेनैकादशसहस्राणि दत्तानि । अथ राजशेखरनामा कविः सन्ध्यायां महाकालप्रासादे मुहुः पठति ।

(५४) पोतानेतान्नय गुणवति ग्रीष्मकालावसानं यावत्तावच्छमय रुदतो येन केनाशनेन ।
पश्चादम्भोधररसपरीपाकमासाद्य तुम्बी कुष्माण्डी च प्रभवति यदा के वयं कुत्र यूयं के ॥

प्रसन्नेन राज्ञा सर्वस्वदानात्तोषितेन कविनोक्तम्–भेकै०' इत्यादि ।
¶ केवलं P प्रतौ इदं पद्यं प्राप्यते । 14 ABD 'अथ' नास्ति । 15 Pa अवसरे । 16 D वृष्ट्यभावात् । 17 P तृणकणाना० । 18 P विना नास्त्यन्यत्र 'दुःस्थे देशे' । 19 D डामर । 20 P संप्रतिवर्षे; Pa सांप्रत० । 21 AD अत्यन्तविरूपत्वात् परिचितः; B ०परिचितश्च ।




७१. यौष्माकाधिपसन्धिविग्रहपदे दूताः कियन्तो द्विजे[1]! त्वादृक्षा[2] बहवोऽपि मालवपते ते सन्ति तत्र[3] त्रिधा।
प्रेष्यन्तेऽधममध्यमोत्तमगुणप्रेष्यानुरूपाः[4] क्रमात्तेनान्तःस्मितमुत्तरं[5] विदधता धाराधिपो रञ्जितः ॥

इति तद्वचनचातुरी[6]चमत्कृतो राजा गूर्जरदेशं[7] प्रति प्रयाणपटह [*दापनं[8] चक्रे। प्रयाणावसरे बन्दि[9]नोक्तम्–

७२. चौडः[10] क्रोडं पयोधेर्विशति निवसते रन्ध्रमन्ध्रो गिरीन्द्रे[11] कर्णाटः पट्टबन्धं न भजति भजते गूर्जरो निर्झराणि।
चेदिर्लेलीयतेऽस्त्रैः क्षितिपतिसुभटः कान्यकुब्जोऽत्र कुब्जो भोज! त्वत्प्रमात्रप्रसरभयभरव्याकुलो राजलोकः॥

७३. कोणे कौङ्कणकैः[12] कपाटनिकटे लाटः कलिङ्गोऽङ्गणे त्वं रे कोशलनूतनो मम पिताप्यत्रोपितः स्थण्डिले ।
इत्थं यस्य विवर्द्धितो निशि मिथः प्रत्यर्थिनां संस्तरस्थानन्यासभवो[13] विरोधकलहः कारानिकेतक्षितौ ॥

प्रयाणकपटह*] दापनादनु समस्तराजविडम्बनना[14]टकेऽभिनीयमाने[15] सकोपः कोऽपि भूपः कारागारान्तरा पुरःस्थितं[16] सुस्थितं तैलिपं[17] भूपमुत्थापयंस्तेनोचे–'अहमिहान्वयवासी कथमागन्तुकभवद्वचसा निजं पदमुज्झामी[18]'ति विहस्य[19] नृपो[20] दामरं प्रति नाटकरसावतारं प्रशंसंस्तेनाभिदधे[21]– 'देव! अतिशायिन्यपि रसावतारे धिग् नटस्य कथानायकवृत्तान्तानभिज्ञताम् । यतः 'श्रीतैलिपदेवराजा शूलिकाप्रोतमुञ्जराजशिरसा प्रतीयत इति'। तेन सभासमक्षं[22] इति प्रोक्ते तन्निर्भर्त्सनसरूपसमन्युरनन्यसामान्य[23]सामग्र्या तदैव तिलङ्ग[24]देशं प्रति प्रयाणमकरोत् ॥‡

४९) अथ तैलिपदेवस्यातिबलमायान्तमाकर्ण्य व्याकुलं श्रीभोजं स [25]दामरः समायातकल्पित[26]राजादेशदर्शनपूर्वं भोगपुरे श्रीभीमं समायातं विज्ञपयामास । तया तद्वार्त्तया क्षते क्षारनिक्षेपसदृक्षया विलक्षीक्रियमाणः श्रीभोजराजा दामरमभ्यधात्–'अस्मिन्वर्षे[27] त्वया स्वस्वामी कथञ्चना[28]पीहागच्छन्निवार्यः'–इति भूयो[29] भूयः सदैन्यं भाषमाणे नृपे प्रस्तावविज्ञपाद्धस्तिनीसहितं हस्तिनमुपायने उपादाय पत्तने श्रीभीमं परितोषयामास ।

५०) कस्मिंश्चिद्धर्मशास्त्राकर्णनक्षणेऽर्जुनस्य राधावेधमाकर्ण्य, किमभ्यासस्य दुष्करमिति

---

1 AD पद। 2 AD मादृक्षा। 3 P किन्तु। 4 ०रूपकमात्। 5 Pb तेनान्तर्गतमुत्तरं। 6 AD चातुर्य। 7 Pb भोजो गूर्जरधरित्रीं। * पुष्पकोष्ठकान्तर्गतः पाठो B Pa आदर्शे अनुपलभ्यः। 8 AD दानं। 9 P बन्दी... भवादीत्। 10 D चौडः। 11 P गिरीन्द्रं। 12 Pb कुङ्कणकः। 13 P भुवो। 14 AD विडम्बनाट०। 15 AD ०नीयमाने। 16 AD 'पुरः' नास्ति; D पुरा०। 17 P तैलपं; Pa तैलिपदेव०। 18 Pb ०मुज्झिहामी०। 19 AD विहसन्। 20 Pb भोजनृपो। 21 D ०भरस। 22 AD सभासमक्षं तेनोक्ते। 23 AD 'सामान्य' नास्ति। 24 B तैलङ्ग; P कर्णाट। † एतद्द्विदण्डान्तर्गतपङ्क्तिस्थाने P प्रतौ निम्नगतः श्लोको लभ्यते–

(४५) भोजराज मम स्वामी यदि कर्णाटभूपतिः। केशाकृष्टं न पश्यामि तत्किं मुञ्जशिरः करे॥

‡ एतत्प्रकरणस्थाने D d प्रतौ निम्नलिखितरूपात्मकं कथनमुपलभ्यते–

श्रीभोजराजा गूर्जरोपरि कृतप्रस्थानो बाह्यावासे कृतस्थानो मेदितः सन् राज्ञोचे डामरस्त्वयः–भीमदीपको नापितोऽद्य कस्ये किं करोति? । तेनोक्तम्-अद्यैषो राज्ञो शिरोमुण्डितम्। पुरुस्य शिरो जलमिश्रमास्ते पश्चान्मुण्डयिष्यतीति भणिते राज्ञा धर्मकृतेन राजभुवने राजविडम्बनाटके षिद्रे डामरस्वामी कर्णाटराजप्राभृतनि कुर्वन् दर्शितः। दूतेनोक्तम्–

भोजराज मम स्वामी यदि कर्णाटभूपतेः। कराङ्कृष्टे न पश्यामि कथं मुञ्जशिरः करे॥

इति वाक्येन स्मृतपूर्ववैरः गूर्जरदेशं परित्यज्य कर्णाटोपरि प्रयाणं कृतवान्। नृपाग्रे डामरस्योक्तिः–

(४६) सत्यं त्वं भोजमार्तण्ड पूर्वस्यां दिशि राजसे। शूरोऽपि च्युतामेति पश्चिमाशावलम्बने॥

25 BP Pa 'स दामरः' नास्ति। 26 Pa-b 'कल्पित' नास्ति। 27 B Pa संवत्सरे। 28 A कथंचन इहा०; P कथमपि इहा०। 29 P पुनः पुनः।

विमृश्य[1] सतताभ्यासवशाद्विश्वविदितं राधावेधं विधाय नगरे हट्टशोभां[2] कारयंस्तैलिक-सूचिकाभ्यामवज्ञया निराकृतोत्सवाभ्यां श्रीभोजभूपो[3] व्यज्ञप्यत । तैलिकेन चन्द्रशालास्थितेन[4] भूमिस्थितसङ्कीर्णवदने[5] मृन्मयपात्रे तैलधाराधिरोपणात्; सूचिकेन च भूमिस्थितेनोर्द्ध्वीकृततन्तुमुखे आकाशात्पतन्त्याः सूच्या विवरं नियोज्य निजाभ्यासकौशलं निवेद्य नृपं प्रति– 'चेच्छक्तिरस्ति ततः प्रभुरप्येवं करोत्वि'त्यभिधाय राज्ञो गर्वं खर्वं चक्राते ।

७४. भोजराज ! मया ज्ञातं राधावेधस्य कारणम् । धाराया विपरीतं[6] हि सहते न[7] भवानिति ॥

५१) विद्वद्भिरिति श्लाघ्यमानो नवं नगरनिवेशं कर्तुकामः[8] पटहे वाद्यमाने धाराभिधया पणस्त्रियाऽग्निवेतालनाम्ना पत्या सह[10] लङ्कां गत्वा तं नगरनिवेशमालोक्य पुनः समागतया, मन्नाम नगरे दातव्यमित्यभिधाय[11] तत्प्रतिच्छन्दपटो[12] राज्ञेऽर्पितः[13] । ततः स[14] नवां धारां नगरीं निवेशयामास ।

५२) कस्मिन्नप्यहनि स[15] नृपः सान्ध्यसर्वावसरानन्तरं निजनगरान्तः परिभ्रमन्–

७५. *एहु जम्मु नग्गहं[16] गियउ[17] भडसिरि[18] खग्गु न भग्गु । तिक्खा[19] तुरिय न वाहिया[20] गोरी गलि[21] न लग्गु ॥

इति केनापि दिगम्बरेण पठ्यमानमाकर्ण्य प्रातस्तमाकार्य[22] रात्रिपठितवृत्तान्तसङ्केतवशेन[23] शङ्कि धृष्टः सन्[24]–

७६. देव दीपोत्सवे जाते प्रवृत्ते दन्तिनां मदे । एकच्छत्रं करिष्यामि[25] सगौडं दक्षिणापथम् ॥

–इति स्वपौरुषमाविःकुर्वन् सेनानीपदे[26]ऽभिषिक्तः[27] ।

५३) इतश्च[28] सिन्धुदेशविजयव्यापृते[29] श्रीभीमे [स[30] दिगम्बरः] समस्तसामन्तैः समं समेत्य श्रीमदणहिल्लपुरभङ्गं कृत्वा[31] धवलगृहघटिकाद्वारे कपर्दकान्[32] वापयित्वा जयपत्रं जग्राह । तदादि 'कुलचन्द्रेण मुषितमि'ति सर्वत्र क्षितौ[33] ख्यातिरासीत् । स जयपत्रमादाय मालवमण्डले गतः । श्रीभोजाय तं वृत्तान्तं विज्ञपयत्[34] । 'भवतेह्यालवापः [35]कथं न कारितः ? अत्रत्यमुद्ग्राहितं गूर्जरदेशे प्रयास्यती'ति* श्रीसरस्वतीकण्ठाभरणेन श्रीभोजेनाभिदधे ।

---

1 AD विमृशन् । 2 Pb हट्टशोभादिपूर्वकमुत्सवं । 3 P भोजराजा । 4 Pb ॰शालोपरिस्थितेन । 5 Pb संकीर्णमुखमृन्मय॰ । 6 P विपरीतत्वं । 7 Pa नैव भूपतिः । 8 BP प्रारब्धुकामः; Pa प्रवेष्टु॰ । 9 Pb धारादेव्यभिधानया । 10 समं । 11 Pb ॰मित्यंगीकाराप्य । 12 A ॰प्रतिच्छन्दपटं; P तत्पटं; Pa तत्पटं । 13 AP समर्प्य । 14 AP 'ततः स नवां' स्थाने 'सा' इत्येव । 15 ADP 'स नृपः' नास्ति । 16 Pa नग्गा । 17 P गउ; Pa गयउ । 18 P भरिसिरि । 19 D तिक्खा तुरियां । 20 AD वाणिया । 21 BP ॰कंठि । 22 B ॰माहूय; P नास्ति । 23 BP निशा॰ । 24 B Pa 'सन्' नास्ति; P सन् उवाच । 25 AD करोम्येव । 26 P सेनापति॰ । 27 P स्थापितः । 28 Pb विहाय 'इतश्च' नास्ति । 29 D ॰प्रावृते । 30 BP Pa नास्ति 'स दिगम्बरः'; Pb दिगम्बरः सेनाध्यक्षः । 31 Pb मुद्रयित्वा । 32 AD कपर्दिकान् । 33 P 'क्षितौ' नास्ति । 34 AD ॰पयमुक्तो । 35 Pb तत्र कथं ।

* 'एहु जम्मु॰' इत आरभ्य 'गूर्जरदेशे प्रयास्यतीति' इत्येतत्पर्यन्तस्य कथनस्य स्थाने Dc प्रतौ निम्नलिखितस्वरूपात्मकं संक्षिप्तं कथनमुपलभ्यते–

(३०) 'नवजलभरीया मग्गड़ा गयणि घड़क्कइ मेहु । इत्थन्तरि जइ आविसिइ तउ जाणीसिइ नेहु ॥

'एवां भूवल्लभया सह॰' राज्ञा तन्निजपुत्रीस्वरूपं दृष्टं भ्रातराकार्य गूर्जरदेशोपरि सेनाधिपत्यं ददौ । तदा तेनोक्तम्–'देव दीपोत्सवे॰' इति । ततो गूर्जरदेशः समग्रोऽपि तेन विनाशितः । श्रीपत्तनचतुष्पथे कपर्दिका वापिताः । तत्रागतस्य राज्ञोक्तम्–न इदं रम्यम् । अद्य प्रभृति मालवदेशदण्डः श्रीगूर्जरे यास्यतीति ।'

५४) कदाचिचन्द्रातपे उपविष्टः श्रीभोजः सन्निहिते कुलचन्द्रे पूर्णचन्द्रमण्डल [*मालोक्य पुनः-पुनस्तत्सम्मुख] मवलोकमान इदमपाठीत्–

७७. येषां वल्लभया सह क्षणमिव क्षिप्रं क्षपा क्षीयते तेषां शीतकरः शशी विरहिणामुल्केव सन्तापकृत् ।

इत्यर्द्धं कविना तेनोक्ते[1] कुलचन्द्रः प्राह–

अस्माकं तु न वल्लभा न विरहस्तेनोभयभ्रंशिनामिन्दू राजति दर्पणाकृतिरसौ नोष्णो न वा शीतलः ॥

इति तदुक्तेरनन्तरमेवैकां वाराङ्गनां[2] प्रसादीचकार ।

५५) अथ दामरनामा सांन्धिविग्रहिको[3] मालवमण्डलादायातः श्रीभोजस्य सभां वर्णयन् महान्तमायल्लकं जनयति। तत्र गतश्च श्रीभीमस्यामात्रां रूपपात्रतां[4] वर्णयंस्तद्दिदृक्षातरलितः श्रीभोजः 'तमिहानय मां तत्र वा नय'[5] इत्यभ्यर्थ्यमानः, सभादर्शनोत्कण्ठितेन श्रीभीमेन तथैव[6] याच्यमानः कस्मिन्नपि वर्षे उपायविन्महदुपायनमादाय विप्रवेषधारिणं ताम्बूलकरण्डकवाहिनं श्रीभीमं सह[7] गृहीत्वा सदसि[8] गतः । प्रणमन् श्रीभोजेन श्रीभीमानयनवृत्तान्तं व्याहृतः स विज्ञापयांचक्रे–'स्वतन्त्राः स्वामिनो नः। अनभिमतं[9] कार्यं केन बलात्कार्यते इति। सर्वथेयं[10] कदाशा देवेन नावधारणीया[11]'–इत्यभिधार्य, श्रीभीमस्य वयोवर्णाकृतीनां सादृश्यं पृच्छन् श्रीभोजस्तान्सभासदो[12][13]-लोकानवलोकयन् स्थगीधरं लक्षीकृत्य दामरेणेत्यभिदधे–'स्वामिन् !

७८. ऐषाऽऽकृतिरयं[14] वर्ण इदं रूपमिदं वयः । अन्तरं चास्य भूपस्य काचचिन्तामणेरिव ॥

इति तेन विज्ञप्ते चतुरचक्रवर्ती श्रीभोजस्तत्सामुद्रिकविलोकनान्निश्चंखलदृशं[15] नृपं विमृश्योपायनवस्तून्युपनेतुं स सान्धिविग्रहिकस्तं प्राहिणोत्। तेषु वस्तुपूपनीयमानेषु तद्गुणवर्णनया[16] वार्तान्तरव्याक्षेपेण च भूयसि कालविलम्बे संवृत्ते 'स्थगीवाहकोऽद्यापि कियच्चिरं विलम्बते ?' इति राज्ञा समादिष्टः स तं भीममिति विज्ञपयामास[17]। राजा तदा तदनुपदिकानि सैन्यानि प्रगुणयन् दामरेणाभिदधे–'द्वादश-द्वादश योजनान्तरे[18] प्रावहणिका हयाः, घटिकायोजनगामिन्यः करभ्यः, अनया समग्रसामग्र्या श्रीभीमः [प्रतिक्षणं वर्ही[19]] मुवमाक्रमन् कथं भवता गृह्यते ?' इति विलक्षेन पाणी घर्षयन्[20] चिरं तस्थौ ।

(अत्र Pb सञ्ज्ञक आदर्शे निम्नलिखितानि प्रकरणान्यधिकान्युपलभ्यन्ते–)

[अथान्यस्मिन् वर्षे श्रीभीमस्तं डामरं मालवमण्डले प्रेषयितुकामो वार्तादि शिक्षयन् आस्ते। डामर उत्तिष्ठन् पटीं प्रक्षाडयामास। ततः श्रीभीमेन पृष्टः स आह–'भवच्छिक्षितमत्रैव मुञ्चामीत्यूचे । यतस्तत्र गतोऽहं स्वयमेवावसरोचितं ब्रुविष्ये । अन्यशिक्षितं कियत्कथयिष्यते'। ततो राजा तस्यावसरोचितचातुरीविज्ञानाय प्रच्छन्नं स्वर्णमयं सम्पुटकं रक्षापुञ्जेन सृत्वा, 'भोजसभाया अन्यत्र नायमुद्घाटनीयः' इति शिक्षयित्वा तद्धस्ते उपदार्थमदात् । ततः स गतो मालवे । भोजसभायां तं बहुपट्टकूलवेष्टितं आनाय्य भोजनृपाग्रे मुमोच। स उद्वेष्ट्य विलोकयति तदा मध्ये छारपुञ्जः। ततो नृपेणोक्तम्–'भो इदं किमुपायनम् ?' डामरस्तत्कालोत्पन्नमतिः प्राह–'देव ! श्रीभीमेन कोटि-

* कोष्ठकान्तर्गतः पाठः केवलं Pb प्रतौ उपलभ्यः । 1 Pb श्रीभोजेनोक्ते । 2 Pb वरां चारां० । 3 Pa सान्धिवि० । 4 P रूपवर्णनां कुर्वन् । 5 A तत्र मां नयेति वा; B मां तत्र न० । 6 P तथैवोच्यमानः, Pa तथा याच्यमानः । 7 AD स । 8 P सभायां । 9 A नाभिमतं; D अभिमतं । 10 D सर्वथाप्येके दासा । 11 D नावधीर० । 12 P ०भिहिते । 13 Pa तेन सह सद.सदो लोका० । 14 AD इयाकृ०; B ययाकृ०; P इयमाकृ० । 15 AD निश्चलदृशं । 16 AD वर्णनवार्ता० । 17 P Pa ज्ञापयामास । 18 AD योजनानां प्रान्ते; B Pa योजनान्ते । 19 केवलं Pb प्रतौ लभ्योऽयं पाठः । 20 AD घर्षयित्वा ।

होमः कारितः, तद्रक्षेयं तीर्थभूता, प्रीत्या भवत्कृते प्राभृतीकृताऽस्ति' । इति तेनोक्ते हृष्टचेतसा राज्ञा स्वहस्तेन सर्वेषां समर्पिता । तैः सर्वैस्तिलककरणेन वन्दिता । अन्तःपुरे प्रेषिता । ततः स सम्मानितः प्रतिप्राभृतसहितः पश्चादागतः । ज्ञातवृत्तान्तेन श्रीभीमेनापि पूजितः ।

पुनः कौतुकाक्षिप्तचित्तः श्रीभीमः कस्मिन्नवसरे मुद्रामुद्रितलेखं विधाय तद्धस्ते समर्प्य, उपदापाणिं तद्दामरं मालवेऽप्रैषीत् । स उपदासहितं लेखं भोजहस्तेऽदात् । यावदुन्मुद्य वाचयति तावद् 'अयं भवता शीघ्रं निपातनीयः' इति पश्यति । ततः सविस्मयेन राज्ञा पृष्टम्–'भो इदं किं लिखितमस्ति ?' । ततः स उत्पातिकामतिः प्राह–'देव ! मज्जन्मपत्रिकायां समस्ति, यत्रास्य रुधिरं पतिष्यति तत्र द्वादशवर्षप्रमाणो दुर्भिक्षः पतिष्यति' इति ज्ञात्वा श्रीभीमेनाहमत्र प्रेषितः स्वदेशविनाशभीतेन प्रच्छन्नलेखयुक्तः । एवं सति त्वं यथारुचितं कुरु' इति तेनोक्ते राजाह–'नाहमात्मदेशप्रजामनर्थे पातयिष्ये' । ततः सम्मान्य विसर्जितः प्राप्तः स्वदेशे । तद्बुद्धिकौशलेन पुनश्चमत्कृतः श्रीभीमस्तं बहुमन्यते ।]

५६) अथ श्रीभोजः[1] श्रीमाघपण्डितस्य[2] विद्वत्तां[3] पुण्यवत्तां[4] च सन्ततं[5]माकर्णयन्, तद्दर्शनोत्सुकतया राजादेशैः सततं प्रेष्यमाणैः श्रीमालनगराद्धिमसमये समानीय सबहुमानं भोजनादिभिः सत्कृत्य तदनु राजोचितान्विनोदान् दर्शयन्, रात्रावारात्रिकावसरानन्तरं सन्निहिते स्वसन्निभे पल्यङ्के माघपण्डितं नियोज्य तस्मै स्वां शीतरक्षिकामुपनीय प्रियालापांश्चिरं कुर्वाणः सुखं सुखेन सुष्वाप । प्रातर्माङ्गल्यतूर्यनिर्घोषैर्विनिद्रं नृपं स्वस्थानगमनाय माघपण्डित आपृष्टवान् । विस्मयापन्नहृदयेन राज्ञा दिने भोजनाच्छादनादिसुखं पृष्टः स कदन्नसदृक्षवार्ताभिरलं शीतरक्षाभारेण श्रान्तं स्वं विज्ञपयन् खिद्यमानेन राज्ञा कथं कथञ्चिदनुज्ञातः पुरोपवनं यावद्भुजाऽनुगम्यमानः माघपण्डितेन स्वागमनप्रसादेन सम्भावनीयोऽहमिति विज्ञप्य नृपानुज्ञातः स्वं पदं भेजे । तदनु कतिपयैर्दिनैः श्रीभोजस्तद्विभवभोगसामग्रीदिदृक्षया श्रीश्रीमालनगरं प्राप्तः । माघपण्डितेन प्रत्युद्गमादियथोचितभक्त्याऽऽवर्जितः ससैन्यस्तन्मन्दुरायां ममौ । स्वयं तु माघपण्डितस्य सौधमध्यास्य सञ्चारकमुवं काचयद्धामवलोक्य स्नानादनु देवतायसरोर्व्यां मारकतकुट्टिमे शैवलवल्लरीयुगजलभ्रान्त्या धौतान्तरीयं संवृण्वन् सौवस्तिकेन ज्ञापितवृत्तान्तस्तदैव तद्देवतार्चानन्तरं निवृत्ते भक्तावसरेऽशनसमयसमागतां रसवतीमास्वादमानः, अकालिकैरदेशजैर्व्यञ्जनैः फलादिभिश्चित्रीयमाणमानसः, संस्कृतपयःशालिशालिनीं रसवतीमाकण्ठमुपभुज्य भोजनान्ते चन्द्रशालामधिरुह्याश्रुतादृष्टपूर्वकाव्यकथाप्रबन्धप्रेक्षणीयादीनि प्रेक्षमाणः, शिशिरसमयेऽपि सञ्जाताकस्मिकभीष्मोष्मभ्रान्त्या संवीतसितस्वच्छवसनस्तालवृन्तकैरनुचरैर्वीज्यमानोऽमन्दचन्दनालेपनेपथ्यः सुखनिद्रया तां क्षणदां क्षणमिवातिवाह्य प्रत्यूषे शङ्खनिःस्वनाद्विगतनिद्रो हिमसमये ग्रीष्मावताख्यतिकरो माघपण्डितेन ज्ञापितः [*प्रतिसमयं सविस्मयः कति दिनान्यवस्थाय] स्वदेशगमनायापृच्छन् स्वयं कौरितनव्यभोजस्वामिप्रासादप्रदत्तपुण्यो मालवमण्डलं प्रति

1 BP ॰भोजः सततं । 2 Dd कुमुदपण्डितमुतश्रीमाघ॰ । 3 D पण्डितविद्॰ । 4 P पुण्यवार्तां । 5 P विहाय सर्वत्र 'सतत॰' । 6 Pa नास्ति । 7 D स्व॰ । 8 D ॰रक्षां; Pa ॰रक्षाकरी॰ । 9 Pb विस्मयापन्नेन । 10 Pb कदन्नेनोदरं भृतम्, रात्रौ गर्दभपद्मादिर्तं शीत॰ । 11 D शीतभारेण । 12 D नास्ति । 13 D विज्ञप्तो । 14 D काचन॰ । 15 A मारक॰ कुट्टिम॰; D मणिमरकतकुट्टि॰ । 16 D धौतान्तरीय॰ । 17 P ॰स्वादयमानः । 18 P प्रेक्षणादीनि । 19 D ग्रीष्मभ्रा॰ । 20 P ॰स्यनिविगत॰ । * कोष्ठकान्तर्गतः पाठः D पुस्तक एव लभ्यते । 21 P Pa ॰वाद्यमानः । 22 AD कारितनव्य॰ ।

प्रतस्थे । तथा[1] निजजन्मदिने जनकेन नैमित्तिकाज्जातके कार्यमाणे, पूर्वमुदितोदितसमृद्धिर्भूत्वा प्रान्ते गलितविभवः किञ्चिच्चरणयोराविर्भूतश्वयथुविकारः पञ्चत्वमाप्स्यतीति–निमित्तविदा निवेदिते[2] विभवसम्भारेण तां ग्रहगतिं निराचिकीर्षुणा माघपित्रा, संवत्सरशतप्रमाणे मनुजायुषि षट्त्रिंशत्सहस्राणि दिनानि भवन्तीति विमृश्य नाणकपरिपूर्णांस्तावत्संख्यकान् हारकान् कारितनव्यकोशेषु निवेश्य तदधिकां परां भूतिं शतशः समर्प्य प्रदत्तमाघनाम्ने सुताय कुलोचितां शिक्षां वितीर्य कृतकृत्यमानिना तेन विपेदे । तदनन्तरमुत्तराशापतिरिव प्राप्तप्राज्यसाम्राज्यो विद्वज्जनेभ्यः श्रियं तदिच्छया यच्छन्नमानैर्दानैरर्थिसार्थं कृतार्थयंस्तैर्भोगविधिभिः स्वममानुपावतारमिव दर्शयन् विरचितशिशुपालवधाभिधानमहाकाव्यचमत्कृतविद्वज्जनमानसः प्रान्ते पुण्यक्षयात्क्षीणवित्तो विपत्तिपाते स्वविषये स्थातुमप्रभूष्णुः सकलत्रो मालवमण्डले गत्वा धारायां कृतावासः पुस्तकग्रहणकार्पणपूर्वकं श्रीभोजात्किय‌दपि द्रव्यमानेयमिति तत्र पत्नीं प्रस्थाप्य यावत्तदाशया माघपण्डितश्चिरं तस्थौ; तावत्तथावस्थां श्रीभोजस्तत्पत्नीं विलोक्य ससम्भ्रमः शलाकान्यासेन तत्पुस्तकमुन्मुद्य काव्यमिदमद्राक्षीत्–

७९. कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं त्यजति मदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं हतविधिललितानां ही विचित्रो विपाकः ॥

अथ काव्यार्थमवगम्य, का कथा ग्रन्थस्य केवलमस्यैव काव्यस्य विश्वम्भरामूल्यमल्पम् । समयोचितस्यानुच्छिष्टस्य हीशब्दस्य पारितोषिके क्षितिपतिर्लक्षद्रव्यं वितीर्य तां विससर्ज । सापि ततः सञ्चरन्ती विदितमाघपण्डितपत्नीकैरर्थिभिर्याच्यमाना तत्पारितोषिकं तेभ्यः समस्तमपि वितीर्य यथावस्थिता गृहमुपेयुषी तद्वृत्तान्तज्ञापनापूर्वं किञ्चिच्चरणस्फुरच्छोफाय पत्ये निवेदयामास । अथ स 'त्वमेव मे शरीरिणी कीर्त्तिरि'ति श्लाघमानस्तदा स्वगृहमागतं कमपि भिक्षुकं वीक्ष्य भवने तदुचितं किमपि देयमपश्यन् सञ्जातनिर्वेद इदमवादीत्–

८०. अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा त्यागात्[12] सङ्कुचति[13] दुर्ललितः[14] करो मे ।
याञ्चा च लाघवकरी स्ववधे च पापं प्राणाः स्वयं व्रजत किं परिदेवितेन ॥ १

८१. दारिद्र्यानलसन्तापः शान्तः सन्तोषवारिणा । दीनाशाभङ्गजन्मा तु केनायमुपशाम्यतु ॥ २

८२. न भिक्षा दुर्भिक्षे पतति दुरवस्थाः कथमृणं लभन्ते कर्माणि क्षितिपरिवृढान्कारयति कः ।
अदत्त्वापि ग्रासं ग्रहपतिरसावस्तमयते क्व यामः किं कुर्मो गृहिणि गहनो जीवितविधिः ॥ ३

८३. *क्षुत्क्षामः पथिको मदीयभवनं पृच्छन्कुतोऽप्यागतः तत्किं गेहिनि किञ्चिदस्ति यदयं भुङ्क्ते बुभुक्षातुरः ।
वाचास्तीत्यभिधाय नास्ति च पुनः प्रोक्तं विनैवाक्षरैः स्थूलस्थूलविलोललोचनजलैर्बाष्पाम्भसां बिन्दुभिः ॥४

८४. व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतां गते । पश्चादपि हि गन्तव्यं क्व सार्थः पुनरीदृशः ॥ ५†

---

1 BP Pb सदा । 2 A निवेदित॰; D निवेदितां । 3 AD आदर्शे एवोपलभ्यमिदं पदम् । 4 P विहायान्यत्र 'भविष्य॰' । 5 AD 'भाग' नास्ति । 6 D विद्वज्जनः स । 7 P कृतनिवासः । 8 AD 'इदं' नास्ति । 9 D पत्नी कैश्चिदर्थि॰ । 10 D ॰वृत्तान्तं विज्ञा॰ । 11 AD भिक्षुं । 12 A दानाच; D दानादि । 13 B सञ्चलति । 14 B दुर्ललितं मनो मे । 15 BP मदर्थेव । 16 P Pa जीवन॰ । * AB प्रत्यन्तरे पद्यमेतत् मूले नास्ति, परं पृष्ठस्योपरितनभागे केनापि पश्चाल्लिखितं प्राप्यते । † P प्रत्यन्तरे एतेषां पद्यानां किञ्चिद् विपर्ययो लभ्यते । तत्र एतादृशः क्रमः ३ (१), ४ (२), १ (३), २ (४), ५ (५) ।

'क सार्थः पुनरीदृशः' इति वाक्यान्त एव स माघपण्डितः पञ्चत्वमवाप। प्रातस्तं वृत्तान्तमवगम्य श्रीभोजेन श्रीमालेषु संजातिषु धनवत्सु सत्सु तस्मिन्पुरुषरत्ने विनष्टे क्षुधाबाधिते सति भिल्लमाल इति तज्ज्ञातेर्नाम निर्ममे।

॥ इति श्रीमाघपण्डितप्रबन्धः ॥

५७) पुरा समृद्धिविशालायां विशालायां पुरि मध्यदेशजन्मा सांकाश्यगोत्रः सर्वदेवनामा द्विजो निवसन् जैनदर्शनसंसर्गात्प्रायः प्रशान्तमिथ्यात्वो धनपाल-शोभनाभिधानपुत्रद्वयेनान्वितः कदाचिदागतान् श्रीवर्द्धमानसूरीन् गुणानुरागान्निजोपाश्रये निवास्य निर्द्वन्द्वभक्त्या परितोषितान् सर्वज्ञपुत्रकानिति धिया, तिरोहितं निजपूर्वजनिधिं पृच्छंस्तैर्वचनच्छलेनार्द्धविभागं याचितः। [†]सङ्केतनिवेदनाल्लब्धनिधिस्तदर्द्धं यच्छंस्तैः पुत्रद्वयादर्द्धं याचितो[†] ज्यायसा धनपालेन मिथ्यात्वान्धमतिना जैनमार्गनिन्दापरेण निषिद्धः, कनीयसि शोभने कृपापरः स्वप्रतिज्ञाभङ्गपातकं तीर्थेषु क्षालयितुमिच्छुः प्रति तीर्थं प्रतस्थे। अथ पितृभक्तेन शोभननाम्ना लघुपुत्रेण तं तदाग्रहान्निषिध्य पितुः प्रतिज्ञां प्रतिपालयितुमुपात्तव्रतः स्वयं तान् गुरूननुससार। अभ्यस्तसमस्तविद्यास्थानेन धनपालेन श्रीभोजप्रसादसम्प्राप्तसमस्तपण्डितप्रष्ठप्रतिष्ठेन निजसहोदरामर्षभावाद् द्वादशाब्दीं यावत्स्वदेशे निषिद्धजैनदर्शनप्रवेशेन तद्देशोपासकैरत्यर्थमभ्यर्थनया गुरुष्वाहूयमानेषु सकलसिद्धान्तपारावारपारदृश्वा स शोभननामा तपोधनो गुरूनापृच्छ्य तत्र प्रयातो धारायां प्रविशन् पण्डितधनपालेन राजपाटिकायां व्रजता तं सहोदरमित्यनुपलक्ष्य सोपहासम्–'गर्दभदन्त भदन्त! नमस्ते' इति प्रोक्ते; 'कपिवृषणास्य वयस्य! सुखं ते' [‡इति प्रत्युत्तरयांचक्रे। ततश्चमत्कृतो §धनपालो मया नर्मणापि नमस्ते इत्युक्तम्, अनेन तु वयस्य सुखं ते] इत्युत्तरला वचनचातुर्यान्निर्जितोऽस्मीति"। तत् 'कस्यातिथयो यूयमि'ति धनपालस्यालापैः 'भवत एवातिथयो वयमि'ति शोभनमुनेर्वाचमाकर्ण्य, बहुना सह निजसौधे प्रस्थाप्य तत्रैव स्थापितः। स्वयं सौधे समागत्य धनपालः प्रियालापैः सपरिकरमपि तं भोजनाय निमन्त्रयंस्तैः प्रासुकाहारसेवापरैर्निषिद्धः। बलाद्दोषहेतुं पृच्छन्–

८५. भजेन्माधुकरीं वृत्तिं मुनिर्म्लेच्छकुलादपि। एकान्नं नैव भुञ्जीत बृहस्पतिसमादपि ॥

तथा च, जैनसमये दशवैकालिके–

८६. महुकारसमा बुद्धा जे भवन्ति अणिस्सिया। नाणापिण्डरया दन्ता तेण वुच्चन्ति साहुणो ॥

इति स्वसमयपरसमयाभ्यां निषिद्धं[14]कल्पितमाहारं परिहरन्तः शुद्धाशनभोजिनो वयमिति तच्चरित्रचित्रितमनास्तूष्णीकमुत्थाय सौधे[15] मज्जनारम्भे गोचरचर्यया समागतं तन्मुनिद्वन्द्व[16]मवलोक्याऽसिद्धेऽन्नपाके तद्ब्राह्मण्योपढौकिते दध्नि मुनिभ्यां व्यतीतकियद्दिनमेतदिति पृच्छ्यमाने, धनपालः 'किमत्र पूतराः सन्ती'ति सोपहासमभिदधानः, व्यतीतदिनद्वयमेतदिति ब्राह्मण्या

1 इदं वाक्यं D पुस्तके न विद्यते। 2 B वाक्यानन्तरं; P वाक्यसमकाल। 3 P स्वजा०। 4 D तज्ज्ञातं। 5 D काश्यपगोत्रः, B नास्ति। 6 P गंगाधरो नाम। 7 P विहायान्यत्र 'अभिधान' नास्ति। † द्विदण्डान्तर्गतः पाठः Pa आदर्शेऽनुपलभ्यः। 8 P ०लब्धदोवधि। 9 D प्रहृष्ट०। 10 D गुरुपुरुषेषु। ‡ कोष्टकान्तर्गतः पाठः A Pa प्रत्यन्तरे नास्ति। § एतत्पाठस्थाने B प्रत्यन्तरे 'शोभनमुनेर्वचसान्तश्चमत्कृतः' एतादृशः पाठः। 11 D इत्युक्ते। 12 P ऽस्मीत्यचिन्तयत्। 13 Pa तीचकु०। 14 P Pa अकल्पित०। 15 D सौधमाप। 16 P मुनियुगल।

निर्णीय[1] ताभ्यां 'पूतराः सन्तीत्यत्र' इत्यभिहिते स्नानासनात्तद्दर्शनार्थमुत्थाय तत्रागतः सन्, स्थालेऽधिरोपितदधिसंनिधौ[2] यावद्यावकपुञ्जेऽधिरूढैस्तैर्जन्तुभिर्दधिपिण्ड इव पाण्डुरतामवलोक्य; जिनधर्मे जीवरक्षाप्राधान्यम्, तत्रापि जीवोत्पत्तिज्ञानवैदग्ध्यम्, यथा–

८७. *मुग्गमासाइपमुहं[6] विदलं[7]-कच्चम्मि गोरसे पडइ । ता तसजीवुप्पत्ती भणन्ति दहिए तिदिणुवरिं[8] ॥

तज्जिनशासने एवेति निश्चित्य शोभनमुनेः शोभनबोधात्सम्यक्प्रतिपत्तिपुरःसरं सम्यक्त्वं भेजे । [†इयद्दिनानि स्वं मिथ्यात्वमयं विदन्, मम बन्धुः क्वापि दृष्टः–इति तस्यैव पुरः पृच्छन् वयआख्यागुणादिभिः तदुपमाने शोभनेन स्वं कथयता अनुमानात् मम भ्रातैवायमिति निश्चित्य आनन्दाश्रुपूर्वं तमालिङ्ग्य स्वशिरोदरा तद्गुरून् आकारयामास च ।] कर्मप्रकृत्यादिषु जैनविचारग्रन्थेषु प्रकृत्या प्राज्ञः परं प्रावीण्यमुद्वहन्, प्रति प्रातर्जिनार्चावसरप्रान्ते–[9]

८८. कतिपयपुरस्वामी कार्पण्यैरपि दुर्ग्रहो मतिवितरता मोहेनाहो मयानुसृतः पुरा ।
त्रिभुवनपतिर्बुद्ध्याराध्योऽधुना स्वपदप्रदः प्रभुरधिगतस्तत्प्राचीनो दुनोति दिनव्ययः ॥

८९. सव्वत्थ अत्थि धम्मो जा[10] मुणियं जिण न सासणं तुज्झ ।
कणगाउराण कणगं[11] व ससियपयं अलम्भमाणाणं ॥

[९५] {‡किं ताए पढियाए पयकोडीए पलालभूयाए । जत्थित्तिअं न नायं परस्स पीडा न कायव्वा ॥

[९६] §देशाधीशो ग्राममेकं ददाति ग्रामाधीशः क्षेत्रमेकं ददाति ।
क्षेत्राधीशः शिम्बिकाः सम्प्रदत्ते सार्वस्तुष्टः सम्पदं स्वां ददाति ॥}

इत्यादीनि वाक्यानि पठन्[12] स धनपालः कदाचिन्नृपेण[13] मृगयां सह नीतः[14] । बाणेन मृगे विद्धे सति तद्वर्णनाय विलोकितमुखो धनपालः प्राह–

९०. रसातलं यातु यदत्र[15] पौरुषं कुनीतिरेषा शरणो[16] ह्यदोषवान् ।
विहन्यते[17] यद्बलिनापि दुर्बलो हा हा महाकष्टमराजकं जगत् ॥+

इति तन्निर्भर्त्सनात्क्रुद्धो नृपः किमेतदित्यभिदधाने–

९१. वैरिणापि हि मुच्यन्ते प्राणान्ते तृणभक्षणात् । तृणाहाराः सदैवैते हन्यन्ते पशवः कथम् ॥

इत्यद्भुतसञ्जातकृपेण[18] नृपेण धनुर्बाणभङ्गमङ्गीकृत्याजीवितान्तं संन्यस्तमृगयाव्यसनेन पुरं प्रति[19]

1 D निर्णीय प्रोक्तं । 2 AD ०रोपिते दधि स० । 3 D पुञ्जे । 4 D 'तैः' स्थाने 'तद्वर्णं' । 5 AD दया । * P प्रत्यन्तरे इयं गाथा नास्ति; B आदर्शेऽपि मूले पृष्ठपार्श्वभागे पश्चात्केनापि लिखिता लभ्यते । 6 Pa पभिइं । 7 Pa विदलं । 8 Pa तिदिणु० । † कोष्ठकान्तर्गतः पाठः मात्रं B प्रतौ प्राप्यः । 9 AD प्रातः प्रातः । 10 Pb जा न पत्तं जिण सा० । 11 D कणगु व्व । ‡ केवलं Pb प्रतौ इयं गाथा लभ्यते । § D पुस्तके इदं पद्यमुपलभ्यते, A आदर्शे पृष्ठस्याधोभागे पश्चात्केनापि लिखितमस्ति । 12 Pb वाक्यानि स पठति । 13 BP नृपतिना । 14 D कदाचिन्नृपेण सह मृगयां नीतो धनपालोऽभिहितः । 15 B Pa यदा० । 16 P हरिणो । 17 P प्रह०; B निह० । + इतोऽग्रे Pa प्रतौ, किञ्चिद्विपर्ययेण च D पुस्तके निम्नलिखितं वर्णनं प्रक्षिप्तं प्राप्यते–

[ततो भोजराजः प्राह—किं कारणं नु कविराज मृगा यदेते व्योमोत्पतन्ति विलिखन्ति भुवं वराहाः ? ।
धनपालः प्राह—देव ! त्वदस्त्रचकिताः श्रयितुं स्वजातिमेके मृगाङ्कमृगमादिवराहमन्ये ॥]

18 D इत्यूचे कोपोन्मुक्त० । 19 D 'प्रति' नास्ति ।

प्रत्यागच्छता तत्र यज्ञमण्डपे यज्ञस्तम्भनियन्त्रितच्छागस्य दीनां गिरमाकर्ण्य किं पशुरसौ व्याहरतीत्यादिष्टः सन्[1] धनपालोऽवधेहीति[2] प्राह–

९२. नाहं स्वर्गफलोपभोगतृषितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया सन्तुष्टस्तृणभक्षणेन सततं साधो न युक्तं तव ।
स्वर्गं यान्ति यदि त्वया विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो यज्ञं किं न करोषि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथा बान्धवैः ॥

इति तद्वाक्यानन्तरं राज्ञा किमेतदिति भूयोभियुक्तः[3]–

९३. यूपं कृत्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् । यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥
९४. सत्यं यूपं तपो ह्यग्निः कर्माणि[4] समिधो मम । अहिंसामाहुतिं दद्यादेष यज्ञः सनातनः[5] ॥

इत्यादि-शुकसंवादोदितानि वचांसि नरेन्द्रस्य पुरतः पठन् हिंसाशास्त्रोपदेशिनो हिंस्रप्रकृतीन्[6] ब्रह्मरूपेण राक्षसांस्ताञ्ज्ञापयन्, नृपमहर्द्धर्माभिमुखं चकार ।

(अत्रान्तरे Pb आदर्शे मूले, B आदर्शे च पृष्ठपार्श्वभागेषु निम्नलिखितमधिकं कथनमुपलभ्यते–)

{अथ नृपे गां वन्दमाने धनपालो महिषीं नमन्नुवाच–

[५७] अमेध्यमश्नाति विवेकशून्या स्वनन्दनं कामयतेऽभिसक्ता ।
खुराग्रशृङ्गैर्विनिहन्ति जन्तून् गौर्वन्द्यते केन[7] गुणेन राजन् ! ? ॥

[५८] पयःप्रदानसामर्थ्याद्वन्द्या चेन्महिषी न किम् । विशेषो दृश्यते नास्यां महिषीतो मनागपि ॥

[५९] स्पर्शोऽमेध्यभुजां गवामघहरो वन्द्या विसञ्ज्ञा द्रुमाः
स्वर्गं छागवधाद् धिनोति च पितॄन् विप्रोपभुक्ताशनम् ।
आप्ताश्छद्मपराः सुराः शिखिहुतं प्रीणाति देवान् हविः
स्फीतं फल्गु च वल्गु च श्रुतिगिरां को वेत्ति लीलायितम् ॥

[६०] वधो धर्मो जलं तीर्थं गौर्नमस्या गुरुर्गृही । अग्निर्देवो द्विजः पात्रं येषां तैः कोऽस्तु संस्तवः ॥

एकदा जिनपूजायां पण्डितस्यैकाग्रतां परेभ्यो ज्ञात्वा पुष्पपटलिकाऽर्पणपूर्वं देवान् पूजयेति नृपादिष्टो धनपालो हरादिस्थानेषु भ्रान्त्वा जिनं पूजयित्वा समागतः । दूतमुखाज्ज्ञातवृत्तान्तेन राज्ञा पूजास्वरूपं पृष्टः प्राह–'देव ! यत्रावसरोऽभूत् तत्र गत्वा पूजा कृता' । राज्ञा पृष्टम्–'क नाभूदवसरः ?' पण्डितः प्राह–'विष्णुपार्श्वे एकान्तकलत्रसद्भावात्, रुद्राङ्गे पार्वतीसद्भावात्, ब्रह्मणो ध्यानभङ्गेन शापादिभयात्, विनाय[क]स्य स्वालिभृतमोदकाशने स्पर्शनं संयमन्, चण्डिकायास्त्रिशूलहेतिसत्रस्तमहिषमत्सम्मुखागमनत्रासात्, हनुमतः कोपाटोपवशंवदस्य चपेटाभयात् कुत्राऽप्यवसरो नाभूत् । अपि च–

[६१] विनास्योचमाङ्गं वृथा पुष्पमाला ललाटं विनाहो कथं पट्टबन्धः ।
अकर्णे त्वनेत्रे कथं गीतनृत्ये अपादस्य पादे कथं मे प्रणामः ?' ॥

†इत्यादि प्रोक्ते नृपः प्राहः–'काऽप्यवसरोऽभूत् ?' ततः पण्डितः–'प्रशमरसनिमग्नं दृष्टि० ।' 'नेत्रे सारसुधारसैकसुभगे आस्यं प्रसन्नं सदा० ।' इत्यादि कथयित्वा, जैनालये सदाऽवसरत्वात्तत्र पूजा कृतेति पर्यवसितः ।

1 D स । 2 A प्राह धनपाल अवधेहि; B स धनपाल अवस्योऽहं इति प्राह; Pa ०अवस्योऽयमिति० । 3 Pb भूयो भूयोऽभियुक्तो धनपालः प्राह । 4 P प्राणाः समिधयो । 5 D 'एवं यज्ञः सतां मतः' एतादृशः पाठः । 6 D हिंसक० । 7 D माहन० । † एतच्चिह्नद्वयान्तर्गताः पंक्तयः केवलं Pb प्रतौ प्राप्याः ।

[६२] अथ— अन्नदिणे सिवभवणे दुवारदेसे निएवि भिंगिगणं ।
किं एस दुब्बलो इय निवपुट्ठो भणइ धणवालो ॥

यथा—

[६३] दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा तच्चेत् कृतं भस्मना भस्माथास्य किमङ्गना यदि च सा कामं प्रति द्वेष्टि किम् ।
इत्यन्योन्यविरुद्धचेष्टितमहो पश्यन्निजस्वामिनो भृङ्गी सान्द्रशिरावनद्धपुरुषं धत्तेऽस्थिशेषं वपुः[1] ॥}

५८) अथ कस्मिन्नप्यवसरे नरेश्वरः सरस्वतीकण्ठाभरणप्रासादे व्रजन् सदा सर्वज्ञशासनप्रशंसापरं पण्डितं धनपालमालपत्–'सर्वज्ञस्तावत्कदाचिदासीत् । तत्र साम्प्रतं कश्चिज्ज्ञानातिशयोऽस्ती ?'त्यभिहिते, 'अर्हत्कृते अर्हन्तश्रीनामनि चूडामणिग्रन्थे विश्वत्रयस्य त्रिकालवस्तुविषयस्वरूपपरिज्ञानमद्यापि विद्यते' इति तेनाभिहिते–'त्रिद्वारमण्डपे स्थितः कस्मिन्द्वारेऽस्माकं निर्गमः ?' इति शास्त्रकलङ्कारोपणोद्यते नृपे, बुद्धिमात्रा त्रयोदशीति पाठं संस्थापयता भूर्जपत्रे नृपप्रश्ननिर्णयमालिख्य मृण्मयगोलके निधाय च स्थगिकाधरस्य तं समर्प्य–'देव ! पादावधार्यतामि'ति नृपं प्राह । नृपस्तद्बुद्धिसङ्कटे निपतितं स्वं मन्यमान एतद्द्वारत्रयस्य मध्यात्किमपि निर्णीतं भविष्यतीति विमृश्य सूत्रभृद्भिर्मण्डपपद्यशिलामपनीय तन्मार्गेण निर्गत्य तं गोलकं भित्त्वा, तेष्वक्षरेषु तमेव निर्गमनिर्णयं वाचयंस्तत्कौतुकोत्तालचित्तः श्रीजिनशासनमेव प्रशशंस ।

(अत्र D पुस्तके निम्नलिखितं पद्यं प्राप्यते–)

{तथाहि–

[६४] द्वाभ्यां यत्र हरिस्त्रिभिर्न च हरः स्रष्टा न चैवाष्टभिर्यत्र द्वादशभिर्गुहो न दशकद्वन्द्वेन लङ्कापतिः ।
यत्रेन्द्रो दशभिः शतैर्न जनता नेत्रैरसंख्यैरपि तत्प्रज्ञानयनेन पश्यति बुधश्चैकेन वस्तु स्फुटम् ॥

(Pb आदर्शे पुनरत्र निम्नलिखितमधिकं कथनमुपलभ्यते–)

{अन्यदा जलाधपपृच्छा–

[६५] सत्यं वप्रेषु शीतं शशिकरधवलं वारि पीत्वा प्रकामं व्युच्छिन्ना शेषतृष्णा प्रमुदितमनसः प्राणिसार्था भवन्ति ।
शोषं नीते जलौघे दिनकरकिरणैर्यान्त्यनन्ता विनाशं तेनोदासीनभावं भजति मुनिगणः कूपवप्रादिकार्ये ॥

कदाचित् सकारितप्रौढवरनवसरसि गतो नृपः 'कीदृगिदं धर्मस्थानमि ?'ति पृच्छति । धनपालः प्राह–

[६६] एषा तटाकमिषतावकदानशाला मत्स्यादयो रसवती प्रगुणा सदैव ।
पात्राणि यत्र बकसारसचक्रवाकाः पुण्यं कियद् भवति तत्तु वयं न विद्मः ॥

तथाऽशुकोप । पुरमागच्छन् मार्गे बालिकासहितां वृद्धां जरया शिरो धूनयन्तीं दृष्ट्वा नृपः पृच्छति–'किं शिरो धूनयति ?' ततो धनपालः–

[६७] किं नन्दी किं मुरारिः किमु रतिरमणः किं विधुः किं विधाता
किं वा विद्याधरोऽसौ किमुत सुरपतिः किं नलः किं कुबेरः ।
नायं नायं न चायं न खलु नहि न वा नापि नासौ न चासौ
क्रीडां कर्तुं प्रवृत्तः स्वयमपि च हले भूपतिर्भोजदेवः ॥

अनेन नृपं रुष्टं तोषयामास । }

1 P प्रमादना॰ । 2 P अत्र; AD तदर्जने । 3 P अर्हन्तश्रीनामपु॰; A अर्हन्तश्रीचू॰; D अर्हच्छीचू । 4 AD तेनोक्ते । 5 B समर्प्यवद्; Pa समर्पयामास॰ । 6 D शिलातल । 7 B जैन ।

५९) अथ धनपालो ऋषभपञ्चाशिकास्तुतिं निर्माय, सरस्वतीकण्ठाभरणप्रासादे स्वनिर्मितप्रशस्तिपट्टिकायां[1] कदाचिन्नृपः–

९५. अभ्युद्धृता वसुमती दलितं रिपूरः क्रोडीकृता बलवता बलिराज्यलक्ष्मीः ।
एकत्र जन्मनि कृतं तदनेन यूना जन्मत्रये यदकरोत्पुरुषः पुराणः ॥

काव्यमिदं निर्वर्ण्य पारितोषिके तस्याः पट्टिकायाः काञ्चनकलशं ददौ । तस्मात्प्रासादादपसरंस्तदीयद्वारस्तम्भके रत्या सह हस्तनालदानपरं स्मरं मूर्तिमन्तमालोक्य नृपेण हासहेतुं पृष्टः पण्डितः प्राह–

९६. स एष भुवनत्रयप्रथितसंयमः शङ्करो बिभर्ति वपुषाऽधुना विरहकातरः कामिनीम् ।
अनेन किल निर्जिता वयमिति प्रियायाः करं करेण परिताडयन् जयति जातहासः स्मरः ॥

(अत्र D पुस्तके 'अद्यदिणे सिवभवणे०'; 'दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा०'; 'अमेध्यमश्नाति०'; 'पयःप्रदानसामर्थ्याद्०'; 'असत्युत्तमांगे०' इत्यादीनि पद्यानि समुपलभ्यन्ते परमत्राप्रासङ्गिकत्वात्, Pb आदर्शानुसारेणेतःपूर्वमेवोल्लिखितत्वाच्च पुनर्नोद्धृतानि ।)

९७. पाणिग्रहे पुलकितं वपुरैशं भूतिभूषितं जयति । अङ्कुरित इव मनोभूर्यस्मिन्भस्मावशेषोऽपि ॥

इत्यादिभिः प्रसिद्धसिद्धसारस्वतोद्गारैर्नृपं रञ्जयन् यावदास्ते तावत्कोऽपि सांयात्रिको द्वाःस्थनिवेदितः सभां प्रविश्य नृपं नत्वा मदनमयपट्टिकायां प्रशस्तिकाव्यानि दर्शयामास । नृपेण तल्लाभस्थानके पृष्टे स एवमवादीत्–'नीरधावकस्मादेव मम वाहने स्खलिते निर्यामकैः शोध्यमाने समुद्रे तन्मग्नं शिवायतनं' शनैः परिस्फुरज्जलमप्यन्तःसलिलविकलमवलोक्य कस्यामपि भित्तौ वर्णान्निर्वर्ण्य च तज्जिज्ञासया मदनपट्टिकां तत्र प्रस्थाप्य तत्संक्रान्ताक्षरमयी पट्टिकेयमि'ति नृपतिर्निशम्य तदुपरि मृण्मयीं पट्टिकां नियोज्य तत्र पतितान् विपरीतान्[10] वर्णान् पण्डितैर्वाचयामास ।

९८. आबाल्याधिगमान्मयैव गमितः कोटिं परामुन्नतेरस्मत्सङ्कथयैव पार्थिवसुतः सम्प्रत्यसौ लज्जते ।
इत्थं खिन्न इवात्मजेन यशसा दत्तावलम्बोऽम्बुधेर्यातस्तीरतपोवनानि तपसे वृद्धो गुणानां गणः ॥

९९. देवे दिग्विजयोद्यते धृतधनुःप्रत्यर्थिसीमन्तिनीवैधव्यव्रतदायिनि प्रतिदिशं क्रुद्धे परिभ्राम्यति ।
आस्तामन्यनितम्बिनी रतिरपि त्रासाच्च पौष्पं करे भर्तुर्द्धर्तुमदान्मदान्धमधुपी नीलीनिचोलं धनुः ॥

१००. चिन्तागम्भीरकूपादनवरतचलद्भूरिशोकारघट्टव्याकृष्टं निःश्वसन्त्यः पृथुनयनघटीयन्त्रमुक्ताश्रुधारम् ।
नासावंशप्रणालीविषमपथपतत्प्राप्य पानीयमेतद्[11] देव त्वद्वैरिनार्यः स्तनकलशयुगेनाविरामं वहन्ति ॥

इति सम्पूर्णेषु काव्येषु वाच्यमानेषु,

१०१. अयि खलु विषमः पुराकृतानां भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः ।

अस्य काव्यस्योत्तरार्द्धं छिन्नपादिभिः परःशतैरपि[13] पण्डितैः[14] परिपूर्यमाणमपि विसंवदतीति राज्ञा धनपालपण्डितः पृष्टः–

हरशिरसि शिरांसि यानि रेजुर्हरिहरि तानि लुठन्ति गृध्रपादैः ॥

---

1 A ०पट्टिकां राज्ञे दर्शयामास नृपः (D तत्र) । 2 P कर० । 3 D एव । 4 P नास्ति । 5 PD 'मय' नास्ति । 6 BP ऽम्भोनिधौ; Pa ऽम्भोधौ । 7 ABD ०तनमालोक्य परि० । 8–9 एतद्वाक्यखण्डं Pa आदर्शानुसारम् । 10 D 'विपरीतान्' नास्ति । 11 AD ०मेता । 12 D छिन्नपा० । 13 B 'अपि' नास्ति । 14 Pb 'बाणमयूरछन्दनाधिराजकर्पूरप्रमुखेषु अपरेषु पण्डितेषु, इदं स्वकल्पितमेव उत्तरार्द्धं न मुग्धमिति वदत्सु धनपालः आह' एतादृशः पाठो विद्यमानोऽस्ति ।

इदमेवोत्तरार्द्धं [1]संवदतीति नृपेणोक्ते सति स पण्डितः प्रोवाच–'यदि गुम्फार्थाभ्यां श्रीरामेश्वरप्रासादप्रशस्तिभित्ताविदं न भवति तदाऽतःपरमाजीवितान्तं कवित्वस्य सन्न्यास एवेति'। तत्प्रतिश्रवसमकालमेव यानपात्रे निर्यामकान्निक्षेप्यावगाह्यमाने नीरधौ पड्भिर्मासैस्तं प्रासादमासाद्य पुनर्मदनपट्टिकायां न्यस्तायामिदमेवोत्तरार्द्धमागतमालोक्य तस्मै तदुचितं[3] पारितोषिकं प्रसादीचकार[4]। इति [5]खण्डप्रशस्तेर्यथाश्रुतानि बहूनि काव्यानि मन्तव्यानि।

६०) कदाचिद्राज्ञा सेवाश्लथतां पृष्टः पण्डितः[6] स्वं[7] तिलकमञ्जरीगुम्फवैयग्र्यं जगौ। शिशिरयामिन्याश्चरमे यामे निर्विनोदत्वात्तां प्रथमादर्शप्रतिमानीय पण्डितेन व्याख्यायमानां तिलकमञ्जरीकथां वाचयंस्तद्रसनिपातभीरुः पुस्तकस्याधः कचोलकयुतसुवर्णस्थालस्थापनापूर्वं तां समाप्य तच्चित्रकविताचिक्रीयमाणचित्तो नृपः पण्डितं प्राह–'मामत्र कथानायकं कुर्वन्, विनीतायाः पदेऽवन्तीमारोपयन्, शक्रावतारतीर्थस्य पदे महाकालमालपन्[10]' यथाचसे तत्तुभ्यं ददामी'त्यभिदधाने नृपे खद्योत-प्रद्योतनयोः सर्षप-कनकाचलयोः काच-काञ्चनयोः धत्तूर-कल्पपादपयोरिव तव तेषां[13] महदन्तरमित्युत्तरम्–

१०२. दोसुहं निरक्खर लोहमइय नाराय तुज्झं किं भणियो। गुञ्जाहि समं कणयं तुलन्तु न गओसि पायालं॥

इत्याक्रोशपरे तस्मिन् जाज्वल्यमानेऽग्नौ तां मूलप्रतिमिन्धनीचकार। अथ स द्विधा निर्वेदभाग् द्विधाऽप्याङ्मुखो निजसौधपश्चाद्भागे जीर्णमञ्चाधिरूढो निःश्वसन् भृशं सुष्वाप। बालपण्डितया तत्सुतया *सभक्तिकमुत्थाप्य स्नानपानभोजननिर्मापणानन्तरं तिलकमञ्जरीप्रथमादर्शलेखनात्संस्मृत्य ग्रन्थस्यार्द्धं लेखयांचक्रे। तदुत्तरार्द्धं नूतनीकृत्य ग्रन्थः समर्थितः।

(इतोऽग्रे Pb आदर्शे निम्नलिखितमधिकं कथनमुपलभ्यते–)

{–ग्रन्थः समर्थितः पण्डितेन। रुष्टो नाणाग्रामे गतः। कदाचिद् धर्मनाम्नि वादिनि समागते भोजसभायां स कोऽपि तादृग् [विद्वान्नास्ति] यत्नं प्रतिवादायोत्सहते। ततो भोजेन सबहुमानं धनपाल आकारितः। तमागच्छन्तं ज्ञात्वा नष्टो वादी। लोकैः 'धर्मस्य त्वरिता गतिः' इति हसितः। राज्ञा सम्मानितः.........पृष्टं च समाधानयोगक्षेमादिस्वरूपं नृपेण। पण्डितः प्राह–

[६८] पृथुकार्त्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेषपरिजनं देव। विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममावयोः सदनम्॥}

(अत्रैव D पुस्तके निम्नगता विशेषाः पंक्तयः प्राप्यन्ते–)

{अन्यदा भोजसभायां काव्यमिदमुक्तं तेन–

[६९] धाराधीश धरामहीशगणने कौतूहलीयानयं वेधास्त्वद्गणनां चकार खटिकाखण्डेन रेखां दिवि।
सैवेयं त्रिदशापगा समभवत्त्वत्तुल्यभूमीधवाभावात्त्यजति स सोऽयमवनीपीठे तुषाराचलः॥

अपरपण्डितैरस्मिन् काव्ये उपहसिते धनपालेनोक्तम्–

† एतद्विस्थानान्तर्गतपाठस्थाने Pa आदर्शे 'संवदतीति तुष्टस्तस्मै पारितोषिकं प्रसादीचकार। अपरेषु पण्डितेषु, इदं स्वकल्पितमेव उत्तरार्द्धं न युक्तमिति वदत्सु धनपालः प्राह–' एतादृशः पाठो विद्यमानोऽस्ति।

1 P विनाऽन्यत्र 'प्रासाद' नास्ति। 2 P विनाऽन्यत्र 'तदतः'। 3 Pb तदुचितं सविशेषं। 4 Pb पुनरदात्। 5 Pb आदर्शे 'खण्डप्रशस्तेर्बहूनि काव्यानि मार्गयितव्यमानानि सन्ति ग्रन्थान्तर इव मयनात्'। 6 [illegible] पण्डि०। 7 BP नास्ति। 8 AD चरम०। 9 Pa ०पुस्तकेमस्याङ०। 10 D ०माकल्पन्। 11 Pa दास्यामी०। 12 Pa काचहेम्नोः। 13 AD 'तव' नास्ति; [illegible] तव। 14 AD दोसुहय। 15 Pa किंचिद्। 16 P तोलन्तु। 17 Pa पाथाल०। 18 Pa मञ्चकारूढो।
* Pb आदर्शे 'समक्तिकं भोजनायोत्थापितः, तद्वृत्तान्तं ज्ञात्वा स्नानभोजनानन्तरं तिलकमञ्जरीग्रन्थस्य प्रथमादर्श०' एतादृशी पंक्तिः। 19 AD लेखयांचकार।

[७०] शैलैर्बन्धयति स्म वानरहृतैर्वाल्मीकिरम्भोनिधिं व्यासः पार्थशरैस्तथापि न तयोरत्युक्तिरुद्भाव्यते ।
यस्तु प्रस्तुतमेव किंचन वयं ब्रूमस्तथाप्युच्चकैर्लोकोऽयं हसति प्रसारितमुखस्तुभ्यं प्रतिष्ठे नमः ॥

एकदा, राजन् ! महाभारती कथा श्रूयतामित्युक्ते पण्डितं प्रति परमार्हतेन तेन प्रत्युक्तम्–

[७१] कानीनस्य मुनेः स्वबान्धववधूवैधव्यविध्वंसिनो नेतारः किल पञ्च गोलकसुताः कुण्डाः स्वयं पाण्डवाः ।
तेमी पञ्च समानजातय इति ख्यातास्तदुत्कीर्तनं पुण्यं स्वस्त्ययनं भवेयदि नृणां पापस्य काऽन्या गतिः ॥}

६१) शोभनमुनेस्तु शोभनचतुर्विंशतिकास्तुतिः प्रतीतैव ।

{*'अधुना किमपि प्रबन्धादिक्रियमाणमास्ते ?' नृपेणेत्युक्ते धनपालः प्राह–

[७२] आरनालगलदाहशङ्कया मन्मुखादपगता सरस्वती । तेन वैरिकमलाकचग्रहव्यग्रहस्त न कवित्वमस्ति मे ॥

† नृपेण गोशतं दापितम् । नृपेण 'गावो लब्धाः ?' इत्युक्ते–

[७३] नेय सयं तं पुच्छइ नेय सयं तं पि गोरुयं इक्कं । नरवर वीसंताओ वीसं ताओ गिहं इन्ति ॥
इति धनपालोक्तिः †}

[७४] ‡वचनं धनपालस्य चन्दनं मलयस्य च । सरसं हृदि विन्यस्य कोऽभून्नाम न निर्वृतः ॥

[§इतश्च शोभनः स्तुतिकरणध्यानादेकस्या गृहे त्रिर्गमनाचस्या एव दृष्टिदोषान्मृतः, प्रान्ते निजभ्रातुः पार्श्वाद् ९६ स्तुतीनां वृत्तिं कारयित्वाऽनशनात्सौधर्मे गतः ।]

॥ इति धनपालपण्डित-प्रबन्धः ॥

६२) [1]अथ तन्नगरनिवासी[2] कोऽपि द्विजः केवलभिक्षामात्रवृत्तिः कस्मिन्नपि पर्वणि स्नानव्याकुले सकलेऽपि नगरलोकेऽलब्धभिक्षया रिक्तताम्रपात्र एवायातः–इति ब्राह्मण्या निर्भर्त्स्यमानः सञ्जायमानकलहे तां प्रति प्रदत्तप्रहारः आरक्षपुरुषैः संयम्य राजमन्दिरे नीयमानो राज्ञा दृष्टः सन्–

१०३. अम्बा तुष्यति न मया न स्नुषया सापि नाम्बया न मया ।
अहमपि न तया न तया वद राजन् कस्य दोषोऽयम् ॥

इमं श्लोकं पपाठ । तदर्थं पण्डितेष्वनवबुध्यमानेषु राज्ञा स्वमनीषिकया तदभिप्रायं प्रायः समुपलभ्य, तस्मै लक्षत्रये दापिते सति श्लोकार्थं कलहमूलं दारिद्र्यमेव नृपो व्याचख्यौ ।

६३) अथान्यदा सर्वाण्यपि दर्शनानि एकत्राहूय मुक्तिमार्गे पृष्टे ते स्वस्वदर्शनपक्षपातं ब्रुवाणाः सत्यमार्गजिज्ञासयैपीक्रियमाणाः षण्मासीमवधीकृत्य श्रीशारदाराधनतत्पराः कस्या अपि निशः शेषे जागर्षीति व्याहृतिपूर्वमुत्थाप्य सा नृपं–

१०४. श्रोतव्यः सौगतो धर्मः, कर्तव्यः पुनरार्हतः । वैदिको व्यवहर्तव्यो, ध्यातव्यः परमः शिवः ॥
(अथवा–ध्यातव्यं पदमक्षयम्[6]) श्लोकमिमं[7] राज्ञे दर्शनेभ्यश्च समादिश्य श्रीभारती तिरोदधे[7] ।

१०५. अहिंसालक्षणो धर्मो मान्या देवी च[8] भारती । ध्यानेन मुक्तिमाप्नोति[9] सर्वदर्शनिनां मतम् ॥
–इति [10]युग्मश्लोकं निर्माय नृपाय निरपायनिर्णयं ते[11] प्राहुः ।

1 D 'शोभन' नास्ति । * इत आरभ्य प्रकरणसमाप्तिपर्यन्ताः पंक्तयः Pa आदर्शे नोपलभ्यन्ते । † एतचिह्नान्तर्गतं कथनं D पुस्तके नास्ति । ‡ B आदर्शे इदं पद्यं पृष्ठस्य पार्श्वभागे लिखितमुपलभ्यते; ADP मूल एव । " एतत्कथनं Pb आदर्शे एव केवलम् । § एतत्प्रकरणमत्र AD आदर्शे नोपलभ्यम्; तत्र तु इतः पूर्वमेव प्रकाम ५५-५६ पोंक्तयाठे संक्षेपेण लिखितं लभ्यते । 2 Pa °वास्तव्यो । 3 Pa पुरलोके । 4 Pa आरक्षकनरैः । 5 कोष्ठकगतं वाक्यं A आदर्शे लभ्यते । 6 AD °मर्थं । 7 P तिरोधत्ते । 8 PPa भारती । 9 Pa मुक्तिमार्गः स्यादेवं दर्श° । 10 AD श्लोकयुग्मं । 11 D 'ते' नास्ति ।

९४) अथ तन्नगरनिवासिनी शीताभिधाना रन्धनी कमपि विदेशवासिनं[1] कार्पटिकं पाकायाशनमुपनीयं[2] *सूर्यपर्वणि जलाश्रये कङ्गुणीतैलमासाद्य गृहमुपेत्य तद्गमनाद्विपन्नमालोक्य सद्रव्यमिति उत्पद्यमानकलङ्कशङ्काकुलतया पञ्चत्वाय तद्दशनमेव बुभुजे[3]* । तस्मिन्स्थिरे[5] प्राद्दुर्भूतमभूत[6]प्रातिभवैभवा विद्यात्रयीं[7] ईषत्समभ्यस्य नवयौवनया विजयाभिधानया विदुष्या स्वसुतया सार्द्धं श्रीभोजस्य सदः शृङ्गारयन्ती श्रीभोजं प्रति प्राह–

१०६. शौर्यं शत्रुकुलक्षयावधि यशो ब्रह्माण्डभाण्डावधि त्यागस्तर्ककवाञ्छितावधिरियं क्षोणी समुद्रावधिः ।
श्रद्धा पर्वतपुत्रिकापतिपदद्वन्द्वप्रणामावधिः श्रीमद्भोजमहीपतेर्निरवधिः शेषो गुणानां गणः ॥

अथ विनोदप्रियेण राज्ञा कुचवर्णनायानुयुक्ता[9] विजया प्राह–

१०७. उन्नाहश्चिबुकावधिर्भुजलता मूलावधिः सम्भवो विस्तारो हृदयावधिः कमलिनीसूत्रावधिः संहतिः ।
वर्णः स्वर्णकषावधिः कठिनता वज्राकरस्मावधिस्तन्वङ्ग्याः स्तनमण्डले यदि परं लावण्यमस्तावधिः ॥

इति तद्वर्णनाकर्णनाचेनाद्र्कविना राज्ञा–

[७५] {[†]किं वर्ण्यते कुचद्वन्द्वमस्याः कमलचक्षुषः ।
तयोक्तम्–सप्तद्वीपकरग्राही भवान् यत्र करप्रदः ॥

राज्ञा–[७६] प्रहतमुरजमन्द्रध्वानवद्भिः पयोदैः कथमलिकुलनीलैः सैव दिग् सम्प्ररुद्धा ।
तयोक्तम्–प्रथमविरहखेदम्लायिनी यत्र बाला वसति नयनवान्तैरश्रुभिर्धौतवक्त्रा ॥}

१०८. सुरताय नमस्तस्मै जगदानन्ददायिने ।–इति राज्ञा प्रोक्ते,
आनुषङ्गि फलं यस्य भोजराज! भवादृशाः ॥
–इति विजयवाक्ये विजयोक्ते[16] राजा सत्रपमधोमुखं तस्थौ ।

{[‡]ततो राजा तां भोगिनीं चक्रे । अन्यदा तया जालान्तरे चन्द्रकरस्पर्शेऽपाठि–

[७७] अलं कलङ्कशृङ्गार! करस्पर्शनलीलया । चन्द्र! चण्डीशनिर्माल्यमसि न स्पर्शमर्हसि ॥}

[७८] [¶]क्षणं क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा असच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि ।
अभूत् पिङ्गा प्राची रसपतिरिव प्राश्य कनकं न शोभन्ते दीपा द्रविणरहितानामिव गुणाः ॥

[७९] [¶]विरलविरलीभूतास्तारा: कलौ सजना इव मन इव मुनेः सर्वत्रापि प्रसन्नमभून्नभः ।
अपसरति च ध्वान्तं चित्तात् सतामिव दुर्जनो व्रजति च निशा क्षिप्रं लक्ष्मीर्निरुद्यमिनामिव ॥

इत्यत्र बहु वक्तव्यं परंपरया तत्तु[17] ज्ञातव्यम् ।

॥ इति शीतापण्डिताप्रबन्धः ॥

---

1 P वैदेशिकं । 2 Pb पुरतं । 3 D पुस्तके एतद्वाक्यं नास्ति । * पूर्वाङ्कितारकान्तर्गतपाठस्थाने Pb आदर्शे एतादृशः पाठः–'कणतैलमिश्रां सिधाटिकामास्वाद्य विपन्नमालोक्य सद्रव्योऽयमनया निपातित इत्युत्पद्यमानकलङ्कशङ्कया राजविडम्बनाभयाकुलतया पञ्चत्वाय तद्दृशं सापि बुभुजे'; Db आदर्शे पुनः–'कार्पटिकं पाकाय तस्या गृहेऽन्नं कारयित्वा निशि घृतकूपिकव्यत्ययेन कांगुणीतैलं परिवेषितं तं विपन्नं निरीक्ष्य तदशनमेव बुभुजे' एतादृशः पाठः प्राप्यते । 4 B तद्गमनमेव । 5 Pb स्थिरीभूते । 6 D 'प्रभूत' नास्ति । 7 D ०त्रयी रघुवास्त्यायनकामशास्त्रचाणाक्यनीतिशास्त्रं ईषत्० । 8 Pa स्थिरः । 9 D नियुक्ता । 10 DPa कषावधिः । 11 Pa कुच० । 12 D यदपरं । 13 D 'कर्णना' नास्ति । † एतत् कोष्ठकान्तर्गताः पंक्तयः केवलं D पुस्तके एव लभ्यन्ते । 14 D 'राज्ञा' नास्ति । 15 DP नास्ति । 16 AB विजयोदिते । ‡ एतत्कोष्ठकान्तर्गतं कथनं केवलं D पुस्तके लभ्यते । ¶ इदं पद्यद्वयं केवलं P आदर्शे लभ्यम् । 17 PPa नास्ति; B तत् ।

६५) *अथ मयूर-बाणाभिधानौ भावुकशालकौ पण्डितौ निजविद्वत्तया मिथः स्पर्द्धमानौ नृपसदसि लब्धप्रतिष्ठावभूताम् । कदाचिद्बाणपण्डितो जामिमिलनाय तद्गृहं गतो निशि द्वारप्रसुप्तो भावुकेनानुनीयमानां समानां जामिं निशम्य तत्र दत्तावधान इत्यशृणोत्-*

१०९. गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी! शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव ।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो[1]

-इति भूयो भूयस्तेन त्रिपदीमुदीर्यमाणामाकर्ण्य,

कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि! कठिनम् ॥

इति भ्रातृमुखात्तुर्यं पदमाकर्ण्य क्रुद्धा सा सत्रपा च 'कुष्ठी भवे'ति तं भ्रातरं शशाप। इति पतिव्रतात्मप्रभावात्तदात्वमभूतप्रसूतिरोगः[2] प्रातः शीतरक्षापिहिततनुर्नृपसभायामायातो[3] मयूरेणैव[4] कोमलगिरा 'वरकोढी'[9] इति तं प्रति[10] प्राकृतशब्दे प्रोक्ते चतुरचक्रवर्ती नृपो बाणं सविस्मयं प्रेक्ष्यमाणस्तेन प्रस्तावान्तरे देवताराधनोपायैश्चेतस्यवतार्याचक्रे[11] । बाणस्तु सत्रपस्तत उत्थाय नगरसीमनि स्तम्भमारोप्य खादिराङ्गारपूर्णमधःकुण्डं विधाय स्तम्भाग्रवर्तिनि सिक्कके स्वयमधिरूढः सूर्यस्तुतौ प्रतिकाव्यप्रान्ते सिक्ककपदं क्षुरिकया छिन्दन् पञ्चभिः काव्यैस्तेन पञ्चसु पदेषु छिन्नेषु सिक्काग्रविलग्नः षष्ठेन काव्येन प्रत्यक्षीकृतभानुस्तत्प्रसादात्सद्यः सञ्जातजात्यकाञ्चनकायकान्तिः, अन्यस्मिन्नहनि सुवर्णचन्दनावलिप्ताङ्गः संवीतसितैर्दिव्यवसनः समाजगाम । तद्वपुःपाटवं पश्यता नृपेण सूर्यवरप्रसादं मयूरे विज्ञपयति सति बाणो बाणनिभया गिरा तं मर्मणि[12] विव्याध। 'यदि देवताद्याराधनं[13] सुकरं तदा त्वमपि किमपीदृक् चित्रमाविःकुरु' इत्यभिहिते तेन मयूरेण तं प्रति प्रतिवचः सन्दधे । 'निरामयस्य किमायुर्वेदविदा; तथापि तव वचः सत्यापयितुं निजपाणी पादौ च[14] छुर्या विदार्य, त्वया षष्ठे काव्ये सूर्यः परितोषितः, अहं तु पूर्वस्य काव्यस्य षष्ठेऽक्षरे भवानीं परितोषयामी'ति प्रतिश्रुत्य सुखासनसमासीनश्चण्डिकामासाद्यपश्चाद्भागे निविष्टो 'मा भाङ्क्षीर्विभ्रम'मिति षष्ठेऽक्षरे प्रत्यक्षीकृतचण्डिकाप्रसादात्प्रत्यग्रप्रथमानवपुःपाटवः स्वसम्मुखं च तत्प्रासादमालोक्याभिमुखागतैर्नृपतिप्रमुखराजलोकैः कृतजयजयारवो महता महेन पुरं प्राविक्षत् ।

६६) एतस्मिन्नवसरे मिथ्यादृशां शासने विजयिनि सम्यग्दर्शनद्वेषिभिः कैश्चित्प्रधानपुरुषैर्नृपोऽभिदधे-'यदि जैनमते कश्चिदीदृक्प्रभावः प्रभवति तदा सिताम्बराः स्वदेशे स्थाप्यन्तां नो[22] चेन्नयाश्चिर्यास्यन्ते' इति तद्वचनादनु[23] श्रीमानतुङ्गाचार्यास्तत्राकार्य 'निजदेवतातिशयं कमपि दर्श-

* एतद्विह्नान्तर्गतकथनस्थाने Pb आदर्शे 'अथ मयूरबाणौ पण्डितौ स्तः । मिथः स्पर्द्धमानौ राजसभायां कदाचिद् बाणो यामिपुरे मिलनाय गतः । बहिस्थोऽशृणोत्' एवरूपं संक्षिप्तं कथनं लभ्यते । 1 P समग्रं; AD नास्ति । 2 P नास्ति । 3 BP कुष्ठिनी । 4 P कथायंमातामालोक्य; Pa आदर्शे एतद्वाक्यं किञ्चिद् भिन्नप्रकारेण लिखितं लभ्यते, यथा-'इदमुदीर्यमाणां भूयोभूय उदीर्यमाणामाकर्ण्य तुर्यं पदं पपाठ' । 5 Pa तद्भ्रातृ० । 6 P सत्रपा क्रुद्धा कुष्ठी भवेति; Pb कुपा सत्रपा कुष्ठी भवेति । 7 B प्रसूतरोगः; D तदात्वमभूतिरोगोऽभूत् । 8 P सभामागतो । 9 D वरकोढी । 10 D 'प्रति' नास्ति । 11 Pa प्राकृतगिरा । 12 Pa तत; BP नास्ति । 13 Pa ०पायं । 14 Pa विस्मयमानः । † B आदर्शे इदं वाक्यमेतादृशं-'दैवप्रसादात्समस्तं विजयपुरं शास्यपीडया । 15 ABD सत्रप० । 16 DP छुरिकया । 17 D 'काव्ये' नास्ति । 18 B ०स्वच्छदिव्य० । 19 ABD 'सति' नास्ति । 20 BPa नास्ति । 21 A ०राधनाय; D देवताराधनं । 22 PPa 'किमपि' नास्ति । 23 AD निजपाणौ च पादौ । 24 PPa नो वा चक्षु० । 25 AD तद्वचनादनन्तरं ।

यन्तु'-इति राज्ञा भणिताः[1] प्राहुः-'मुक्तानामस्मद्देवतानामत्र कोऽतिशयः सम्भवति, तथापि तत्किङ्कराणां सुराणां प्रभावाविर्भावः कोऽपि विश्वचमत्कारकारी दर्श्यत' इत्यभिधाय चतुश्चत्वारिंशता निगडैर्निजमङ्गं नियमितं कारयित्वा तन्नगरवर्त्तिनः श्रीयुगादिदेवस्य प्रासादपाश्चात्यभागे स्थितो मन्त्रगर्भं 'भक्तामरे'ति नवं स्तवं कुर्वन् प्रतिकाव्यं भग्नैकैकनिगडः शृङ्खलासंख्यैः काव्यैः पर्याप्तस्तवोऽभिमुखीकृतप्रासादः शासनं प्रभावयामास ।

॥ इति श्रीमानतुङ्गाचार्यप्रबन्धः* ॥

६७) §अथ कस्मिन्नप्यवसरे नृपः स्वदेशपण्डितानां पाण्डित्यं श्लाघमानो गूर्जरदेशमविदग्धतया निन्दन् स्थानपुरुषेणाभिदधे-'अस्मद्देशीयाबला-गोपालयोरपि भवदीयोऽग्रणीः[4] पण्डितः कोऽपि न तुलामधिरोहती'ति [5] ‡विज्ञप्ते नृपस्तं मृषाभाषिणं चिकीर्षुराकारसंवृत्त्या कियन्तमपि कालं विलम्बमानः स्थानपुरुषेण तद्वृत्तान्तं ज्ञापितः श्रीभीमः स्वदेशसीमान्तनगरे विदग्धाः काश्चित्पणस्त्रियः कांश्च गोपवेषधारिणः पण्डितान् मुक्तवान् । अन्यदा श्रीराजदौवारिकेण[6] तत्रागत्य, कश्चित्तद्विधो गोपः प्रतापदेवीनाम्नीं पणस्त्रियं सह गृहीत्वा विदग्धलोकसुधासारां धाराभारादवाप्य, तां क्वापि सङ्केताकृते विमुच्य, प्रत्यूपमुखे भूपाय गोपे निवेदिते श्रीभोजेन किमपि वदेत्यादिष्टो[7]-‡

११०. भोयएव[8] गलि कण्ठलउ[9] मूं भल्लउ[10] पडिहाइ। उरि[11] लच्छिहि मुहि[12] सरसतिहि सीम [13]विहंची कांइ[¶] ॥

†इति तदुक्तिमाकर्ण्य विस्मयस्मेरमानसः सभायामलङ्कृतायां पणहरिणदृशं तथ्यनेपथ्यधारिणीं पुरो विलोक्य† तां प्रति 'इह किं' इत्याकस्मिकं वचः श्रीभोजः समादिक्षत्[14] । अथ स्व[15]जातिपक्षपातादिव सरस्वत्याः प्रसादपात्रं शेमुषीनिधिः सा सुमुखी शे[16]रीरिणी प्रतिभेव गम्भीरमपि तद्व[17]चनतत्त्वमवगम्य 'पुच्छन्ती'ति नृपं प्रति प्रतिवचः प्रथितवती। इत्युचिततद्व[18]चसा विकसितवदनाम्भोजेन[19] भोजेन कोशाधिपात्[20] लक्षत्रये दाप्यमानेऽज्ञाततत्त्वतया तस्मिन्[21] स्तब्धतां भजमाने

---

1 P भणिते प्राहुः; D भणितं ते प्राहुः; Pa राज्ञोक्ते प्राह । * अतोऽनन्तरं Pb आदर्शे निम्नलिखितं सावचूरिकं पद्यं प्राप्यते–

शीर्णघ्राणाङ्घ्रिपाणीन् व्रणिभिरपघनैर्घर्घराव्यक्तघोषान् दीर्घाघ्रातानघौघैः पुनरपि घटयत्येक उल्लाघयन् यः ।
घर्मांशोस्तस्य वोऽन्तर्द्विगुणघनघृणानिघ्ननिर्विघ्नवृत्तेर्दत्तार्घाः सिद्धसङ्घैर्विदधतु घृणयः शीघ्रमंहोविघातम् ॥

काव्यव्याख्या—व्रणवद्भिरपघनैरवयवैरुपलक्षितान्, घर्घरो व्यक्तश्च यो घोषो रवो येषां तान्, पापैर्दीर्घं आघ्रातान् व्याप्तान् जन्तून् उल्लाघयन् नीरोगीकुर्वन् य एकः पुनरपि निष्पादयति; पुनरपीत्यनेन पुरापि सृष्टिक्रमः सूर्येणैव कृत इति स्थितिः। तस्य सूर्यस्यायो येऽभ्यसेरश्मयोऽहसां पापानां विनाशं विदधतु कुर्वन्तु । इति बाणपण्डितसूर्यशतके षष्ठकाव्यावचूरिः ।

§ Pb आदर्शे एष प्रबन्ध इतः पूर्वमेव लिखित उपलभ्यते । 2 AD कदापि राजा । 3 D ०याबाल० । 4 D ०दीयपण्डितप्रणीः । 5 AD तुला नारोहती० । ‡ एतद्द्विदण्डान्तर्गतपाठस्थाने AD आदर्शे एतादृशः पाठो लभ्यते—'ततः ज्ञापितवृत्तान्तः श्रीभीमः कदापि गोपवेषधारिणं पण्डितं पण्यस्त्रियं च तत्र प्रहितवान् । तत्र प्रत्यूषे नृपसमीपे नीतो गोपालः श्रीभोजेन किमपि निवेदयेत्यादिष्टः' । 6 P श्रीमदौवा०; B भोजदौवा० । 7 P वदेत्यभिहितः । 8 D भोय एहु; A भोएवह; Pa भोयराय । 9 AD कंदुल० । 10 'मूं भल्लउ' स्थाने D भणि केहउ; B केरिसउ; P भणि केसु, Pa कहि केहउ' एतादृशानि पाठान्तराणि । 11 D उर । 12 D मुह । 13 AD निवद्दी; Pa विहिसी । ¶ एतदग्रे अत्र A आदर्शे

'माउलिंगु जइ सुयइ सुयउ इउ मइं कहिउ छोहइ समत्थउ । भोएय पुहविहिं गउ अवरु न सुयइ वीजउ राउ ॥'

एषा गाथा अधिका लभ्यते । तदनन्तरं AD 'इति सरस्वतीकण्ठाभरणगोपवाक्यं (D 'वाक्यं' नास्ति) इत्यादि' एतद्वाक्यं विद्यते । † एतच्चिह्नान्तर्गतपाठस्थाने AD आदर्शगत एतादृशः पाठः–'ततो राजा तदुक्तिविस्मितः सभायामलङ्कृतायां नेपथ्यधारिणीं पण्यस्त्रियं पुरो विलोक्य'— । 14 P समादिदेश । 15 Pa 'स्व' स्थाने 'च'; P 'स' । 16 D शिरोमणी । 17 BPPa तद्घोऽर्थ० । 18 AD ०वचनवि० । 19 AD विकसितास्येन । 20 AD नास्ति । 21 AD एते शब्दा न सन्ति ।

त्रिरुक्तोऽपि' यदा न ददाति तदा तं प्रकाशं प्राह–'देशसात्म्यात्प्रकृतिकार्पण्याच्च लक्षत्रयमस्यै दाप्यते; औदार्यात्तु प्राज्यं साम्राज्यमपि दीयमानमल्पतरमेव स्यादि'त्यादिष्टे समस्तसमाजलोकैः प्रेर्यमाणः स तयोर्वचनयोरन्वयं पृच्छन् इत्यभिदधे–'कर्णान्तविश्रान्तमपाङ्गाञ्जनरेखायुगं युगपदस्या निरूप्य मयेह किमित्यभिहितम्। अनया तु "द्विवचनस्य बहुवचनमि"ति प्राकृतसूत्रलक्षणात् पुच्छन्तीति* दृशौ, कर्णाभ्यर्णेऽञ्जनरेखामिषात्, यो भवद्भ्यां श्रुतपूर्वः स एवायं श्रीभोज इति निर्णेतुं गते †इत्याशंक्योत्तरं दत्तवती। प्रज्ञावज्ञातवाक्पतीनामपि पण्डितानां योऽर्थोऽविषयस्तं सहसैवोद्गिरन्ती प्रत्यक्षरूपा भारतीयम्†। तदस्याः पारितोषिके लक्षत्रयं क्षिपदिति। ततो लक्षत्रयस्य त्रिर्व्याहाराञ्चवलक्षान् प्रत्यक्षांस्तस्यै दापयामास। [ततो ज्ञातगूर्जरजनचातुर्यविशेषः श्रीभोज इत्युवाच–'विवेको गूर्जरे देशे'। ततो राजा 'मालवीयः पण्डितो गूर्जरो गोपालः समौ' इति वृद्धजनगिरं सत्यां मन्यमानस्तौ विससर्ज।]

॥ इति पणद्धी-गोपयोः प्रबन्धः ॥

६८) अथाबाल्यादेव स नृपः–

१११. मस्तकस्थायिनं मृत्युं यदि पश्येदयं जनः। आहारोऽपि न रोचेत किमुताकृत्यकारिता ॥

इति विज्ञाततत्त्वतया धर्मेऽप्रमत्तोऽभूत्। कदाचिन्निद्राभङ्गानन्तरं 'कश्चिद्विपश्चित्समेत्य वेगवति तुरगेऽधिरूढस्त्वां प्रति प्रेतपतिरुपैतीत्यनुसारेण धर्मकर्मणि सज्जीभवितव्यमि'ति वचनाधिकारिणे पण्डिताय प्रत्यहमुचितदानं ददानः कदाऽपराह्णे सभासिंहासने उपविष्टः स्थगिकाबिलसमर्पितवीटकात्प्रागेव मुखे पत्रं क्षिप्त्वाऽभ्यवहरन् व्यवहारवेदिभिस्तत्कारणं पृष्ट इत्यवदत्–'कृतान्तदन्तान्तरवर्त्तिनां मनुष्याणां यद्दत्तं यच्च भुक्तं तदेवात्मीयं परस्य तु संशयः। तथा च–

११२. उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किमद्य सुकृतं कृतम्। आयुषः खण्डमादाय रविरस्तं प्रयास्यति ॥ १

११३. लोकः पृच्छति मे वार्त्तां शरीरे कुशलं तव। कुतः कुशलमस्माकमायुर्याति दिने दिने ॥ २

११४. श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्। मृत्युर्न हि परीक्षेत कृतं वास्य न वा कृतम् ॥ ३

११५. मृतो मृत्युर्जरा जीर्णा विपन्नाः किं विपत्तयः। व्याधयो व्याधिताः किं नु हृष्यन्ति यदमी जनाः ॥ ४

॥ इत्यनित्यताश्लोकचतुष्टयप्रबन्धः ॥

६९) अथान्यदा श्रीभोजः श्रीभीमभूपतेः पार्श्वाद् दूतमुखेन वस्तुचतुष्टयमयाचिष्ट। एकं वस्तु इहास्ति परत्र नास्ति १; द्वितीयं परत्रास्ति, अत्र नास्ति २; तृतीयमुभयत्रास्ति" ३; चतुर्थमुभय-

अपि नास्ति ४। इति विदुषामपि सन्दिग्धेऽर्थे अणहिल्लपुरे पटहे वाद्यमाने कयापि †गणिकया पटहस्पर्शपूर्वकं विज्ञपयांचक्रे–'गणिका १ तपस्वि २ दानेश्वर ३ द्यूतकार ४ रूपं वस्तुचतुष्टयं गृह्यताम्'[3]। *इति तयोक्ते नृपो दूताय तत्समर्पयत्। दूतेनेत्थमेवाभिधाय वस्तुचतुष्टयमादाय यथागतं जग्मे*।

॥ इति वस्तुचतुष्टयप्रबन्धः ॥

७०) अन्यदा भोजनृपो वीरचर्यया परिभ्रमन्निशि कयापि दुर्विधवध्वा–

११६. ‡माणुसडाँ दस दस दसा सुणियइ लोयपसिद्ध। मंह कन्तह इक्क ज दसा अवरि ते [7]चोरहिं लिद्ध॥

इदं[8] पठ्यमानमाकर्ण्य तस्या[9] दुःस्थाऽवस्थया सञ्जातकृपो नृपः प्रातस्तत्पतिं[10] सदस्यानीय तस्य किमप्यायतिहितं विमृश्य बीजपूरकद्वये प्रत्येकं लक्षमूल्यं[11] रत्नद्वयं[12] प्रच्छन्नं[13] तस्मै प्रसादीकृतवान्। तेनापि तद्वृत्तान्तमजानता मूल्येन पत्रशाकापणे तद्[14] विक्रीतम्। तेनाप्यविदिततत्स्वरूपेणोपायनाय तन्मातुलिङ्गद्वयं[16] कस्यापि समर्पितं सत् श्रीभोजस्यैव तेन ढौकितम्[18]।

११७. वेलामहल्लकल्लोलपिल्लियं[20] जइ वि गिरिनईपत्तं। अणुसरइ मग्गलग्गं पुणोवि रयणायरे रयणं॥

¶इत्यनुभवाद्भाग्यमेव नृपस्तथ्यं मेने। यतः–

११८. §श्रीणिवासेपविश्वासु वर्षास्वपि पयोलवम्। नाप्नुयाचातको नूनमलभ्यं लभ्यते कुतः॥

॥ इति बीजपूरकप्रबन्धः ॥

७१) अथान्यदा कस्यामपि निशि नृपः 'एको न भव्यः' इति प्रच्छन्नं क्रीडाशुकं पाठयित्वा प्रातः 'त्वया पण्डितसभायां[23] वाक्यमिदमुच्चारणीयमि'ति संशिक्षितवान्। अथ तेन[24] तथाभिधीयमाने नृपेण पृष्टाः पण्डिता निर्णयमजानन्तः षाण्मासीमवधिं[25] याचितवन्तः। ततस्तन्मुख्यो वररुचिस्तन्निर्णयाय देशान्तरं परिभ्रमन् केनापि पशुपालेन 'अहमेवामुं[26] निर्णयं[27] भवत्स्वामिने निवेदयिष्यामि[28]। परमहंममुं स्वं श्वानशावं[30] वृद्धतया नोद्वोढुं वत्सलतया न मोक्तुं च शक्नोमि'–इति[32] [33]तेनाभिहिते तन्निरीक्षया वररुचिस्तं वस्त्रान्तरितं निजस्कन्धे समधिरोप्य तं[35] पशुपालं सह नीत्वा नृपसमामुपागतं उत्तरकारिणं[37] निवेदयामास। अथ स पशुपालो[38] नृपेण तदेव वचनं

---

1 AD 'अपि' नास्ति। 2 AD नास्ति। † एतद्दण्डान्तर्गतपाठस्थाने AD प्रतौ 'गणिकावचनाद्वेश्या–तपस्वि–दानेश्वर–द्यूतकार–रूपं वस्तु चतुष्टयं गृहीतम्।' एतादृशः संक्षिप्तः पाठः। 3 P दीयताम्। * तारकान्तर्गता पंक्तिः केवलं BP आदर्शे लभ्यते। 4 D कयाचिदपि। 5 AD दरिद्र॰। ‡ Pa प्रतौ इयं गाथा एतादृशी—

'माणुसडा दस दस हवइ देविहिं निम्मवियाइं। मह कंत इक्कइ जि दस नव चोरिहिं हरियाइं॥'

6 P मुख। 7 D चोरहिं। 8 AD इति। 9 B तस्यावस्थया, P तस्या दुःस्थाया अवस्थया। 10 BP ॰कुटुंबं। 11 AB लक्षमूल्यं। 12 A रत्नमयी; B रत्नद्वयी; D रत्न। 13 P प्रक्षिप्य प्रच्छन्नोपकारी; D तदुपकारा॰। 14 AD 'तद्' नास्ति। 15 AD तेनाप्युपायनाय। 16 BP नास्ति एतत्पदम्। 17 AD नास्ति। 18 A तेन तु (D 'तु' नास्ति) श्रीभोज॰। 19 P ॰उपढौकितं; B उपढौकितं। 20 A पल्लियं; D पल्लिइं; Pa ठाल्लियं। ¶ एतद्वाक्यस्थाने P 'परेसनानां भग्ना' एव पाठः। 21 केवलं D पुस्तके एष शब्दो लभ्यः। § BPa नास्ति एष श्लोकः। 22 AD नास्ति। 23 नास्तीदं B PPa। 24 Pa नास्ति। 25 B षण्मासीं यावत् याचितव्यवधानाः; Pa –॰याचितावधय॰, P ॰याचितवातस्मिता(?)। 26 P मनुष्य॰। 27 Pa 'निर्णयं' नास्ति। 28 BP निवेदयामि-इति। 29 AD 'अहं' नास्ति। 30 AD 'श्वानं' इत्येव। 31 BPPa नास्ति। 32 BPPa पारयामि। 33 BPPa तेनेत्यभिहिते; Pb तेनोक्ते सं श्वानं। 34 AD समारोप्य; Pa समधिरोप्य। 35 AD 'तं' नास्ति। 36 BPPa उपेतः। 37 A ॰कारणं। 38 BPPa नास्तीदं पदम्।

पृष्टः–'अस्मिन् जीवलोके राजन्! लोभ एवैको न भव्यः'। *राज्ञा कथमिति भूयोऽपि पृष्टः–'यद्ब्राह्मणः श्वानं स्कन्धदेशेनास्पृश्यमपि वहति तल्लोभस्यैव विजृम्भितमतो लोभ एव न भव्यः'*।

॥ इति 'एको न भव्यः' प्रबन्धः ॥

७२) अथान्यदा मित्रमात्रसहायो नृपतिर्निशि परिभ्रमन् पिपासाकुलतया पण्यरमणीगृहं गत्वा मित्रमुखेन जलं याचितवान्। ततोऽनुच्चवात्सल्याच्छम्भलया दास्या फाटरिलपैरिक्षुरसपूर्णः "करकः सखेदमुपानीयत। मित्रेण खेदकारणे पृष्टे–'एकस्यामिक्षुलतायां शूलेन" भिद्यमानायां" पुरा" रससम्पूर्णः" सवाहटिको घट आसीत्; साम्प्रतं तु प्रजासु विरुद्धमानसे" नृपे चिरकालेन केवला "वाहटिकैव भृतेति खेदकारणम्'। नृपस्तत्खेदकारणमाकर्ण्य येनापि वणिजा शिवायतने महति" नाटके कार्यमाणे तद्गुण्ठनचित्तमात्मानं विसृज्य तद्धनलब्धमेवेति" मेने। ततो व्यावृत्त्य स्वस्थानमासाद्य निद्रां सिषेवे। अपरेद्युः प्रजासु सज्ञानकृपो नृपः पण्याङ्गनागृहं गतः। तदा च तयाऽद्य प्रजासु वत्सलो नृपतिः, प्रचुरेक्षुरससद्भावादिति व्याहरन्त्या राजा तोषितः"।

॥ इतीक्षुरसप्रबन्धः ॥

७३) अथान्यस्मिन्नवसरे धारानगर्याः गोपुरे प्रासादस्थिताया" गोत्रदेव्या" नमस्कारार्थं नित्यमागच्छन् कदाचिद्वेलाव्यतिक्रमे सञ्जाते सति प्रत्यक्षीभूतया तया देवतया द्वारदेशमागतया मितपरिच्छदं द्वारदेशमागतमकस्मान्नृपमालोक्य ससम्भ्रममासिपेदुषी निजासनमतिचक्राम। नृपः प्रणामपूर्वकं तं वृत्तान्तं पृच्छन्, सन्निहितं परबलमागतं विचिन्त्य 'शीघ्रं व्रजे'ति विसृष्टो देवतया क्षणात् गूर्जरसैन्यैर्वेष्टितं स्वमपश्यत्। जवाधिकेन वाजिना व्रजन् धारानगरगोपुरे प्रविशन्, आल्हूया-कोल्हूयाभिधानाभ्यां गूर्जराश्ववाराभ्यां तत्कण्ठे धनुषी प्रक्षिप्य, एतावता व्यापादितोऽसीति वदद्भ्यां त्यक्तः।

११०. "अगी गुणीति मत्वेव भोजः कण्ठमुपेयुषा। धनुषा गुणिना यस्य नम्रयाम पातितः" ॥

॥ इति अश्ववारप्रबन्धः ॥

(इतोऽग्रे Pb प्रतौ निम्नगतः प्रबन्ध उपलभ्यते-)

{ अथान्यदा रात्रौ जागृतो भोजः स्वऋद्धिविस्तारं हृदये चिन्तयन् हृष्टः सन् इदं काव्यपादत्रयमाह-

[८०] चेतोहरा युवतयः स्वजनोऽनुकूलः सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः ।
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः....

इति पुनः पुनः कथयति सति नृपे चतुर्थपादार्थमक्षरावलीं विलोकयति सति च तावत्कश्चिद्विद्वान् वेश्याव्यसनी तद्वचनाद्राज्ञीकुण्डलयुगमकृते तद्वेश्म चौर्याय प्रविष्टः, तत्पादत्रयमशृणोत् । ततस्तेनाचिन्ति यद्भाव्यं तद्भवतु, परमुत्पन्नं चतुर्थं पादं कथं स्थापयितुं शक्तः । ततः प्राह-

सम्मीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति ॥

राजा तुष्टः कुण्डलसहितं तद्वाञ्छितं ददौ । }

७४) अथान्यदा स एव राजा राजपाटिकायाः प्रत्यावृत्तः पुरगोपुरे मुखमुक्तेन तुरगेण प्रविशन् व्याकुलीभूतेषु[1] इतस्ततः पलायमानेषु जनेषु[2] कामपि तक्रविक्रयकारिणीं[3] जनसंमर्देन मौलिकुम्भाद्भूतलपतितं[4] भग्नभाण्डामपि गोरसे सरित्प्रवाह इव प्रसरति विकसितमुखाम्भोजां[5] श्रीभोजः प्राह-'तव विषादेऽपि किं हर्षकारणं?'[6] इति नृपेण [7]पृष्टे सा प्राह-[8]

१२०. हत्वा नृपं पतिमवेक्ष्य भुजङ्गदष्टं देशान्तरे विधिवशाद्गणिकाऽस्मि जाता ।
पुत्रं भुजङ्गमधिगम्य चितां प्रविष्टा शोचामि गोपगृहिणी कथमद्य तक्रम् ॥

[*एवमवादीत्[9] । तस्मात्प्रदेशात् 'मही'ति महीयसी नदी[10] प्रादुरास[11] ।]

॥ इति गोपगृहिणीप्रबन्धः ॥

७५) ‡अन्यदा प्रातः श्रीभोज उपशिलामेकां लक्षीकृत्य धनुर्वेदसनिर्वेदमभ्यस्यंस्तत्कालदर्शनार्थमागतेन सिताम्बरवेषधारिणा श्रीचन्दनाचार्येण प्रत्युत्पन्नप्रतिभाभिरामतयौचित्यमभिदधे-

१२१. विद्धा विद्धा शिलेयं भवतु परमतः कार्मुकक्रीडितेन राजन्! पाषाणवेधव्यसनरसिकतां मुञ्च देव प्रसीद ।
क्रीडेयं चेत्प्रवृद्धा कुलशिखरिकुलं केलिलक्षं करोषि ध्वस्ताधारा धरित्री नृपतिलक तदा याति पातालमूलम् ॥

इति तत्कवितातिशयचमत्कृतोऽपि किञ्चिद्विचिन्त्य नृपतिरित्युवाच-'भवता[14] सर्वशास्त्रपारगतेनापि ध्वस्ताधारेति यत्पदमपाठि[15] ततः कमप्युत्पातं सूचयति'[16] ।

७६) इतश्च[17]-डाहलदेशीयराज्ञो राज्ञी देमतिनाम्नी[18] महायोगिनी । सा[19] कदाचिदासन्नप्रसवा सदैव दैवज्ञानिति पप्रच्छ-'कस्मिन्सुलग्ने जातः सुतः सार्वभौमो भवती'ति । अथ तैः सम्यगधगम्योधराशिषु केन्द्रस्थेषु[20] सौम्यग्रहेषु त्रिषडायगेषु क्रूरेषु चामुकलग्ने जातः सुतः सार्वभौमो भवतीत्युक्तम्[21] । तन्निशम्य निश्चितप्रसवदिनादूर्ध्वं षोडशप्रहरान् यावद्योगयुक्त्या गर्भस्तम्भं कृत्वा नैमित्तिकनिर्णीते लग्ने कर्णनामानं सुतमसूत[22] । तद्गर्भधारणदोषादष्टमे यामे सा[23] विपन्ना ।

1 B भूपतिः । 2 BP जातभयेषु; Pa हृतभयेषु । 3 BP लोकेषु इत० । 4 AD ०विक्रयिणीं । 5 B मौलिकम्भेन भूतलात्; P ०कररेन भग्नभाण्डा० । 6 AD ०मुखां तां प्राह । 7 D विषादे किं कारणं । 8 BP नृपेणाभिहिता । * एषा पंक्ति. A गोपलभ्यते प्रक्षिप्तप्राया चैषा । 9 D नास्ति । 10 D 'प्रदेशात् महीनदी' इत्येव । 11 Pa प्रादुरासीत् प्रथमवर्षेषु; Pb प्रादुरासीदिति कथा लोकप्रसिद्धा । ‡ एष प्रबन्धः BPPa आदर्शेषु नोपलभ्यतेऽत्र । 12 D प्रीतः; Pb प्रातःसमये । 13 Pb शिलास्मरेण । 14 A भवत । 15 A ०पारंगतस्य । 16 A पपात । 17 BPPa नास्तीदं पदं । 18 BP अथ डाहलदेशे देमतनाम्नी राज्ञी, Pa डाहलीदेशेऽस्य देमतनाम्नी भार्या । 19 AD नास्ति । 20 BPa केन्द्रमाश्रितेषु । 21 BP 'इत्युक्तं' नास्ति । 22 BP कुर्वंता । 23 D प्रसूता । 24 BPPa सापि संयमिनीं पुरीं जगाम ।

सुलग्नजातत्वात्पराक्रमाक्रान्तदिक्चक्रः षट्त्रिंशदधिकेन *राज्ञां शतेन भृङ्गविभ्रमकारिणा कुन्तलकलापेन सेव्यमानविमलक्रमकमलयुगलश्चतसृषु* राजविद्यासु परं प्रावीण्यमावहन् विद्यापतिप्रमुखैर्महाकविभिः स्तूयतेऽसौ । यथा–[एकदा कर्पूरकविः[1]]

१२२. मुखे हारावाप्तिर्नयनयुगले कङ्कणभरो नितम्बे पत्राली सतिलकमभूत्पाणियुगलम् ।
अरण्ये श्रीकर्ण! त्वदरियुवतीनां विधिवशादपूर्वोऽयं भूषाविधिरहह जातः किमधुना ॥

{ [2]इत्युक्ते चतुरचक्रवर्ती राजाह–'यदि विधिवशादेवं भवति तदा धर्ण्यनृपतिः किं दैवाद् यन्न चिन्त्यते तदपि स्याद्' अतोऽचमत्कृतेन राज्ञा किञ्चिन्न दत्वा विसर्जितः । गृहं गतो भार्यया पृष्टम्–'किं दत्तं राज्ञा?' स आह–'वृत्तस्वरूपम्' । साह–'यदि विधिस्थाने तव वशादिति उक्तमभविष्यत् तदा तव सर्वं अदास्यत्' । ततो नाचिराजकविः कर्णनृपमस्तवीत् । यथा–

[८१] गोपीपीनपयोधराहतमुरः सन्त्यज्य लक्ष्मीपतेः शङ्के पङ्कजशङ्कया नयनयोर्विश्राम्यति श्रीस्तव ।
श्रीमत्कर्णनरेन्द्र! यत्र वलति भ्रूवल्लरीपल्लवस्तत्र त्रुट्यति भीतिमद्गुरुतया दारिद्र्यमुद्रा यतः ॥

ततोऽतितुष्टेन नृपेण हस्तशृङ्खलकपूर्वं उचितदानेन प्रसादीकृतेन मार्गे आगच्छन्तं ज्ञात्वा, भार्या कर्पूरः प्राह–'यद्राज्ञा असौ दत्तं समस्ति, इदानीं तदहं स्वगृहे आनयामी'त्युक्त्वा गवाक्षसम्मुखम् ।

[८२] कन्ये कासि न वेत्सि मामपि कवे कर्पूर किं भारती सत्यं किं विधुरासि वत्स मुषिता केनाम्ब दुर्वेधसा ।
किं नीतं तव मुञ्ज-भोज-नयनद्वन्द्वं कथं वर्तसे दीर्घायुर्भजतेऽन्यपक्षिपदवीं श्रीनाचिराजः कविः ॥

अनेन काव्येन तुष्टः सन् कर्णराजात् प्राप्तं स्वर्णदुकूलादि तत्कर्पूरकवयेऽदात् नाचिराजकविः । एतत्कर्णनरेन्द्रेण ज्ञात्वा कर्पूर आकारितः पृष्टं च–'हे कवे! मुञ्ज-भोज इति पदं कस्मादुदाहृतं भोजे विद्यमाने?' स आह–'देव! राक्षसेन हर्ष-मुञ्जनयनद्वन्द्वस्थाने 'मुञ्ज-भोज' इत्युच्चार्यं ।' ततो राज्ञा ज्ञातं एवद् भोजस्याऽमङ्गलसूचकम् । }

[८३] [3]दूर्वाः श्यामलयन्ति सन्ततशिलाश्वि...... प्राङ्गणं शून्ये कल्पतरोस्तले रागमृगाः खेलन्ति निर्भीतयः ।
श्रीमत्कर्णनरेन्द्रमानविभवैः पूर्णेषु सर्वार्थिषु स्कन्दोपान्तनिवेशितालसशुरषी निद्राति रे... कामधुक् ॥

७७) [1]इत्थं महाकविभिः स्तूयमाननानावदातः [स कर्णनृपः कदाचित्] श्रीभोजं प्रति प्रधानान् प्राहिणोत्–'भवदीयनगर्यां भवत्कारिताश्चतुरुत्तरं शतं प्रासादाः, एतावन्त एव गीतप्रबन्धा भवदीयाः, एतावन्ति च विरुदानि। अतश्चतुरङ्गयुद्धेन द्वन्द्वयुद्धेन वा चतसृषु विद्यासु वादच्छलेन त्यागेन वा मां निर्जित्य पञ्चोत्तरशतविरुदानां भाजनं भूयाः । नो वाहं त्वां विजित्य सषट्त्रिंशदधिकस्य राज्ञां शतस्य नाथो भवामि'–इति तत्प्रधानविज्ञापनात् [2]ईषत् परिम्लानमुखाम्भोजः श्रीभोजः सर्वेष्वपि प्रकारेषु जितकाशिनं काशिपुराधीशं विमृशन् स्वं पराजितं मन्यमानस्तानुपरोधपूर्वम् अभ्यर्थ्यैवमङ्गीकारयामास। यत्"–[3]अवन्त्यां श्रीकर्णेन वाराणस्यामेकस्मिन् "लग्ने गतासूत्रप्रसार-

स्याहंपूर्विकया कार्यमाणयोः पञ्चाशद्धस्तप्रमाणयोः [1]प्रासादयोः यस्मिन्प्रासादे प्रथमं कलशध्वजाधिरोपो भवति तस्मिन्नुत्सवेऽपरेण नरेन्द्रेण त्यक्तच्छत्रचामरेण करेणुमधिरुह्य समागन्तव्यम्। इत्थं भोजस्य यथारुच्यां[3]ऽङ्गीकारे कर्णगोचरंगते श्रीकर्णस्तेषु[4] सामर्पोऽपि तेनापि प्रकारेण भोजमधश्चिकीर्षुरेकस्मिन्नेव लग्ने पृथक् पृथक् प्रारब्धयोरुभययोः प्रासादयोः सर्वाभिसारेण निजप्रासादं निर्मापयन्[5] सूत्रभृतं पप्रच्छ–'एकस्मिन्नहन्युदयास्तयोरन्तरे कियान् कर्मस्थायो[6] भवतीति निवेद्यताम्'। अथ तैश्चतुर्दश्यनध्याये तत्र सप्तहस्तप्रमाणा एकादश प्रासादा दिनोदये प्रारभ्य दिनान्ते कलशपर्यन्ताः कारयित्वा नृपाय दर्शिताः। तया समग्रसामग्र्या नृपः प्रमुदितचित्तो भोजप्रासादकपालबन्धे [10]जायमाने निजप्रासादेऽनलसः कलशमधिरोप्य निर्णीते ध्वजाधिरोपलग्ने तया प्रतिज्ञया श्रीभोजं दूतमुखेन निमन्त्रयामास। ततः स्वप्रतिज्ञाभङ्गभीरुर्मालवमण्डलप्रभुस्तथा प्रयातुमप्रभूष्णु[11]स्तूष्णीमासीत्। अथ प्रासादध्वजाधिरोपा[12]नन्तरम्, अवतीर्ण[13]पुराणकर्ण इव श्रीकर्णस्तावद्भिरेव नृपैः समं प्रस्थितः श्रीभोजमभ्यषेणयत्[14]। तस्मिन्न[15]वसरे श्रीभोजराज्यार्द्धं [16]प्रतिश्रुत्य मालवकमण्डलपार्ष्णिघाताय निस्सीमतदीयसीमनगरे[17] श्रीकर्णः श्रीभीममजूहवत्। अथ ताभ्यां नरेन्द्राभ्यां मन्त्रेणाक्रान्तो व्याल इव भोजभूपालो विगलितदर्पविषो बभूव। तदा चाकस्मिके सञ्जाते भोजवपुरपाटवेऽपं[18]न्हूयमाने सर्वेष्वपि घाटमार्गेषु निजनियुक्त[19]मानुषैः सर्वथा निषिध्यमानेऽपरपुरुषप्रवेशे श्रीभीमः कर्णाभ्यर्णवर्तिनं निजसान्धिविग्रहिकं दामरं भोजवृत्तान्तज्ञानाय स्वपुरुषेण पप्रच्छ। तेनापि स [20]पुरुषो गाथामध्याप्य प्रहितः श्रीभीमसभामुपागतः–

१२३. अम्बयफलं सुपक्कं विण्टं सिढिलं समुब्भडो पवणो। साहा मल्हैणसीला न याणिमो कज्जपरिणामो॥

अनया गाथया श्रीभीमे तथास्थिते श्रीभोजः सन्निहितपरलोकपथप्रयाणः कृततदुचितधर्मकृत्यः, [21]राज्यस्यानुशास्तिं समस्तराजलोकस्य वितीर्य 'मम पञ्चत्वानन्तरं मत्करौ विमानाद्बहिर्विधेयावि'त्यादिश्य[23] दिवं[24] गतः।

[८४] {[†]कसु करु रे पुत्त कलत्त धी कसु करु रे करसणवाडी। एकला आइवो एकला जाइवो हाथपग वेहु झाडी॥

इति भोजवाक्यं वेश्यया कथितं लोकानां प्रति।}

७८) [*अथ तस्मिन् श्रीभोजे दिवमुपेयुषि] तद्वृत्तान्तविदा कर्णेन तद्दुर्गमदुर्गभङ्गादनु[25] समग्राया[26] श्रीभोजलक्ष्म्यामुपात्तायां श्रीभीमेन दामर आदिष्टः–'यच्छ्रीकर्णात्त्वया मत्परिकल्पितं राज्यार्द्धं[27] निजं शिरो वोपनेतव्यम्[28]'। इति राजादेशं विधित्सुर्द्वात्रिंशता पत्तिभिः समं[29] गुरूदरे प्रविश्य मध्याह्नकाले प्रसुप्तं श्रीकर्णं [30]धान्ये जग्राह। अथ तेन राज्ञा एकस्मिन् विभागे नीलकण्ठचिन्तामणिगणाधिपप्रमुखदेवतावसरे निर्णीतेऽपरस्मिन्नुत्तरार्द्धे समस्तराज्यवस्तूनि 'स्वेच्छयैकमर्द्धमाद-

---

1 पूर्वदृष्टिपदस्थाने BPPa 'सयो.' इत्येव। 2 Pa पक्ष। 3 Pa यथांगीकारे। 4 'तेषु सामर्पोऽपि' नास्ति AD। 5 D निर्मापयतोऽत्र कर्णः सूत्र०। 6 D कर्मोष्णायो। 7 AD तेन पप्र०। 8 AD कलशारोपपर्यन्ता.। 9 AD ०कलाप०। 10 AD संजाय०। 11 D ०प्रभुश्च श्रीभोजस्तूष्णी०। 12 BPPa ध्वजारोपणादनन्तरं। 13 BP भवतीर्णः पु०। 14 AD ०मभिषेणयितुं। 15 AD तदा च। 16 BP ०राज्यार्द्धप्रदानमूरीकृत्य। 17 AD नास्तीदं पदं। 18 BPPa तस्मिन् नृपस्य वपुरपाटवे। 19 B निजगुप्तमानसैः। 20 B [illegible] पुरुष। 21 D मिरुढ्ण०। 22 एतद्वाक्यं नास्ति AD। 23 B इत्यादिदेश। 24 P दिवमुपेयुषि, Pa ०मुपेयिवान्; B नास्तीदं। † कोष्ठकान्तर्गत पाठो नास्ति BPPa मध्येषु। * B आदर्शे एव केवलमिदं वाक्यमुपलभ्यते। 25 AD दुर्गमदुर्गं। 26 BP समग्रभोजल०। 27 D नास्ति। 28 BPPa वोपनेयं। 29 AD सह। 30 A धान्यं; D धाम्यं।

त्स्ये'त्यभिहिते षोडशप्रहरांस्तथा स्थित्वा पुनः श्रीभीमराजादेशाद्देवतावसरमादाय श्रीभीमायोपायनीचकार । अथैतत्प्रबन्धसङ्ग्रहकाव्ययुग्मं यथा–

१२४. पञ्चाशद्धस्तमाने शिवभवनयुगे तुल्यलग्नक्षणे प्राक् प्रारब्धे यस्य शीघ्रं भवति हि कलशारोपणं तत्र राज्ञा ।
अन्येन च्छत्रचालव्यजनविरहितेनाभ्युपेतव्यमेवं संवादे भोजराजा व्ययविमुखमतिः कर्णदेवेन जिग्ये ॥

१२५. भोजे राज्ञि दिवं गतेऽतिबलिना कर्णेन धारापुरीभङ्गं यत्रयतोपलभ्य नृपतिर्भीमः सहार्धीकृतः ।
तद्भृत्येन च दामरेण जगृहे चन्दीकृतात्कर्णतो हैमी मण्डपिका गणाधिपयुतः श्रीनीलकण्ठेश्वरः[*] ॥

१२६. [1]कविषु कामिषु योगिषु भोगिषु द्रविणदेषु सतामुपकारिषु[2] ।
धनिषु धन्विषु धर्मधनेषु च क्षितितले नहि भोजसमो नृपः ॥

१२७. [3]त्यागैः कल्पद्रुम इव भुवि शासिताशेषदोस्थ्यः साक्षाद्वाचस्पतिरिव जगाद्दू बन्धनानाप्रबन्धः ।
राधावेधेऽर्जुन इव चिरात्तस्य कीर्त्योत्कचिर्चराहूतः श्रीगमरनिर्करः सपर्यां भोजराजः ॥

॥ इति भोजस्य विविधाः प्रबन्धा अवशेषा[4] अपि[5] यथाश्रुतं मन्तव्याः[6] ॥

॥ इति श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिते प्रबन्धचिन्तामणौ श्रीभोजराज–श्रीभीमभूपयोः
नानावदातवर्णनो नाम द्वितीयः प्रकाशः ॥ ग्रंथाग्र २६४ ॥

[८. सिद्धराजादिप्रबन्धः।]

७९) अथ कदाचिद्गूर्जरदेशे अवग्रहनिगृहीते[1] वर्षणे विशोपकदण्डादिदेशग्रामकुटुम्बिकेषु[2] राजदेयविभागनिर्वाहाक्षमेषु[3] तन्नियुक्तैर्व्यापारिभिः सकलोऽपि[4] सजातवित्तो[4] देशलोकः[4] श्रीपत्तने समानीय भीमभूपाय[5] न्यवेद्यत। ततः[6] कदाचिदहर्मुखे श्रीमूलराजकुमारस्तत्र[7] चङ्क्रममाणो नृपपत्तिभिः सस्यनिदानीभूतदानीसम्बन्धे[8] व्याकुलीक्रियमाणं सकललोकमालोक्य पारिपार्श्विकेभ्योऽधिगतवृत्तान्तः[9] कृपया किञ्चिदश्रुमिश्रलोचनो[10] वाह्यवाह्याल्यां तदतुलया[11] कलया नृपं परितोष्य[12] 'वरं वृणीष्वे'ति नृपादेशमासाद्य[13] 'भाण्डागार एव वरोऽयमस्तु' इति विज्ञापयामास। राज्ञा–'किमिति अधुना[14] न याचसे?' इत्युक्तः 'प्राक्षिप्यमाणाभावाद्'–इत्युदीरयन् भूयो निर्बन्धपराद् धराधिपात्तेषां कुटुम्बिनां[15] दानीमोचनवरं ययाचे।[16] ततो हर्षबाष्पाविललोचनेन राज्ञा[17] तत्तथेति प्रतिपद्य भूयोऽप्यभ्यर्थयस्वेत्यभिहितः[18]।

१२८. क्षुद्राः सन्ति सहस्रशः स्वभरणव्यापारमात्रोद्यताः स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः।
दुःपूरोदरपूरणाय पिबति स्रोतःपतिं वाडवो जीमूतस्तु निदाघसम्भृतजगत्सन्तापविच्छित्तये॥

इति काव्यार्थबलेन[19] निगृहीतप्रभूतलोभस्ततो[20] भूयः[21] किमप्यप्रार्थ्यमानो[22] मानोन्नततया *स्वसौधमध्यमध्यास्य बन्धनविमोचितैस्तैर्लोकैः स दैवतवदुपास्यमानः स्वस्थानस्थितैश्च* स्तूयमानस्तृतीयेऽहनि तदीयसन्तोषदर्शी[23] श्रीमूलराजः स्वर्लोकं[24] जगाम। तच्छोकाम्बुधौ सराजलोको राजा, स च पूर्वमोचितलोकश्च निमग्नश्चिरेण चतुरैर्विविधबोधबलादपकृष्टशोकशङ्कुश्चक्रे।

अथ[25] द्वितीये वर्षे वर्षाबलाद् हर्षिभिः[26] कर्षुकलोकैर्निष्पन्नेषु समस्तसस्येषु व्यतीततद्वर्षयो राजदेयविभागे[27] प्रदिश्यमाने[28] राज्ञि चानाददाने सति तै[29]रुत्तरसभा मेलिता। तत्र सभ्यानां लक्षणमेवम्–

१२९. न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो यत्र न चास्ति [30]सत्यं सत्यं न तद्यच्छलकानुविद्धम्॥

इति निर्णयात् §सभ्यैर्गतवर्षतद्वर्षयोर्दानी[31] राज्ञा ग्राहिता[32]। ततस्तेन द्रव्येण कोशद्रव्येण च श्रीमूलराज[33] कुमारश्रेयसे नव्यत्रिपुरुषप्रासादः श्रीभीमेन कारितः।

८०) †अनेन श्रीपत्तने श्रीभीमेश्वरदेव–भट्टारिकाभीरुआणीप्रासादौ कारितौ†। सं० १०७७

---

1 AD निगृहीतायां वृष्टौ। 2 नास्तीदं पदं AD। 3 AD ०निर्वाहाक्षमो देशलोकः। 4 AD न सन्ति एते शब्दाः। 5 BP ०भूपतये। 6 नास्ति BP। 7 BP मूलराजः। 8 AD '०दानी०' नास्ति। 9 BP परिगत०। 10 AD अश्रुमिश्र०। 11 AD ०तुलया। 12 B ०तोषितः सन्; P परितोष्य तस्माद्। 13 BP आदेशे लब्धे। 14 P विना नास्त्यत्र। 15 D कुटुम्बिकानां। 16 'ययाचे ततो' स्थाने BP याचमानो। 17 BP नास्ति। 18 D भूयोऽप्यर्थये०; B ०अभ्यर्थयेः। 19 BP ०सूक्तार्थविचारबलेन। 20 BP लोभमूलः। 21 A 'भूयः' नास्ति। 22 D ०प्यप्रार्थ्यमानोऽपि। * एतद्न्तर्गतपाठस्थाने AD 'स्वस्थानमगमत्। ततश्च कौटुम्बिकैः' इत्येव पाठः। 23 नास्तीदं AD। 24 B स्वर्लोकमुपजगाम; P स्वर्गमुपतस्थौ। 25 BP आगामिनि वर्षे। 26 AD कर्षुकलोकैर्वर्षाबलात्। 'हर्षिभिः' पदं नास्ति। 27 AD ०देयभागविभागे। 28 AD प्रदिश्य०। 29 'तैः' स्थाने 'ताभ्यां' BP। 30 BP न सत्यमस्ति। § एतच्चिह्नान्तर्गतपाठस्थाने BP आदर्शे 'सावधेयद्वयंद्रम्मदानीं मुक्तिं (तैः B) पार्थितं प्रादापयिता अपूर्वमानकोशद्रव्येण श्रीधर्मभूतः श्रीमूलराज०' एतादृशः पाठः। 31 D दानीं। 32 D राजा। 33 D ग्राहितः। † इयं पंक्तिः BP नास्ति।

प्रारभ्य वर्ष ४२, मास १०, दिन ९ राज्यं कृतम् । (B P आदर्शे-संवत् १०७८ पूर्वं श्रीभीमेन वर्ष ४२ राज्यमकारि ।)

८१) *श्रीउदयमतिनाम्न्या तद्राज्ञ्या [नरवाहनखंगारसुतया] श्रीपत्तने सहस्रलिङ्गसरोवराद-प्यतिशायिनी नव्या वापी कारिता ।

८२) अथ सं० ११२० चैत्रवदि ७ सोमे हस्तनक्षत्रे मीनलग्ने श्रीकर्णदेवस्य राज्याभिषेकः संजातः ।

८३) इतश्च शुभकेशिनामा कर्णाटराट् तुरगापहृतोऽटव्यां नीतः कुत्रापि पल्लववृक्षच्छायां सेव-मानः प्रत्यासन्ने दावपावके कृतज्ञतया विश्रामोपकारकारिणं तमेव तरुमजिहासुस्तेनैव सह तस्मिन् दहने प्राणनाहुतीचकार । ततस्तत्सूनुर्जयकेशिनामा तद्राज्ये सचिवैरभिषिक्तः । क्रमेण तत्सुता मयणल्लदेवी नाम्नी समजनि । सा च शिवभक्तैः सोमेश्वरनामनि गृहीतमात्र एवेति पूर्वभवमस्मा-र्षीत्–'यदहं प्राग्भवे ब्राह्मणी द्वादशमासोपवासान् कृत्वा प्रत्येकं द्वादशवस्तूनि तदुद्यापने दत्त्वा श्रीसोमेश्वरनमस्याकृते प्रस्थिता बाहुलोडनगरमागता, तत्करं दातुमक्षमाऽग्रतो गन्तुमलभ-माना तन्निर्वेदादहं "आगामिनि जन्मनि" अस्य करस्य मोचयित्री भूयासमि"ति कृतनिदाना विप-द्यात्र कुले जाते'ति पूर्वभवस्मृतिः । अथ बाहुलोडकरमोचनाय सा गूर्जरेश्वरं प्रवरं वरं कामय-माना तं वृत्तान्तं पित्रे निवेदयामास । अथ जयकेशिराजा तं व्यतिकरं ज्ञात्वा तेन श्रीकर्णः स्वप्रधानैः स्वसुताया मयणल्लदेव्या अङ्गीकारं याच्यते स्म । अथ श्रीकर्णे तस्याः कुरूपताश्रवणा-दुदासीने सति तस्मिन्नेव निर्बन्धपरां तामेव मयणल्लदेवीं पिता स्वयंवरां प्राहिणोत् । अथ श्री-कर्णनृपो गुप्तवृत्त्या स्वयमेव तां कुत्सितरूपां निरूप्य सर्वथा निरादर एव जातः । ततोऽष्टभिः सहचरीभिः सह नृपतिहत्याकृते मयणल्लदेवीं प्राणान् परिजिहीर्षुं मत्वा श्रीकर्णजनन्या उदय-मतिराज्ञ्या तासां विपदं द्रष्टुमक्षमया ताभिः सह प्राणसङ्कल्पश्चक्रे । यतः–

१३०. स्वापदि तथा महान्तो न यान्ति खेदं तथा परापत्सु । अचला निजोपहतिषु प्रकम्पते भूः परव्यसने ॥

इति । तदनन्तरं महोपप्लवमुपस्थितमवगम्य मातृभक्त्या तां परिणीय श्रीकर्णः पश्चाद्दृष्टिमात्रे-णापि न सम्भावयामास ।

८४) अन्यदा कस्यामप्यधमयोषिति साभिलाषं नृपं मुञ्जालमन्त्री कञ्चुकिना विज्ञाय तद्वेषधा-रिणीं मयणल्लदेवीमेव ऋतुस्नातां रहसि प्राहिणोत् । तामेव स्त्रियं जानता नृपतिना सप्रेममुग्ध-

मानायास्तस्या आधानं समजनि । तदा च तया सङ्केतज्ञापनाय नृपकरान्नामाङ्कितमङ्गुलीयकं निजाङ्गुल्यां न्यधायि । अथ प्रातस्तद्दुर्विलसितात् तद्वृत्तान्तमनवबुध्यमानाय प्राणपरित्यागोद्यताय नृपतये 'स्मार्तैस्तप्तताम्रमयपुत्तलिकालिङ्गनमिति निवेदिते प्रायश्चित्ताय तथैव चिकीर्षवे स मन्त्री यथावद् अवदत्[4] ।

(अत्र P प्रतौ निम्नलिखिताः श्लोका विद्यन्ते–)

[८५] गुरुणा विक्रमेणायं बभूव पितृसन्निभः । आकारेण तु रम्येण भूपोऽभूदात्मभूसदृक् ॥
[८६] विना कर्णेन तेन स्त्रीनेत्राणां न रतिः क्वचित् । इतीव जज्ञिरे तेषामनुकर्णं प्रवृत्तयः ॥
[८७] तत्कर्णार्जुनयोर्वैरं पूर्वं कर्णः स्मरन्निव । अर्जुनं गमयामास यशो देशान्तराणि यः ॥
[८८] अभिरामगुणग्रामो रामो दशरथादिव । सूनुः श्रीजयसिंहोऽस्माज्जायते स जगज्जयी ॥

८५) सुलग्ने तस्य जातस्य सूनोर्नृपतिर्जयसिंह इति नाम निर्ममे । स बालस्त्रिवार्षिकः सवयोभिः कुमारैः रममाणः सिंहासनमलंचक्रे । तद् व्यवहारविरुद्धं[6] विमृशता नृपेण पृष्टैः[7] नैमित्तिकैस्तस्मिन्नेवाभ्युदयिके लग्ने निवेदिते राजा तदैव तस्य सूनो राज्याभिषेकं[8] चकार ।

८६) [1]सं० ११५० वर्षे पौषवद ३ शनौ श्रवणनक्षत्रे वृषलग्ने श्रीसिद्धराजस्य पट्टाभिषेकः[†] ।

८७) स्वयं तु, आशापल्लीनिवासिनमाशाभिधानं भिल्लमभिषेणयन् भैरवदेव्याः शकुने जाते तत्र कोछरबाभिधानदेव्याः प्रासादं कारयित्वा, षड्लक्षाधिपं भिल्लं विजित्य तत्र जयन्तीं देवीं प्रासादे स्थापयित्वा कर्णेश्वरदेवतायतनं तथा कर्णसागरतडागालंकृतां[8] कर्णावतीपुरं निवेश्य स्वयं तत्र राज्यं चकार[9] । श्रीपत्तने तेन राज्ञा श्रीकर्णमेरुः प्रासादः कारितः ।

[§]सं० ११२० चैत्रसुदि ७ प्रारभ्य सं० ११५० पौषवदि २ यावत् वर्ष २९, मास ८, दिन २१[10] अनेन राज्ञा राज्यं कृतम्[§] ।

८८) अथ दिवं गते श्रीकर्णे श्रीमदुदयमतिदेव्या भ्राता मदनपालोऽसमञ्जसवृत्त्या वर्तते । तेन लीलाभिधानो राजवैद्यो दैवतवरलब्धप्रसादः सकलनागरिकलोकैस्तत्कलाहृतहृदयैः[11] काञ्चनदानपूजयाभ्यर्च्यमानः कदाचित्तेन[12] निजसौधे समानीय[13] कृतके[14] शरीरामये नाडीदर्शनात्पथ्यसमतां निवेदयन्निदमूचे ([15]तेन मदनपालेन बभाषे) 'तदेव नास्तीति । *ततस्त्वं मया रोगप्रतीकाराय नाकारितः, किं तु पथ्यदानेन बुभुक्षाप्रतीकारार्थमेव* । ततो द्वात्रिंशत्सहस्राण्युपनये[16]-स्वपुरस्थो तेन "पर्वदिनलक्षणेति निर्मापयेत्यभिग्रहमग्रहीत्–'यदतः परं प्रतीकारनिमित्तं नृपतेः सौधमप्राप्य नान्यत्र गन्तव्यमि'ति । ततः परमातुराणां प्रश्नश्रवणावलोकनान्निदानचिकित्सितं कुर्वाणः केनापि मायाविना कृतकामयचिकित्सितकौशलं बुभुत्सुना वृषभमूत्रश्रवणे दर्शिते सम्यक् तदवगम्य शिरोधूननपूर्वकं 'वृषभः[17]' स बहुस्वादनेन मोदितं इत्यसौ सत्वरमेव तैलनाली दीय-

1 BP नास्ति । 2 AD । 3 AD ०दशो मूर्तिः । 4 'स्मार्तै.' इत्यस्य स्थाने AD 'स्मार्तोक्तप्रायश्चित्तं यमपृष्ठ' ... । 5 D ... P ... । १–१ एतद्वाक्यं AD नास्ति । 6 P तद्विरुद्धं विमृशन् । १–१ ०नैमित्तिकैः BP । * इदं पद्यं BP नास्ति । 7 D पृ० । 8 AD ०तडागालङ्कृतं चकार । 9 AD चक्रे । 10 A २१ । ‡ इदं सं०. BP न विद्यते । 11 AD ०आवर्जितैः । 12 AD कदाचार्यं (D 'चार्य' नास्ति) समाहूतविशेषः । 13 AD ... नास्ति । 14 AD कृतकामय० । 15 BP इतिः । § चिह्नं A आदर्शे इदं वाक्यं दृश्यते । * ... BP नास्ति । 16 BP ... । 17 नास्ति 'तेन ...' BP । 18 A ... । 19 ... । 20 D ... , 21 ...

ताम्, नोचेद्विपत्स्यते' इति तच्चित्ते चमत्कारमारोपयामास[1]। अन्यदा[2] राज्ञा निजग्रीवाबाधा-प्रतीकारं पृष्टः। 'पलद्वयप्रमाणमृगमदपङ्कलेपनेन अर्त्तिरुपशाम्यती'ति व्याहृते तथाकृते ग्रीवा सज्जीभूता। ततो नृपसुखासनवाहिना पामरेण नरेण ग्रीवाबाधाप्रतीकारं पृष्टः। 'घृष्टकरीरमूल-रसेन तन्मृत्तिकासहितेन लेपं विधेही'त्यभिदधे। ततो राज्ञा किमेतदिति पृष्टे 'देशकालौ बलं शरीरप्रकृतिं च विमृश्यायुर्वेदविदा चिकित्सा क्रियत' इति विज्ञपयति स्म। अन्यदा धूर्तैः[3] कैश्चिदेकसंमत्या पृथक् पृथक् युगलीभूय तत्प्रथमयुगलिकया *विपणिमार्गे 'किमद्य यूयं वपुष्यपटव' इति पृष्टः। द्वितीययुगलिकया श्रीमुञ्जालस्वामिप्रासादसोपाने पृष्टः। तृतीययुगलिकया तु राजद्वारे, चतुर्थयुगलिकया द्वारतोरणे तथैव। ततो भूयो भूयः पृच्छोत्पन्नेन शङ्कादूषणेन* तत्कालोत्पन्नमाहेन्द्रज्वरस्त्रयोदशे दिने विपेदे स वैद्यः।

॥ इति ठ०[11] लीलावैद्यप्रबन्धः॥

८९) †अथ सान्तूनामा मन्त्री अन्यायकारिणं तं मदनपालं कालमिव जिघांसुः कदाचित्कर्णाङ्गजं गजेऽधिरोप्य राजपाटिकाव्याजेन तद्गृहे नीत्वा पत्तिभिस्तं व्यापादयामास†।

९०) अथ कश्चिन्मरुमण्डलवास्तव्यः श्रीमालवंश्य[12] उदाभिधानो वणिक् प्राघृट्काले प्राज्याज्यक्रयाय निशीथे व्रजन् कर्मकरैरेकस्मात्केदारादपरस्मिन् जलैः[13] पूर्यमाणे तान् 'के यूयमि'ति पप्रच्छ। तैः 'वयममुकस्य कामुका' इत्युक्ते[15] 'ममापि क्वापि सन्ती'ति पृच्छन्[14], तैः 'कर्णावत्यां सन्ती'त्यभिहिते स सकुटुम्बस्तत्र गतः[16]। वायटीयजिनायतने विधिवद्देवान्नमस्कुर्वन् कयापि लाछिनाह्वया छिम्पिकया श्राविकया साधर्मिकत्वाद्ववन्दे। तया 'भवान् कस्यातिथिरि'त्युदीरितः, 'वैदेशिकोऽहमिति भवत्या एवातिथिरि'ति तद्वाक्ये[19] श्रुते तं तया सह नीत्वा कस्यापि वणिजो गृहे कारितान्नपाकेन भोजयित्वा निर्मापितकायमाने[20] निजतलके तं[21] निवास्य कालक्रमेण तत्र[22] सम्पन्नसम्पद् इष्टिकाचितं गृहं चिकीर्षुः खातावसरे निरवधिं शेवधिमधिगम्य तामेव स्त्रियमाहूय समर्पयन् तया निषिद्धः, तत्प्रभावेण ततः प्रभृति स उदयनमन्त्रीति[23] नाम्ना पप्रथे‡।

९१) *तेन कर्णावत्यामतीतानागतवर्त्तमानचतुर्विंशतिजिनसमलङ्कृतः[24] श्रीउदनविहारः कारितः।

९२) तस्यापरमातृकाश्चत्वारः सुताः[25] चाहडदेव-आम्बड-बाहड-सोलाक[26]-नामानोऽभूवन्[27]।

---

1 BP ०मारोपयन्। 2 BP कदाचित्। 3 P ०शीर्षबाधा। 4 D 'शिरोऽर्तिः'। १-१ एतदन्तर्गतपाठस्थाने BP 'उपचारे क्रियमाणे' इत्येव पाठः। 5 D शिरोबाधा०; BP 'बाधां' इत्येव। 6 D वृद्धक०; A नास्ति। 7 BP ०भिधाय। ‖ नास्ति BP। 9 BP चिकित्सितं। 10 A विज्ञ० २-२ एतद्वाक्यस्थाने BP 'भूयो राज्ञा उपलब्धप्रतीकारे' एतद्वाक्यम्। * एतदन्तर्गतस्य पाठस्य स्थाने BP 'प्रणा०पयत्। ३-३ एतत्पाठस्थाने BP 'विज्ञप्य गृहं याति तन्नगरनिवासिभिः धूर्तैः'। * एतदन्तर्गतस्य पाठस्य स्थाने BP 'प्रणा०पयत्। ३-३ एतत्पाठस्थाने BP 'विज्ञप्य गृहं याति तन्नगरनिवासिभिः धूर्तैः'। द्वितीययुगलिकया द्वारतोरणे, तृतीययुगलिकया विपणिमार्गे, चतुर्थयुगलिकया श्रीमुञ्जालप्रासादे भूयोभूयस्तदेव पृच्छ्यमानः शङ्काविषदोषेणैव' एतादृशः पाठः प्राप्यते। 11 DP 'ठ०' नास्ति। † एतत्पंक्तिस्थाने AD 'अथ सान्तुमंत्रिणा उपायाद्राजपाटिकाव्याजेन श्रीकर्णाङ्गजेनान्यायकारी मदनपालो व्यापादितः।' इत्येषा पंक्तिः। 12 D देश्यः। 13 BP पूर्यमाणोऽम्भोभिः। 14 BP पृच्छन्। 15 BP इत्यभिहिते। 16 BP गत्वा। 17 BP नास्त्येतत्पदं। 18 A स्वां घन्दे। 19 'तद्वाक्ये श्रुते तं' स्थाने AD 'यदन्' इत्येव पदम्। 20 नास्त्येतत्पदं AD। 21 'तं निवास्य' स्थाने AD 'क्वापि गृहे निवासितः'। 22 AD नास्ति। 23 BP उदयननामा मंत्री। ‡ इतोऽग्रे Dd आदर्शे निम्नगतं उल्लिखितं प्राप्यते–

'कृतप्रयत्नानपि नैव कांश्चन स्वयं ददानानपि सेवते परान्।
द्वयेऽपि नास्ति द्वितयेऽपि विद्यते श्रियः प्रचारो न विचारगोचरः॥'

24 BP ०मतीत-वर्तमान-भविष्यत्०। 25 BP पुत्राः। 26 P सोढक; B सोल। 27 नास्ति P।

९३) अथान्यस्मिन्नवसरे सान्तूनामा महामात्यः करेणुस्कन्धाधिरूढो राजपाटिकायां व्रजन् व्याघुट्तः स्वयं कारितसान्तूवसहिकायां देवनमश्चिकीर्षया तत्र प्रविशन् वारवेश्यास्कन्धन्यस्तहस्तं कमपि चैत्यवासिनं सितवसनं ददर्श। ततो गजादवरुह्य कृतोत्तरासङ्गः पञ्चाङ्गप्रणामेन तं गौतममिव[1] नमश्चक्रे[2]। तत्र क्षणं स्थित्वा भूयस्तं प्रणम्य प्रतस्थे। ततः[3] स लज्जयाऽधोवदनः पातालं प्रविविक्षुरिव तत्कालं सर्वमेव परिहृत्य मलधारिश्रीहेमसूरीणां समीपे[4] उपसम्पदमादाय संवेगरसपरिपूर्णः श्रीशत्रुञ्जये गत्वा द्वादशवर्षाणि[5] तपस्तेपे*। कदाचित्स मन्त्री श्रीशत्रुञ्जये देवपादानां नमस्करणायोपगतोऽदृष्टपूर्वमिव तं मुनिं प्रणम्य तच्चरित्रविचित्रितमनास्तद्गुरुकुलादि पप्रच्छ। 'तत्त्वतो भवानेव गुरुरि'ति' तेनोक्ते कर्णौ पाणिभ्यां पिधाय मैवं मादिशेत्यज्ञातवृत्त्यैवं विज्ञपयंस्तेन प्रोचे[7]–

१३१. जो जेण सुद्धधम्मम्मि ठाविओ संजएण गिहिणा वा। सो चेव तस्स जायइ धम्मगुरू धम्मदाणाओ॥

इति तस्मै मूलवृत्तान्तं निवेद्य तस्य दृढधर्मतां निर्ममे।

॥ इति मन्त्रिसान्तू-दृढधर्मताप्रबन्धः ॥

९४) अथानन्तरं †श्रीमयणल्लदेव्या जातिस्मरणात्पूर्वभववृत्तान्ते श्रीसिद्धराजस्य निवेदिते† श्रीमयणल्लदेवी[8] श्रीसोमनाथयोग्यां सपादकोटिमूल्यां हेममयीं पूजां संहादाय यात्रायां[9] प्रस्थिता बाहुलोडनगरं सम्प्राप्ता। पञ्चकुलेन कदर्थ्यमानेषु कार्पटिकेषु राजदेयविभागस्याप्राप्त्या सबाष्पं पश्चान्निवर्तमानेषु मयणल्लदेवी हृदयादर्शसंक्रान्ततद्बाधा स्वयमेव पश्चाद्व्याघुटन्ती अन्तराऽन्तरीभूतेन श्रीसिद्धराजेन विज्ञप्ता–'स्वामिनि! अलममुना सम्भ्रमेण। कुतो हेतोः पश्चान्निवर्त्यते?' इति राज्ञोक्ते[11] 'यदैव सर्वथाऽयं करमोक्षो भवति तदैवाहं श्रीसोमेश्वरं प्रणमामि नान्यथेति। किं त्वातःपरमन्ननीरयोर्नियमश्च'। इति श्रुत्वा राज्ञा पञ्चकुलमाकार्य तत्पट्टस्याङ्के द्वासप्ततिलक्षानुत्पद्यमानान् विमृश्य तं पट्टकं विदार्य मातुः श्रेयसे तं[12] करं मुक्त्वा करे जलचुलुकं मुञ्चति स्म। ततः[13] श्रीसोमेश्वरं गत्वा तया सुवर्णपूजया देवमभ्यर्च्य तुलापुरुषगजदानादीनि महादानानि[14] दत्त्वा–'मत्सदृशी कापि नाभून्न भविते'ति दर्पाध्माता निशि[15] निर्भरं प्रसुप्ता[16]। तपस्विवेषधारिणा तेनैव देवेन जगदे–'इहैव मदीयदेवकुलमध्ये काचित्कार्पटिकानितम्बिनी यात्रायै आया-

---

1 AD नस्त्र॰। 2 नास्ति AD। 3 AD चकार। 4 BP तस्तु। 5 BP पार्श्वे। 6 AD संपूर्णा। 7 A अन्योन्यतरं। * इतोऽग्रे D पुस्तके निम्नगताः पंचश्लोकाः [illegible] "किं च तेनाप्ये सत्कानाः प्रतिबोधिताः। मुनिश्चिन्तयति–

"रे रे चित्त कथं भ्रातः प्रधावसि पिशाचवत्। अभिन्नं पश्य चात्मानं रागत्यागात्सुखी भव॥

[illegible] मनो धावसि किं वृथा। सुधासमस्तिदं सहसरः किं नावगाहसे॥"

8 BP तस्तत्र। 9 BP इत्युक्ते। 10 AD संपूर्णे। 11 BP [illegible]। † एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः A प्रतौ न लभ्यते। 12 BP [illegible]। 13 AD 'नाह' नास्ति। 14 'यात्रायां प्रस्थिता' नास्ति BP। 15 BP 'पश्चात्' नास्ति। 16 D1 [illegible]। 17 Po [illegible], P [illegible]। 18 P [illegible]। 19 BP राज्ञाभिहिते। 1-1 [illegible] AD 'प्रणमामि अतः [च A] सुखानि नान्यथेति।' इत्येव पाठः। 20 D 'तं' नास्ति। 21 BP तस्तु। 22 P [illegible]। 23 A श्रीसोमेश्वराम॰। 24 D 'गत्वा' नास्ति। 25 D दानानि; A नास्ति। § एतदनन्तरं D पुस्तके [illegible] श्लोका लिख्यन्ते, ये [illegible] परिशिष्टे [illegible]–

[illegible] मा तुल्योऽपि [illegible]। [illegible]॥

[illegible]॥

[illegible]॥

26 D [illegible]। 27 D [illegible]। 28 AD सुप्ता।

तास्ति । तस्याः सुकृतं याचनीयं त्वया' इत्थमादिश्य तिरोहिते तस्मिन् राजपुरुषैर्विलोक्य[1] समानीता । तस्मिन्पुण्ये याचितेऽप्यददाना कथमपि 'यात्रायां किं व्ययीकृतमि'ति पृष्टा[2] सती सा प्राह–'अहं[3] भिक्षावृत्त्या योजनशतं[4] देशान्तरमतिक्रम्य ह्यस्तने[5] दिवसे[6] कृततीर्थोपवासा पारणकदिने[7] कस्यापि सुकृतिनः अकृतपुण्यां[8] पिण्याकमासाद्य, तत्खण्डेन श्रीसोमेश्वरमभ्यर्च्य, तदंशमतिथये[9] दत्त्वा स्वयं पारणकमकार्षम् । भवती पुण्यवती, यस्याः पितृभ्रातरौ पतिसुतौ च राजानः, या[10] त्वं बाहुलोडकरं[11] द्वासप्ततिलक्षान् मोचयित्वा सपादकोटिमूल्यया पूजया[12] *अगण्यपुण्यमर्जयन्ती मदीयपुण्ये कृशेऽपि कथं लुब्धासि ?* । यदि[13] न कुप्यसि तदा किञ्चिद्ब्रविमि । तत्त्वतस्तव पुण्यान्मदीयं[14] पुण्यं महीतले[15] महीयः । यतः–

१३२. सम्पत्तौ नियमः शक्तौ सहनं यौवने व्रतम् । दारिद्र्ये दानमत्यल्पमपि लाभाय भूयसे ॥

इति युक्ति[16]युक्तेन वाक्येन तस्या गर्वं निराचकार[17-18] ।

९५) सिद्धराजस्तु समुद्रोपकण्ठवर्ती एकेन चारणेन–

१३३. को जाणइ तुह नाह चीतु[19] तुहालउं[20] चक्कवइ । लहु[21] लंकह लेवाह मग्गु निहालइ करणउत्तु ॥

*इति स्तूयमाने, द्वितीयेन चारणेनोक्तम्[22]–

१३४. धाईं[23] धीअइ पाय[24] जेसल जलनिहि ताहिला । तइं जीतौं[25] सवि राय एक्कु[26] विभिषणु मिल्हि म हु ॥

९६) एवं तत्र यात्रायां व्यापृते[27] राज्ञि, ¹छलान्वेषिणा यशोवर्मणा मालवकभूपेन गूर्जरदेशे¹ उपद्रूयमाणे सान्तूसचिवेन 'त्वं कथं निवर्त्तसे ?' इति प्रोक्तः[28], स[29] राजा–'यदि त्वं स्वस्वामिनः सोमेश्वरदेवयात्रायाः पुण्यं ददासी'त्युदीरितस्तच्चरणौ प्रक्षाल्य तत्करतले तत्पुण्यदाननिदानं जलचुलुकं[30] निक्षिप्य तं [31]राजानं निवर्त्तयामास । ²श्रीसिद्धराजः पत्तनमुपेत्य सान्तूमालविकनृपयोस्तं वृत्तान्तमवबुध्य क्रुद्धः² नृपं मन्त्री एवमवादीत्–'स्वामिन्[32] ! यदि[33] मया दत्तं तव सुकृतं याति, तदा[34] तस्य सुकृतमन्येषामपि पुण्यवतां सुकृतं[35] मया भवते प्रदत्तमेव[36] । अथापरं[37] येन केनाप्युपायेन परचक्रं स्वदेशे प्रविशद्रक्षणीय[38]मेवे'ति एवं[39] वदता तेन नृपतिरनुनीतः । तत[40]स्तेनैवामर्षेण मालवमण्डलं प्रति[41] प्रतिष्ठासुः सचिवान् शिल्पिनश्च सहस्रलिङ्गधर्मस्थानकर्मस्थाये नियोज्य, त्वरितगत्या तस्मिन्निष्पद्यमाने नृपतिः प्रयाणकमकरोत् । तत्र जयकारपूर्वकं द्वादशवार्षिके विग्रहे संजायमाने ³सति कथंचित् धारादुर्गभङ्गं कर्तुमप्रभूष्णुः³ 'अद्य मया धाराभङ्गानन्तरं भोक्तव्यमि'ति

1 °र्विलोक्य । 2 P याच्यमाने । 3 BP भवद्युक्ता । 4 BP मया । 5 BP °शतानि; D शतान्तर° । 6 AD ह्यस्तन° । 7 P दिने । 8 D नास्ति 'अकृतपुण्या' । 9 A °मप्यतिथये । 10 'या त्वं' नास्ति BP । 11 'बाहुलोडकरं' इत्येव AD । 12 BP सपर्यया । * एतत्पाठस्थाने AD 'श्रीसोमेश्वरं पूजितवती सा कथं मदीयपुण्यलवे(ऽ)प्यस्ति ।' एतादृशः पाठः । 13 AD परं यदि । 14 BP मम । 15 P नास्ति । 16 'युक्ति' नास्ति D । 17–18 सर्वंकषं गर्वं विसस्मार BP । 19 D चीत । 20 D तु हालेइ । 21 D लहु । * अस्याः पंक्त्याः स्थाने D पुस्तके 'इत्यादि स्तूयमानोऽभवत् ।' इत्येव वाक्यं विद्यते । अग्रिमा गाथापि तत्र नास्ति । 22 AB 'चैवं' इत्येव । 23 A धाईउ । 24 A पाइ । 25 BP लईया । 26 P एक; B इक्कु । 27 AD व्यापृते । १–१ एतदङ्कान्तर्गतपाठस्थाने BP 'मालवकराजा छलान्वेषिणा गूर्जरमण्डले' एष पाठः । 28 BP विज्ञप्तः । 29 BP नास्ति 'स राजा' । 30 AP °चुलुकं । 31 'तं राजानं' स्थाने BP 'मालवराजानं यशोवर्माणं' । २–२ एतदङ्कान्तर्गतपाठस्थाने A प्रतौ 'ततः श्रीपत्तनपतं श्रीसिद्धराजं तद्वृत्तान्तावगमनेन क्रुद्धं'; D पुस्तके च 'ततः श्रीसिद्धराजस्तद्वृत्तान्तोपगमनेन क्रुद्धस्तं' एतादृशः पाठः प्राप्यते । 32 BP नास्ति । 33 AD यद् । 34 AD ततः । 35 एते शब्दाः BP न सन्ति । 36 P 'एव' नास्ति । 37 AD नास्ति 'अथापरं' । 38 BP °निवारणीय° । 39 'एवं' न AD । 40 BP 'ततः' नास्ति । 41 D 'प्रति' नास्ति । 42 P एतत्पदं नास्ति; D स्वत्रय° । ३–३ एतदङ्कान्तर्गतं वाक्यं न विद्यते AD ।

कृतप्रतिज्ञो दिनान्तेऽपि तत्कर्तुमक्षमतया सचिवैः काणिक्यां धारायां भज्यमानायां पत्तिभिः परमारराजपुत्रे विपद्यमाने–इत्थं प्रपञ्चात् नृपः प्रतिज्ञामापूर्य अकृतकृत्यतया पश्चादुन्याघुटितुमिच्छुर्मुञ्जालसचिवं ज्ञापयामास । तेनापि त्रिकचतुष्कचत्वरप्रासादेषु निजपुरुषान्नियोज्य धारादुर्गभङ्गवार्त्तायां क्रियमाणायां तद्वासिना केनापि पुरुषेण 'दक्षिणप्रतोल्यां यदि परबलं ढौकते तदैव दुर्गभङ्गो नान्यथेति' तद्वाचमाकर्ण्य स विज्ञप्तः सचिवस्तं व्यतिकरं राज्ञे गुप्तविज्ञप्तिकया निवेदयामास । राज्ञापि तद्वृत्तान्तवेदिना तत्रैव ढौकिते सैन्ये दुर्गमं 'दुर्गं विमृश्य यशःपटहनाम्नि बलवति दन्तावले समधिरूढः, सामलनाम्ना आरोहकेण पश्चाद्भागेन, त्रिपोलिकपाटद्वये आहन्यमाने लोहमय्यामर्गलायां भज्यमानायां बलाधिकतयान्तस्त्रुटितात्तस्माङ्गजात्कर्णाङ्कजमुत्तार्य स्वयं यावदवरोहति तावत्स गजः पृथिव्यां पपात । स 'गजः सुभटतया तदा' विपद्य वडसरग्रामे स्वयशोधवल एव यशोधवलनामा विनायकरूपेणावततार ।

१३५. सिद्धिंस्तनशैलतटीपरिणतिदलितद्वितीयदन्तैं इव । विघ्नाणो रदमेकं गजवदनः सृजतु वः श्रेयः ॥

इति तदीया स्तुतिः । इत्थं दुर्गभङ्गे सूत्रिते सति समराधिरूढं यशोवर्माणं पङ्क्तिर्गुणैरावध्य[13] तत्र निजामाज्ञां जगन्मान्यां दापयित्वा यशोवर्मरूपया प्रत्यक्षयशःपताकया रोचिष्णुः श्रीपत्तनं प्राप ।

[८९] *क्षुण्णाः क्षोणिभृतामनेन कटका भग्नास्त्रधारा ततः कुण्ठः सिद्धपतेः कृपाण इति रे मा मंस्त क्षत्रियाः ।
आरूढप्रबलप्रतापदहनः सम्प्राप्तधाराश्चिरात् पीत्वा मालवयोषिदश्रुसलिलं हन्तायमेधिष्यते ॥

[९०] *क्षितिधव भवदीयैः क्षीरधाराबलक्षैः रिपुविजययशोभिः श्वेत एवासिदण्डः ।
किमुत कवलितैस्तैः कज्जलैर्मालवीनां परिणतमहिमानं कालिमानं तनोति ॥

९७) "प्रतिदिनं सर्वदर्शनेष्वाशीर्वाददानायाहूयमानेषु यथावसरमाकारिता जैनाचार्याः श्रीहेमचन्द्रमुख्याः" श्रीसिद्धराजमासाद्य नृपेण दुकूलदानादिभिरावर्जितास्तैः सर्वैरप्यप्रतिमप्रतिभाभिरामैर्द्विधापि पुरस्कृतो नृपतये श्रीहेमचन्द्रसूरिरित्थमाशिषं पपाठ–

१३६. भूमिं कामगवि ! स्वगोमयरसैरासिञ्च रत्नाकराः ! मुक्तास्वस्तिकमातनुध्वमुडुप ! त्वं पूर्णकुम्भी भव ।
धृत्वा कल्पतरोर्दलानि सरलैर्दिग्वारणाः ! तोरणान्याधत्त स्वकरैर्विजित्य जगतीं नन्वेति सिद्धाधिपः ॥

अस्मिन्काव्ये निःप्रपञ्चे प्रपञ्च्यमाने तद्वचनचातुरीचमत्कृतचेता नृपस्तं प्रशंसन्, कैश्चिदसहिष्णुभिः–'अस्मच्छास्त्राध्ययनबलादेतेषां विद्वत्ता' इत्यभिहिते राज्ञा पृष्टाः श्रीहेमचन्द्राचार्याः–

* एतचिह्नान्तर्गतपाठस्थाने D पुस्तके एतादृशः पाठो विद्यते– 'सचिवैः पत्तिभिः परमारराजपुत्रैः पञ्चशतीभिर्विपद्यमानैः राज्ञः प्रतिज्ञां दिनान्तेऽपि 'पूरयितुमक्षमैः कणिक्कामयधारामध्येव पूरितायां राजा–' [11][12]एतान् शब्दान् विहाय A आदर्शेऽपि एष एव पाठः । 1 AD 'दक्षिण' नास्ति । 2 ABD तत्र । 3 A दुर्गमन्तर्दुर्गतं, B दुर्गमदुर्गमं; D दुर्गमन्तर्दुर्गम । 4 AD ०मध्यार्गलायां । 5 AD 'तस्मात्' नास्ति । 6 P नास्ति । 7 D 'स गजः' नास्ति । 8 P विहाय 'तदा' नास्ति । 9 AD गिरेः । 10 AB परिणिति; P परिणत । 11 P रदम । 12 P नास्ति वाक्यमिदं । 13 BP निवध्य । * एतत्पद्यद्वयं केवलं P प्रतौ लभ्यते । 14 P इति प्रति० । 15 D ०माहूतेषु । 16 B ०चन्द्रसूरिमुख्याः । 17 AD नृपतयेऽशिषं श्रीहेमचन्द्रः ।

§पुरा श्रीजिनेन श्रीमन्महावीरेणेन्द्रस्य पुरतः शैशवे यद्व्याख्यातं तज्जैनेन्द्रव्याकरणमधीयामहे वयमि'ति वाक्यानन्तरम्, 'इमां पुराणवार्त्तामपहायास्माकमेव सन्निहितं कमपि व्याकरण-कर्त्तारं ब्रूत' इति तत्पिशुनवाक्यादनु नृपं प्राहुः[4]–'यदि श्रीसिद्धराजः सहायीभवति तदा कति-पयैरेव दिनैः पञ्चाङ्गमपि नूतनं व्याकरणं रचयामः।' अथ नृपेण 'प्रतिपन्नमिदं निर्वहणीयमि'त्य-भिधाय तद्विसृष्टाः सूरयः स्वं स्थानं ययुः। नृपेण तु 'यशोवर्मराज्ञः करे निःप्रतीकारां क्षुरीं समर्प्य तदग्रासने वयं गजाधिरूढाः पुरमध्ये प्रवेशं करिष्यामः।' इति राज्ञः प्रतिश्रवमाकर्ण्य मुञ्जालनाम्ना[10] मन्त्रिणा प्रधानवृत्तिं मुञ्चता किमिति राज्ञा निर्बन्धपृष्टेन–

१३७. मा स्म सन्धिं विजानन्तु मा स्म जानन्तु विग्रहम्। आख्यातं[11] यदि शृण्वन्ति भूपास्तेनैव पण्डिताः॥

इति नीतिशास्त्रोपदेशात्[12]स्वबुद्ध्यैव स्वामिना प्रतिज्ञातोऽयमर्थः। सर्वथाऽऽयतौ न हित' [13]इत्युक्तम्। नृपस्तु[14] प्रतिज्ञाभङ्गभीरुः[15] 'वरमसून् परिहरामि न तु विश्वविदितं प्रतिश्रुतमि'ति नृपेणोक्ते[16] मन्त्री दारुमयीं क्षुरिकां विधाय पाण्डुवर्ण[18]संजरसेन तां[20] पिहितां पृष्ठासनस्थस्य यशोवर्मणः करे समर्प्य तदग्रासनस्थो नृपतिः श्रीसिद्धराजः परमोत्सवेन श्रीमदणहिल्लपुरं[21] प्रविवेश। प्रावेशिकमङ्गल-व्याकुलतानन्तरं नृपेण स्मारिते व्याकरणकरणवृत्तान्ते, बहुभ्यो देशेभ्यस्तत्तद्वेदिभिः[24] पण्डितैः समं सर्वाणि व्याकरणानि पत्तने समानीय श्रीहेमचन्द्राचार्यैः श्रीसिद्धहेमाभिधानं अभिनवं पञ्चाङ्गमपि व्याकरणं सपादलक्षग्रन्थप्रमाणं संवत्सरेण रचयांचक्रे। राजवाह्यकुम्भिकुम्भे तत्पु-

---

§ अत्र Dd आदर्शे निम्नलिखितः समधिकः पाठ उपलभ्यते—'कैश्चिदसहिष्णुभिर्भ मेने। हेमचन्द्रनामा शिष्यः कदाचित्सवल्गुञ्चितशिरा जलविहरणाय व्रजन् गजभयात्सौधभित्तिस्थितो गवाक्षस्थेमालिगपुरोहितेन सारिणा पराभूतः। गुरवो विज्ञप्ताः। तैरुक्तो 'मिथ्या दुःकृतं देहि'। तद्दुःखेन नि:सृतोऽन्यगच्छीयदेवचन्द्रपद्माकराभ्यां सह श्रीकाश्मीरं प्रति। मार्गे भाडोलग्रामे सहमोपवासे श्रीसरस्वती प्रसन्ना जाता। निजमूर्तिर्दर्शिता। मित्रयोर्मिथेदिति श्लोकसप्तशत्या प्रामो वर्णितः। मित्रद्वयस्य कार्यसिद्धिहेतोः स्तम्भतीर्थे प्रविशतः केनापि देशान्तरिणाकार्ये विद्या समर्पिता। इत्युक्तं च–'मम मरणसमये मम शवोपरि त्रिभिर्नाभिमण्डले मन्त्रः स्मरणीयः। शवो वरं दास्यति'। एवं कृते श्मशाने मध्यरात्रौ शवेनोत्थाय वरो दत्तः। श्रीहेमचन्द्रेण राजप्रबोधो याचितः। देवचन्द्रेण हस्तसिद्धेराकृष्टिविद्या। पद्माकरेण पाण्डित्यं। अत्रान्तरे कृतकृत्यो हेमचन्द्रो वलितः। कालभैरवीग्राममध्ये चण्डिकाप्रासादे विश्रान्तस्तत्र रघुभैरवानन्दः शिष्यपञ्चशतीवृतः समेत्य, 'रे रे चण्डे प्रचण्डे मह्यं मोदकान् देही' ति भणित्वा सुवर्णमयकर्परमग्रे मुक्तं। देव्या मोदकैर्भृतं। तेन सर्वेषां तेऽर्पिताः। हेमचन्द्रस्यापि 'हे शिष्य त्वमपि गृहाणे'त्युक्ते तेन तस्यापि करौ स्तम्भयित्वोक्तं 'यद्यस्ति सत्त्वं तदा त्वं भक्षयेथाः' एवमुक्ते चरणयोः पतितः। ततः पत्तने आयातं श्रीजयसिंहदेवः सन्मुखमेत्य समानीय हेमचन्द्रं गजाधिरूढं प्रवेश्य च पुरोहिततिरस्कृतं सूरिं, राज्ञा गुरव उपरोध्य हेमचन्द्रस्य पदस्थापना कारिता। श्रीहेमचन्द्रसूरयोऽष्टम्यां चतुर्दश्यां च श्रीजयदेवभवनं प्रयान्ति। पौषधागारे श्रीस्थूलिभद्रचरितं वाचयन्तः पुरोहितेन राज्ञोऽग्रे उपहसिताः–'महाराज! कोऽयमसत्प्रलापः? सर्वरसभोजने पूर्वपरिचितवेश्यागृहे कामनिग्रहः। परं किं क्रियते भवद्वल्लभाः।' राज्ञोक्तं–'आचार्या अत्र समेष्यन्ति तदा वक्तव्यं परोक्षे न।' सूरिष्वागतेषु राज्ञोक्तं–'किं किं वाचयन्तो वर्तध्वे यूयं?' सूरिभिः समग्रमपि संक्षेपतः स्थूलिभद्रचरितं कथितं। आलिगेनोक्तं–'महाराज!

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो ये चाम्बुपत्राशिनस्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
आहारं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवास्तेषामिन्द्रियनिग्रहः कथमहो दम्भः समालोक्यताम्॥

गुरुभिरुक्तं–'सिंहो बलीयो द्विरद' इत्यादि। आलिगेनोक्तं–'अस्माकमेव शास्त्राणि पठित्वास्माकमेव पतयः संजाताः।' गुरुभिरुक्तं–'जैनेन्द्रव्याकरणं किं भवदीयं यत्पुरा श्रीजिनेन...'

1 AD ०जैनव्या०। 2 AD तद्वाक्या०। 3 D सन्निहितं भूपं। 4 D ते प्राहुः। 5 P परं प्राहुः। 6 AD ततो यशो०। 7 BP नास्ति। 8 BP नास्ति। 9 A प्रसाद०। 10 'नाम्ना' नास्ति AD। 11 A अवधार्य। 12 BP ०देशेन स्वामिना। 13 BP नासीदं पदं। 14–15 एतत्पदद्वयस्थाने AD 'ततो' इत्येव। 16 D प्रतिश्रय०। 17 BP नृपवचनात्। 18 B निर्णीय; AD नास्ति। 19 P सर्वर०; B गूर्जर०। 20 AD नास्ति। 21 BP ०पत्तनं। 22 'व्याकुलता' नास्ति AD। 23 D 'करण' नास्ति। 24 AD तद्वेदि०। 25 AD सह। 26 AD नास्ति। 27 AD हेमाचा०। 28 AD नास्ति। 29 B निर्बन्ध०; P नास्ति।

स्तकमारोप्य सितातपवारणे ध्रियमाणे चामरग्राहिणीचामरयुग्मवीज्यमानं नृपमन्दिरमानीय प्राज्यचर्य[1]पूजा[2]पूर्वं[3] कोशागारे न्यधीयत । ततो[4] राजाज्ञयान्यानि व्याकरणान्यपहाय तस्मिन्नेव व्याकरणे सर्वत्राधीयमाने केनापि मत्सरिणा 'भवदन्वयवर्णनाविरहितं व्याकरणमेतद्[5]' इत्युक्ते[6] श्रीहेमाचार्यः क्रुद्धं राजानं राजमानुपादवगम्य[7] द्वात्रिंशच्छ्लोकान्नूतनान्निर्माय[8] द्वात्रिंशत्सूत्रपा[9]देषु तान् सम्बद्धानेवं[10] लेखयित्वा प्रातर्नृपसभायां वाच्यमाने व्याकरणेऽ-

१३८. हरिरिव बलिबन्धकरस्त्रिशक्तियुक्तः पिनाकपाणिरिव । कमलाश्रयश्च विधिरिव जयति श्रीमूलराजनृपः ॥

इत्यादीन् चौलुक्यवंशोपश्लोकान्, द्वात्रिंशत् सूत्रपादेषु, द्वात्रिंशत् श्लोकानवलोक्य प्रमुदितमना नरेन्द्रो व्याकरणं विस्तारयामास । तथा[11] च श्रीसिद्धराजदिग्विजयवर्णने द्व्याश्रयनामा ग्रन्थः कृतः ।

१३९. भ्रातः ! संवृणु पाणिनि[12]प्रलपितं कातन्त्रकन्था वृथा मा कार्षीः कटु शाकटायनवचः क्षुद्रेण चान्द्रेण किम् ।
कः कण्ठाभरणादिभिर्बठरयत्यात्मानमन्यैरपि श्रूयन्ते यदि तावदर्थमधुराः श्रीसिद्धहेमोक्तयः[13] ॥

९८) अथ श्रीसिद्धराजेन पत्तने यशोवर्मराजस्त्रिपुरुषप्रभृतीन् सर्वानपि राजप्रासादान् सहस्रलिङ्गप्रभृतीनि[14] च धर्मस्थानानि दर्शयित्वा प्रतिवर्षं देवदायपदे कोटिद्रव्यव्ययं निवेद्यैतत्सुन्दरमसुन्दरं चेति[15] पृष्टः स एवमवादीत्-'अहं ह्यष्टादशलक्षप्रमाणमालवदेशाधिपस्त्वत्तः[16] पराभवपात्रं कथं भवेयम्, परं महाकालदेवस्य दत्तपूर्वत्वाद्देवद्रव्यं मालवकास्तद्भुञ्जानास्तत्प्रभावाद्दुर्दि[17]नास्तमिता वर्तामहे । भवदीयान्यवराजानोऽप्येतावद्देवद्रव्यव्ययनिर्वाहाक्षमाः[18], लुप्तसर्वदेवदायपदा[19] विपदां पदं[20] भवन्तो मूलनाशं विनंक्ष्यन्ति[21] ।'

९९) अथ श्रीसिद्धराजः कदापि[22] सिद्धपुरे रुद्रमहाकाल[23]प्रासादं कारयितुकामः कमपि स्थपतिं स्वसंनिधौ स्थापयित्वा[24] प्रासादप्रारम्भलग्ने तदीयां[25] कलासिकां लक्षद्रव्येणोत्तमर्णगृहात्[26] विमोच्य तां[27] वंशशलाकामयीं विलोकयन्[28] 'किमेतदि'ति राजा पप्रच्छ[29] । ततो[30] 'मया प्रभोरौदार्यपरीक्षानिमित्तमेतत्कृतमि'ति स्थपतिरुक्तवान् । ततस्तद्द्रव्यमनिच्छतोऽपि नृपतेः प्रत्यर्पितम्[31] । ततः क्रमेण[32] त्रयोविंशतिहस्त[33]प्रमाणं परिपूर्णं प्रासादं कारयामास । तत्र प्रासादेऽश्वपतिगजपतिनरपतिप्रभृतीनामुत्तम[34]भूपतीनां मूर्तीः कारयित्वा तत्पुरो योजिताञ्जलिं स्वां मूर्तिं निर्माप्य देशभङ्गेऽपि मान्[35] प्रासादस्याभङ्गं याचितवान् । तस्य प्रासादस्य[36] ध्वजारोपप्रस्तावे सर्वेषामपि जैनप्रासादानां पताकावरोहं कारितवान् । यथा मालवकदेशे महाकालप्रासादे[37] वैजयन्त्यां सत्यां जैनप्रासादेषु न ध्वजारोप इति ।

1 A 'प्राज्यचर्य' नास्ति । 2 BP सपर्या० । 3 BP नास्ति । 4 BP नृपा० । 5 AD 'एतद्' नास्ति । 6-7 एतदन्तर्गतस्थाने BP 'इति व्याहरता क्रुद्धे नृपतौ नृपाद्रमानुपात्तद्वचनुत्य' एषः पाठः । 8 P नवीनान् विधाय । 9 D सूत्रिव० । 10 D सम्बन्धं कृपासानेवं । ‡ एतद्दले D पुस्तके 'चौलुक्यवंशोपश्लोकेन श्लोकान् वाचयन्नृपं सन्तोषयामास । यथा-' एषा पंक्तिरुपलभ्यते । तदनन्तरं 'हरिरिव०' पद्यं । † एतदन्तर्गता पंक्तिः D पुस्तके नास्ति । 11 BP 'तथा च' नास्ति । 12 पाणिनि संवृणु BP । 13 AD श्रीहेमचन्द्रोक्तयः । 14 BP ०प्रभृतिपर्व० । 15 AD यशोवर्मा पृष्ट इत्यादीन् । 16 BP त्वत्त । 17 BP ०भावतः । 18 A ०कामुद्रिता० । 19 AD ०वर्द्धमन्य० । 20 BP ०व्ययमनिर्वाहन्तः । 21 AD 'भविष्यन्ति' इत्येव । 22 BP कलिकारयतारे । 23 A 'रुद्र' नास्ति । 24 P ०काल्देवप्रा० । 25 P संस्थाप्य । 26 AD तदीय० । 27 AD तृतीयां मोचयामास । 28 P तावद् । 29 AD व्यालोकय । 30 BP पृष्टः । 31 BP 'ततो मया' नास्ति । 1-1 एतदन्तर्गतस्थाने BP 'तत्र द्रव्यमर्पयन्तमपि' इत्येव पाठः । 32 D नृपतिनाऽर्पितं । 33 A ०प्रमाणः परिपूर्णः क्रमात् कारितवानी नृपश्च प्रासादे । D प्रमाणे परिपूर्णे प्रासादे । 34 BP ०राज्ञां । 35 AD नास्ति । 36 BP नास्ति । 37 AD ०कल्केवस्तत्सां ।

१००) अन्यदा सिद्धराजस्य मालवकमण्डलं प्रति यियासतः केनापि व्यवहारिणा *सहस्रलिङ्गसरोवरकर्मस्थाये विभागे [1] पाच्यमाने [2] तत्सर्वथाऽदत्त्वैव कृतप्रयाणस्य कतिपयदिनानन्तरं कोशाभावात्* कर्मस्थायं [3] विलम्बितमवगम्य, तेन [4] व्यवहारिणा सुतस्य [5] पार्श्वात्कस्यापि धनाधिपस्य चव्यास्ताडङ्कमपहाय [6] तद्दण्डपदे द्रव्यलक्षत्रयं [7] दत्तम्, तेन कर्मस्थायः सञ्जातः, इति वार्त्तां [1] शृण्वतो मालवकमण्डले [8] वर्षाकालं तस्थुषो राज्ञो वचनगोचरातीतः प्रमोदः सञ्जातः [1] । अथ प्रावृषेण्यघनाघनप्रगल्भवृष्ट्या क्षोणीमेकार्णवां विदधाने [9] वर्द्धापनिकाहेतोः प्रधानपुरुषैः प्रहितः [10] कोऽपि मरुदेशवासी [11] नृपतिपुरतः सविस्तरं वर्षास्वरूपं विज्ञपयत् [12] । तदात्वागतेन केनापि [13] गूर्जरधूर्त्तेण नरेण 'सहस्रलिङ्गसरो भृतमिति स्वामिन्! वर्द्धाप्यसे' [14] इति तद्वाक्यानन्तरमेव सिक्कपतितमार्जारस्येव मरुवृद्धस्य पश्यतः सर्वाङ्गलग्नमाभरणं नृपतिर्गूर्जराय ददौ ‡ ।

१०१) अथ वर्षान्तरमेव [15] ततः प्रत्यावृत्तः क्षितिपतिः [16] श्रीनगरमहास्थाने दत्तावासो मध्यरचनायां [17] कृतसर्वावसरस्तत्र [18] नगरप्रासादेषु ध्वजवजमालोक्य [19] 'क एते प्रासादाः ?' इति ब्राह्मणान् पप्रच्छ [20] । तैर्जिनब्रह्मादीनां प्रासादस्वरूपे निवेदिते सामर्षो [21] राज्ञो 'मया गूर्जरमण्डले जैनप्रासादानां पताकासु निषिद्धासु किं भवतामिह नगरे [22] पताकार्वज्जिनायतनम् ?' इत्यादिशंसैर्विज्ञपर्यावसरे-'अवधार्यताम्, श्रीमन्महादेवेन कृतयुगप्रारम्भे महास्थानमिदं स्थापयता [23] श्रीऋषभनाथ-श्रीब्रह्मप्रासादौ स्वयं स्थापितौ प्रदत्तध्वजौ च । तदनयोः [1] प्रासादयोः सुकृतिभिरुद्धियमाणयोश्चत्वारो युगा व्यतीताः । अन्यच्च [24] श्रीशत्रुञ्जयमहागिरेः पुरा नगरमेतदुपत्यकाभूमिः । यतो नगरपुराणेऽप्युक्तम्-

१४०. पञ्चाशदादौ किल मूलभूमेर्दशोर्ध्वभूमेरपि विस्तरोऽस्य ।
उच्चत्वमष्टैव तु [25] योजनानि मानं वदन्तीह [26] जिनेश्वराद्रेः ॥

इति । कृतयुगे आदिदेवः श्रीऋषभस्तत्सूनुर्भरतस्तन्नाम्ना भरतखण्डमिदं प्रतीतम् ।

१४१. नाभेरथो [27] स वृषभो मरुदेविसुनुर्यो वै चचार समदृग् मुनियोगचर्याम् ।
तस्यार्हतत्त्वमृषयः [28] पदमामनन्ति स्वच्छः प्रशान्तकरणः समदृग् सुधीर्थे ॥

१४२. अष्टमो [29] मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः । दर्शयन्वर्त्म धीराणां [30] सर्वाश्रमनमस्कृतः [31] ॥

(अथ P प्रतौ निम्नगता अधिकाः श्लोकाः प्राप्यन्ते-)

[९१] {प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवश्च यः । तस्याग्नीन्ध्रस्ततो नाभिः ऋषभस्तत्सुतस्तथा ॥

* एतच्चिह्नान्तर्गतपाठस्थाने A आदर्शे एतादृशः पाठः—'सहस्रलिङ्गकर्मस्थायविभाग याचित. । राजा तमदत्त्वैव मालवकं प्रति प्रयाणमकरोत् । ततः कोशाभावात् ।' 1 D 'सरोवर' नास्ति । 2 DP याच्यमाने विभागे । 3 D ०स्थायस्य । 4 D विलम्बं । 5 BP नास्ति । 6 BP सुवर्णभां० । 7 BP ताडङ्केऽवहारिते । 1-1 एतदन्तर्गतपाठस्थाने BP 'वार्त्तया तं कर्मस्थायं परिपूर्णं' एवं पाठः । 8 AD 'मंडले' नास्ति । 9 BP समजनि । 10 AD प्रावृषेण्ये घने । 11 AD कुर्वति । 12 A प्रहितस्य । 13 AD मरुदेशनिवासिपुरुषस्य । 14 A व्यज्ञपयत्, D व्यज्ञपयत् । ‡ एतदन्तर्गतपाठः परतः AD आदर्शे पतितः प्रतिभाति । 15 B नास्ति । 16 Dc वर्द्धाप्यसे । 17 'एव ततः' नास्ति AD । 18 P पुरः । 19-20 एतदन्तर्गतं नास्ति AD । 21 AD ध्वजमालोक्य । 22 B नृपश्च, P नास्ति । 23 BP जैन० । 24 P 'सामर्षेण नृपेण०' इत्येव । 25 B नास्ति । 26 BP किमिति भवतामपिह नगरे । 27 P पताकार्वज्जिन० । 28 P श्रीमता० । 29 B स्थापयता । ‡ एतदन्तर्गतपाठस्य स्थाने D पुस्तके पतिताति । 30 नास्ति BP । 31 AD ०गिरेर्नगरमिदमुप० । 32 AD 'अपि' नास्ति । 33 P च । 34 BP वदन्तीति । 35 BP पुत्र. । 36 D नाभेः पुत्रः । 37 Pc तस्यार्हतमृषयः । 38 B समदृक्, D सुधी यः । 39 B अष्टमे । 40 P धीराणां । 41 D ०कृतम् ।

[९२] तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवित्सया । अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद् ब्रह्मपारगम् ॥
[९३] तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः । विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भरतमद्भुतम् ॥
[९४] अर्हन् शिवो भवो विष्णुः सिद्धश्चैव तथा बुधः । परमात्मा परश्चैव शब्दा एकार्थवाचकाः ॥
[९५] जैनं बौद्धं तथा ब्राह्मं शैवं च कापिलं तथा । नास्तिकं दर्शनान्याहुः षडेव हि मनीषिणः ॥
[९६] तत्र—कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः । मरुदेवश्च नाभिश्च भरते कुलसत्तमाः ॥}

इत्यादिपुराणोक्तान्युदीर्य विशेषप्रत्ययाय[1] श्रीवृषभदेवप्रासादकोशाच्छ्रीभरतभूपनामाङ्कितं पञ्चजनयाद्यं कांस्यतालमानीय नृपाय[2] दर्शयन्तो द्विजा[3] जिनधर्मस्याद्यधर्मत्वं स्थापयामासुः[4] । ततः प्रभृति[5] खेदमेदुरमानसेन[6] अवनीशेन हायनान्ते जैनप्रासादेषु ध्वजाधिरोपः कारितः ।

१०२) अथ श्रीपत्तने प्राप्तो नृपः[7] प्रस्तावे[8] सरोवरकर्मस्थायव्ययपदेषु[8] वाच्यमानेषु सापराधव्यवहारिसुतदण्डपदाल्लक्षत्रयं कर्मस्थाये व्ययकलितमिति श्रुत्वा, [9]तल्लक्षत्रयं[9] तस्य गृहे प्रस्थापयामास। ततः स व्यवहारी, [9]उपायनपाणिर्नृपोपान्तमुपेत्य किमेतदिति विज्ञपयन् कर्मस्थायव्यवहारिणे[10] नृपः[11] प्राह—'यः कोटिध्वजो व्यवहारी स कथं तादृक्चौरः? त्वयाऽस्य धर्मस्थानस्य धर्मविभागः प्रार्थितोऽपि यन्न लब्धस्ततः प्रपञ्चचतुरेण मृगमुखव्याघ्रेणेवान्तःशठेन[12] प्रत्यक्षसरलेन इदं कर्म भवता[13] निर्ममे ।' [इत्यादिवाक्यैर्भृशं खण्डितः* ।]

१४३. †यस्यान्तर्गिरिशागारदीपिकाः प्रतिबिम्बिताः ।
शोभन्ते निशि पातालव्यालमौलिमणिश्रियः ॥
१४४. ‡न मानसे माद्यति मानसं मे पम्पा न सम्पादयति प्रमोदम् ।
अच्छोदमच्छोदकमप्यसारं सरोवरे राजति सिद्धभर्तुः ॥

{§एकदा श्रीसिद्धेन रामचन्द्रः पृष्टः—'ग्रीष्मे दिवसाः कथं गुरुतराः?' । रामचन्द्रः प्राह—
[९७] देव श्रीगिरिदुर्गमल्ल भवतो दिग्जैत्रयात्रोत्सवे धावद्वीरतुरङ्गवल्गनखुरक्षुण्णक्षमामण्डली ।
वातोद्धूतरजोमिलत्सुरसरित्सञ्जातपङ्कस्थलीदूर्वाचुम्बनचञ्चुरा रविहयास्तेनैव वृद्धं दिनम् ॥
[९८] लब्धलक्षा विपक्षेषु विलक्षास्त्वयि मार्गणाः । तथापि तव सिद्धेन्द्र दातेत्युत्कन्धरं यशः ॥
अथ कदाचिद्राज्ञा ग्रथिलाचार्या जयमङ्गलसूरयः पुरवर्णनं पृष्टा ऊचुः—
[९९] एतस्यास्य पुरस्य पौरवनिताचातुर्यतानिर्जिता मन्ये हन्त सरस्वती जडतया नीरं वहन्ती स्थिता ।
कीर्तिस्तम्भमिषोच्चदण्डरुचिरामुत्सृज्य बाहोर्बलात्तन्त्रीकां गुरुसिद्धभूपतिसरस्तुम्बां निजां कच्छपीम् ॥}

---

1 एतत्पदस्थाने BP 'यथावस्थिततद्वाक्यस्थापनाय' एतत्पदम्। 2 BP नृपतिपुरतः। 3 AD नास्ति। 4 P चक्रुः; B चक्रे। 5 नास्ति AD। 6 AD ०मनसा राज्ञा। 7 BP नास्ति। 8 D 'सरोवरपदेषु' इत्येव; A सरोवरव्ययपदे। 9 AD 'तत्' नास्ति। ९–९ एतदङ्कान्तर्गतपाठस्थाने BP '०त्रये तद्गृहे स्थापिते स उपा०' एष पाठः। 10 P प्रतावेव एतत्पदं प्राप्यते। 11 'नृपः प्राह' स्थाने AD 'राज्ञादिष्टः'। 12 AD ०व्याघ्रेणान्तः। 13 AD त्वयेदं कर्म निर्मितम्। * केवलं D पुस्तके एवेदं वाक्यं दृश्यते। † B आदर्शे नोपलभ्यमिदं पद्यद्वयम्। D पुस्तके पुनः, अस्य पद्यस्य पूर्वं निम्नगतं पद्यद्वयमधिकं लिखितं लभ्यते।
परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्। वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥
मुखं पद्मदलाकारं वाचश्चन्दनशीतलाः। हृदयं कर्तरीभूतमेतद्धूर्तस्य लक्षणम् ॥
‡ P प्रतौ इदं पद्यमत्र प्राप्यते। § एतत्कोष्ठकान्तर्गतं वर्णनं D पुस्तक एवोपलभ्यते। एतच्च प्रक्षिप्तप्रायमसम्बद्धत्वात्।

१०३) अथ[1] श्रीपालकविना सहस्रलिङ्गसरोवरस्य रचितायां प्रशस्तौ पट्टिकायामुत्कीर्णायां* तच्छोधनाय[†] सर्वदर्शनेष्वाहूयमानेषु श्रीहेमचन्द्राचार्यैः 'सर्वविद्वज्जनानुमते प्रशस्तिकाव्ये भवतां किमपि वैदग्ध्यं न प्रकाशयामि'त्युक्त्वा पण्डितरामचन्द्रमनुशिष्य[2] तत्र महितः। ततः सर्वैर्विद्वद्भिः शोध्यमानायां प्रशस्तौ नृपोपरोधाच्छ्रीपालकवेर्दक्षदाक्षिण्याच्च सर्वेषु काव्येषु मन्यमानेषु–

१४५. कोशेनापि युतं दलैरुपचितं नोच्छेत्तुमेतत्क्षमं स्वस्यापि स्फुटकण्टकव्यतिकरं पुंस्त्वं च धत्ते नहि। एकोऽप्येष करोति कोशरहितो निष्कण्टकं भूतलं मत्वैवं कमला विहाय कमलं यस्यासिमाशिश्रियत्॥

[‡]तैः सर्वैरपि अस्य काव्यस्य विशेषप्रशंसां कुर्वाणैः[‡] श्रीसिद्धराजेन पृष्टः श्रीरामचन्द्रश्चिन्त्यमेतदित्यवादीत्। अथ तैरेव सर्वैरनुयुक्तः–'एतस्मिन्काव्ये सैन्यवाचको दलशब्दः, कमलशब्दस्य नित्यक्लीबत्वं च[3] इति दूषणद्वयं चिन्त्यम्'। ततः[4] तान् सर्वानपि पण्डितानुपलक्ष्य 'दलशब्दो राज्ञा[5] सैन्यार्थे प्रमाणीकारितः, कमलशब्दस्य तु लिङ्गानुशासनसिद्धं नित्यक्लीबत्वं केनाप्रमाणीयते' इति 'पुंस्त्वं च धत्ते न वे'त्यक्षरभेदः कारितः। तदा श्रीसिद्धराजस्य सञ्जातदृष्टिदोषेण[6] पं० रामचन्द्रस्य वसतौ प्रविशत एव लोचनमेकं स्फुटितम्।

१०४) अथ कदाचित् डाहलदेशीयनरपतेः[7]–

१४६. आयुक्तः प्राणदो लोके वियुक्तो मुनिवल्लभः। संयुक्तः सर्वथाऽनिष्टः केवलः स्त्रीषु वल्लभः॥

[§]इति सान्धिविग्रहिकैरानीतपत्रेषु श्लोकमेनं लिखितं निशम्य किमेतदिति पृष्टास्ते प्राहुः–'भवज्जनपदे एकैकप्रधाना भूयांसो विद्वांसस्तत्पार्श्वाद्भुर्योऽयं श्लोको व्याख्येयः' इति तद्वागमाकर्ण्य सर्वैरपि विद्वद्भिरज्ञाततदर्थैर्विमृशद्भिर्नृपेण पृष्टा हेमाचार्या इत्थं व्याचख्युः–'अत्र अभ्याहारी हारशब्दः। तस्य आ इत्युपसर्गे कृते आहार इति सर्वजीवप्राणप्रदः। वियुक्तो विहारः सन् उभयथा यतीनां प्रियः। संपूर्वः संहारः सन् सर्वथाऽनिष्टः। निरुपसर्गः स्त्रीणामेव वल्लभः हार इति'।

१०५) *अन्यदा सपादलक्षक्षितिपतिना–

१४७. ऑली[10] ताव न अणुहरइ गोरीमुहकमलस्स।

इति समस्यादोधकार्द्धमत्र महितम्। तैस्तैः कविभिरपूर्यमाणे

अदिट्ठी किम [11]ओमियइ पडिंयली चन्दस्स॥

इति उत्तरार्द्धेन[12] श्रीहेमचन्द्रो [13]मुनीन्द्रस्तां पूरयामास।

१०६) अथ[14] श्रीसिद्धराजो नवघणाभिधानमाभीरराणकं निग्रहीतुकामः पुरैकादशधा[15] निजसैन्ये पराजिते सति श्रीवर्द्धमानादिषु पुरेषु प्राकारप्रकरं[16] निर्माप्य स्वयमेव प्रयाणकमकरोत्[17]। तद्रा·

1 P इति। * D पुस्तके श्लोकोऽयं [illegible] 1 D तत्प्रशस्तिशोधनाय। 2 D रामचन्द्रोऽनुशिष्य। † [illegible] AD [illegible] 3 AD 'च' नास्ति। 4 BP 'तत' नास्ति; AD 'ततः' नास्ति। 5 D राज्ञै०। 6 AP ०दृष्ट०। 7 P [illegible] 'केन निर्णीयते'। 8 BP [illegible]। 9 B [illegible] ‡ [illegible] AD [illegible] [illegible] § BP [illegible] (B [illegible]) [illegible]। 10 D [illegible] [illegible]। 11 AD ०[illegible]। 12 D [illegible] B [illegible]। 13 BP [illegible]। 14 AD [illegible]। 15 AD हेमचन्द्रनामा मुनिः। 16 AD [illegible]। 17 AD [illegible]। 18 AD [illegible]। 19 BP [illegible]।

ज्ञातस्वरूप एव गिरिमधिरुह्य गङ्गोदकेन श्रीयुगादिदेवं स्नपयन् पर्वतसमीपवर्त्तिग्रामद्वादशक-शासनं श्रीदेवाय[1] विश्राणयामास। तीर्थदर्शनाचोन्मुद्रितलोचन इवामृताभिषिक्त इव तस्थौ[2]। 'अत्र पर्वते सल्लकीवनसरित्पूरसङ्कुले इहैव विन्ध्यवनं[3] रचयिष्यामीत्यवन्ध्यप्रतिज्ञो हस्तियूथनिष्पत्तये विहस्तमनसं मनोरथेनापि तीर्थविध्वंसपातकिनं धिग्मामि'ति श्रीदेवपादानां पुरतो राजलोकविदितं स्वं निन्दन्[4] सानन्दो[5] गिरेरवततार।

१०९) अथ श्रीदेवसूरिचरितं व्याख्यास्यामः–तस्मिन्नवसरे कुमुदचन्द्रनामा दिगम्बरस्तेषु तेषु देशेषु चतुरशीतिवादैर्वादिनो निर्जित्य कर्णाटदेशाद्गूर्जरदेशं जेतुकामः कर्णावतीं प्राप। तत्र भट्टारकश्रीदेवसूरीणां चतुर्मासके स्थितानां श्रीअरिष्टनेमिप्रासादे धर्मशास्त्रव्याख्याक्षणे वचनचातुरीमनुच्छिष्टामाकर्ण्य तत्पण्डितैस्तद्वृत्तान्ते निवेदिते कुमुदचन्द्रस्तेषामुपाश्रये सतृणमुदकं प्रक्षेपितवान्। अथ तैर्महर्षिपण्डितैः[6] खण्डनतर्कादिप्रमाणप्रवीणैस्तस्मिन्नर्थेऽनाकर्णितकथाऽवज्ञाते सति श्रीदेवाचार्यजामिं तपोधनां शीलसुन्दरीं[7] चेटकैरधिष्ठितां विधाय नृत्यजलानयनादिभि[†]र्विविधाभिर्विडम्बनाभिर्विडम्ब्य तेषु चेटकेष्वपहृतेषु तां[8] भृशं परामवाप्तिमतस्तनापरामपवार्य[9] चिन्तापरोऽस्यात्[10]।

(अत्र P आदर्शे निम्नगतान्यन्यत्राप्राप्याणि पद्यानि प्राप्यन्ते–)

[१०३] {हा कस्स पुरोहं पुक्करेमि असकण्णया महं पहुणो।
नियसासणनिकारे जो अवयरइ सो वरं सुगओ॥–साध्वीवाक्यम्।

[१०४] आः कण्ठशोषपरिपोषफलं प्रमाणव्याख्याश्रमो मयि बभूव गुरोर्जनस्य।
एवंविधान्यपि विडम्बनडम्बराणि यच्छासनस्य हहहा महतः शृणोमि॥

[[‡]देवसूरिभिरुक्तं श्रुत्वा पर्ययाऽऽर्यया बभाण–]

[१०५] दुर्वादिगर्वगजनिर्दलनाङ्कुशश्रीः श्वेताम्बराभ्युदयमङ्गलबालदूर्वा।
श्रीदेवसूरिसुगुरोर्भृकुटीललाटपट्टे स्थितिं वितनुत प्रथमावताराम्॥}

श्रीदेवसूरिभिरुक्तम्[11]–'वादविद्याविनोदाय भवता पत्तने गन्तव्यम्। तत्र राजसभायां भवता सह वादं करिष्याम' इत्यादिष्टे स कृतकृत्यंमन्यमान आशावसनः श्रीपत्तनपरिसरं प्राप[12]। श्रीसिद्धराजेन मातामहगुरुरिति प्रत्युद्गमादिना सत्कृतस्तत्रावासान्दत्वा तस्थौ। श्रीसिद्धराजेन वादनिष्णाततां पृष्टाः श्रीहेमाचार्याः–'सत्स्वपु विद्यासु परं प्रावीण्यं बिभ्राणं जैनमुनिगजयूथाधिपं सिताम्बरशासनवप्रप्राकारं नृपसभाशृङ्गारहारं कर्णावतीस्थितं श्रीदेवाचार्यं वादविद्याविदं वादीभकण्ठीरवम्' प्राहुः। अथ राज्ञा तदाह्वानाय प्रेषितविज्ञप्तिकायां श्रीसंघलेखेन समभ्यागतायां श्रीदेवसूरयः पत्तनं प्राप्य नृपोपरोधाद्वाग्देवीमाराधयामासुः। तया तु 'वादिवेतालीयश्रीशान्तिसूरिविरचितोत्तराध्ययनबृहद्वृत्तौ दिगम्बरवादस्थले चतुरशीतिविकल्पजालोपन्यासे भवद्भिः प्रतन्यमाने दिग्वाससो मुखे मुद्रा पतिष्यती'ति देव्योदेशानन्तरं गुप्तवृत्त्या कुमुदचन्द्रसन्निधौ पण्डितान् प्रस्थाप्य कस्मिन् शास्त्रे विशेषकौशलमिति ज्ञापिते–

१५३. देवादेश्य किं करोमि सहसा लङ्कामिहैवानये जम्बूद्वीपमितो[13] नयेयमथवा वारांनिधिं शोषये।

1 D श्रीदेवाचार्य (?)। 2 D जाव., AB नास्ति। 3 D ॰विन्ध्य करिष्यामि। 4 D निन्दन्। 5 सानन्दं पदं BP। 6 AD महर्षिभिः। 7 P प्रतावेदं पदं लभ्यते। † इत आरभ्य 'सूरिभिरुक्तम्' इति पदं यावत् एष पंक्तिः B आदर्शे पतिता। 8 D तान्। 9 A भयवादे। 10 AD नास्त्येतत्पदम्। ‡ A आदर्शे पण्डितपाठ्या सूत्रे पतितेव कथा। 11 AD ॰क्तः। 12 AD 'देवी' नास्ति। 13 A ॰द्वीपमथानये किमथवा।

हेलोत्पाटिततुङ्गपर्वतशिरोग्रावत्रिनेत्राचलक्षेपक्षोभविवर्द्धमानसलिलं बध्नामि वा वारिधिम् ॥*

इति तदुक्तिश्रवणात्सिद्धान्तकुशलतां तस्याल्पीयसीमवगम्य जितं जितमिति[1] मन्यमानाभ्यां श्रीदेवाचार्य-श्रीहेमचन्द्राभ्यां प्रमुदितम् । अथ देवसूरिप्रभो रत्नप्रभाभिधानः प्रथमशिष्यः क्षपामुखे गुप्तवेषतया कुमुदचन्द्रस्य गुरूदरे गतः । तेन कस्त्वमित्यभिहिते-अहं देवः । देवः कः ? । अहं । अहं कः ? । त्वं श्वा । श्वा कः ? । त्वं । त्वं कः ? । अहं देवः [†कुत आयातस्त्वं ? । स्वर्गात् । स्वर्गे का का वार्ता ? । कुमुदचन्द्रदिगम्बरशिरः पञ्चाशीति पलानि । तर्हि किं प्रमाणम् ? । छित्त्वा तोल्यताम् ।] इति तयोरुक्तिप्रत्युक्तिबन्धे चक्रभ्रमं भ्रमति, आत्मानं देवं, दिगम्बरं श्वानं च संस्थाप्य यथागतं जगाम । तेन चक्रदोषप्रादुष्करणेन विषादनिषादसम्पर्कात्-

१५४. हंहो श्वेतपटाः किमेष विकटाटोपोक्तिसण्टङ्कितैः संसारावटकोटरेऽतिविकटे मुग्धो जनः पात्यते ।
तत्त्वातत्त्वविचारणासु यदि वो हेवाकलेशस्तदा सत्यं[2] कौमुदचन्द्रपद्भियुगलं रात्रिंदिवं ध्यायत ॥

इमां तदुचितां कवितां निर्माय[4] समायः कुमुदचन्द्रः श्रीदेवसूरीन् प्रति प्राहिणोत् । तदनु तच्चरणपरमपरमाणुर्बुद्धिवैभवावगणितचाणक्यः[5] पण्डितमाणिक्यः-

१५५. कः कण्ठीरवकण्ठकेसरसटाभारं स्पृशत्यङ्घ्रिणा कः कुन्तेन शितेन नेत्रकुहरे कण्डूयनं काङ्क्षति ।
कः सन्नह्यति पन्नगेश्वरशिरोरत्नावतंसं श्रिये यः श्वेताम्बरशासनस्य कुरुते वन्द्यस्य निन्दामिमाम् ॥

अथ रत्नाकरपण्डितः-

१५६. नग्नैर्निरुद्धा युवतीजनस्य यन्मुक्तिरत्र प्रकटं हि तत्त्वम् ।
तत्किं वृथा कर्कशतर्ककेलौ तवाभिलापोऽयमनर्थमूलः ॥

इति कुमुदचन्द्रं प्रति सोपहासं[6] प्राहिणोत्[7] ।

अथ श्रीमयणल्लदेवीं कुमुदचन्द्रपक्षपातिनीम्, अभ्याशवर्त्तिनः सभ्यांस्तज्जयाय नित्यमुपरोधयन्तीं श्रुत्वा श्रीहेमचन्द्राचार्येण 'वादस्थले दिगम्बराः स्त्रीकृतं सुकृतमप्रमाणीकरिष्यन्ति सिताम्बरास्तं स्थापयिष्यन्ती'ति तेषामेव पार्श्वात्तद्वृत्तान्ते निवेदिते राज्ञी व्यवहारबहिर्मुखे दिगम्बरे पक्षपातमुज्झां[8] चकार ।

अथ भाषोत्तरलेखनाय सुखासनसमासीनः कुमुदचन्द्रः पण्डितरत्नप्रभश्चरणचारेणाऽक्षपटले समागतौ । तदधिकृतैः-

१५७. केवलिहूओ न भुञ्जइ चीवरसहियस्स नत्थि निव्वाणं । इत्थीभवे[9] न सिज्झइ मयमेयं कुमुदचन्दस्स ॥

इति भाषां कुमुदचन्द्रो लेखयामास । अथ सिताम्बराणामुत्तरम्-

१५८. केवलिहूओ वि भुञ्जइ चीवरसहियस्स अत्थि निव्वाणं । इत्थीभवे[10] वि सिज्झइ मयमेयं देवसूरीणं ॥

इति भाषोत्तरलेखनानन्तरं निर्णीते वादस्थलवासरे श्रीसिद्धराजे समाजमागते, षड्दर्शनप्रमाणवेदिषु सभ्येषु समुपस्थितेषु कुमुदचन्द्रवादी पुरो वाद्यमानजयडिण्डिमो ध्रियमाणसितातपत्रः सुखासनसमासीनः पुरो वंशाग्रलम्ब्यमानपत्रावलम्बः श्रीसिद्धराजसभायां नृपप्रसादीकृतसिंहासने निषसाद । प्रभुश्रीदेवसूरयश्च श्रीहेमचन्द्रमुनीन्द्रसहिताः सभासिंहासनमेकमेवालंचक्रुः ।

* एतत्पदस्य स्थाने BP आदर्शे 'जम्बूद्वीपमिहानये किमथवा लङ्कामिहैवानये' इत्येक एव पादः प्राप्यते । 1 इदं पदं पतितं D पुस्तके । † एषा कोष्ठगता पंक्तिः P प्रतावेव प्राप्या । 2 P सप्तय० । 3 P निलं । 4 D निर्माप्य समादाय । 5 'परम' नास्ति D । 6 BP सावलेपः । 7 P नास्ति । 8 P प्रतिषाय । 9 P भोजसत् । 10 AD ०हुआ ।

अथ कुमुदचन्द्रवादी स्वयं ज्यायान् किञ्चिद्व्यतिक्रान्तशैशवं श्रीहेमचन्द्रं प्रति 'पीतं तक्रं भवता ?' इत्यभिहिते श्रीहेमचन्द्रस्तं प्रति 'जरातरलितमतिः किमेवमसमञ्जसं ब्रूषे ? श्वेतं तक्रं पीता हरिद्रा' इति वाक्येनाधःकृतः 'युवयोः को वादी ?' इति पृच्छन्, श्रीदेवसूरिभिस्तत्तिरस्कारकरणार्थं 'अयं भवतः प्रतिवादी'त्यभिहिते कुमुदचन्द्रः प्राह—'मम वृद्धस्यानेन शिशुना सह को वादः' ?' इति तदुक्तिमाकर्ण्य 'अहमेव ज्यायान् भवांस्तु' शिशुः, योऽद्यापि कटीदवरकं निवसनं च नादत्ते' इति । राज्ञा तयोर्वितण्डायां निषिद्धायामित्थं मिथः पणबन्धः समजनि—'पराजितैः श्वेताम्बरैर्दिगम्बरत्वमङ्गीकार्यम्, दिगम्बरैस्तु देशत्यागः' इति निर्णीतपणबन्धादनु स्वदेशकलङ्कभीरुभिर्देवाचार्यैः सर्वानुवादपरिहारपरैर्देशानुवादपरायणैः कुमुदचन्द्रं प्रति 'प्रथमं भवान् कक्षीकरोतु पक्षम्' इत्यभिहिते—

१५९. खद्योतद्युतिमातनोति सविता जीर्णोर्णनाभालयच्छायामाश्रयते शशी मशकतामायान्ति यत्राद्रयः ।
इत्थं वर्णयतो नभस्तव यशो जातं स्मृतेर्गोचरं तद्यस्मिन्भ्रमरायते नरपते ! वाचस्ततो मुद्रिताः ॥

इति नृपं प्रत्याशिषं ददौ । 'वाचस्ततो मुद्रिताः' इति तदीयापशब्देन सभ्यास्तं सद्दस्तबन्धनमिति विमृशन्तो मुमुदिरे । अथ देवाचार्याः—

१६०. नारीणां विदधाति निर्वृतिपदं श्वेताम्बरप्रोल्लसत्कीर्तिस्फातिमनोहरं नयपथप्रस्तारभृङ्गीगृहम् ।
यस्मिन्केवलिनो न निर्जितपरोत्सेकाः सदा दन्तिनो राज्यं तज्जिनशासनं च भवतश्चौलुक्य ! जीयाच्चिरम् ॥

नृपं प्रतीमामाशिषं ददौ । अथ वादी कुमुदचन्द्रः केवलिभुक्ति-स्त्रीमुक्ति-चीवरनिराकरणपक्षोपन्यासं पारापतविहङ्गोपमया स्खलितस्खलितया गिरा प्रारभमाणः सभ्यैरन्तर्विहसद्भिः प्रत्यक्षप्रशंसापरैः पुरस्क्रियमाणः कियदुपन्यासप्रान्ते उच्यतामिति तेनोक्तः श्रीदेवाचार्यः प्रलयकालोन्मीलितप्रचण्डपवनक्षुभिताम्भोधिनिचितवीचीसमीचीभिर्वाग्भिर्बृहदुत्तराध्ययनवृत्त्युक्तचतुरशीतिविकल्पजालोपन्यासप्रक्रमे भास्वत्प्रतिभासप्रसरपरिम्लानापमानकुमुदः कुमुदचन्द्रः सम्भ्रमभ्रान्तचेतास्तद्वचनान्यवधारयितुमक्षमो भूयस्तमेवोपन्यासं समभ्यर्थितवान् । श्रीसिद्धराज-सभ्येषु च निषेधपरेष्वपि अप्रमेयप्रमेयलहरीभिस्तं प्रमाणाम्भोधौ मज्जयितुं प्रारब्धे षोडशे दिने आकस्मिके देवाचार्यस्य कण्ठग्रहे मान्त्रिकैः श्रीयशोभद्रसूरिभिरतुल्यकुरुकुल्लादेवीप्रसादलब्धवरैस्तत्कण्ठपीठात्तत्क्षणात्क्षपणककृतकार्मणानुभावाद् केशकन्दुकः पतितः पात्यांचक्रे । तद्विघ्ननिरीक्षणचतुरैः स श्रीयशोभद्रसूरिः श्लाघ्यमानः कुमुदचन्द्रश्चामन्दं निन्द्यमानः प्रमोदविषादौ दधाते । अथ श्रीदेवसूरिभिरुपन्यासोपक्रमे कोटाकोटिरिति शब्दे प्रोच्यमाने तच्छब्दव्युत्पत्तिं कुमुदचन्द्रे पृच्छति कण्ठपीठे लुठिताष्टव्याकरणः पण्डितः शाकटायनव्याकरणोदितटाप्टीपसूत्रनिष्पन्नं कोटाकोटिः कोटीकोटिः कोटिकोटिरिति सिद्धं शब्दत्रयनिर्णयं प्राह । अथ प्रथममेव 'वाचस्ततो मुद्रिता' इति स्वयं पठितत्वापशब्दप्रमादात्तदा प्रादुर्भूतमुनमुद्रः 'श्रीदेवाचार्येण निर्जितोऽहमि'ति स्वयमुच्चरन् श्रीसिद्धराजेन पराजितव्यवहारात्, अपद्वारेणोपसार्यमाणः सम्भवत्पराभवाविर्भावाद्हृत्स्फोटं प्राप्य विपेदे ।

1 D ॰सूरिभिस्तत्तिरस्कारार्थं । 2 P शिशुना सार्द्धं न वादः ममुचितः । 3 AD ॰मवनेव । 4 AD इत्यादर्शे कटीदवरकं निवसनं च । 5 D श्रीमित्थंमन्वीरुत्थित॰ । 6 AD ॰विहङ्गमालापा । 7 D स्खलितस्खलिता । 8 D ॰द्भिरुच्चै हेस॰ । 9 D ॰न्यासे प्रारब्धे । 10 D निहृत्य मान्त्रणः । 11 D केशकन्दुकः । 12 P निहत्य मान्त्रण 'वहिः' । 13 D दर्शनदर्शदा स्वपक्षपक्ष॰ । 14 P सन्ति ।

अनन्तरं तु श्रीसिद्धराजः प्रमोदमेदुरमना देवाचार्यप्रभावप्रभावनां चिकीर्मूर्ध्नि[1] धारितसितातपत्रचतुष्टयः प्रकीर्णकप्रकरवीज्यमानः स्वयं दत्तहस्तावलम्बः पूर्यमाणेषु[2] यमलशङ्खेषु रोदःकुक्षिम्भरिविभ्रमं बिभ्रति निस्वाननिस्वनैः स्फूर्जद्वर्यतूर्यपूर्यमाणदिगन्तराले वाहड[3]नाम्नोपासकेन लक्षत्रयप्रमितद्रव्यव्ययकृतार्थीकृतार्थिसार्थे 'वादिचक्रवर्तिन् ! पादावधार्यताम्' इति स्तुतिव्रातैरमन्दजगदानन्दकन्दकन्दलानुकारिणि[4] मङ्गले मुहुर्मुहुरुच्यमाने श्रीदेवाचार्यान् वाहडेन[5] तेनैव कारितप्रासादे श्रीमन्महावीरनमस्करणपूर्वं वसतौ प्रावेशयत् । तत्पारितोषिके च नृपतिः सूरिभ्योऽनिच्छद्भ्योऽपि छालाप्रभृति ग्रामद्वादशकं ददौ । तदुपश्लोकनश्लोका एवम्[6]–

१६१. यत्नप्रतिष्ठाचार्याय नमः श्रीदेवसूरये ।
यत्प्रसादमिवाख्याति सुखप्रश्नेषु दर्शनम् ॥

–इति श्रीप्रद्युम्नाचार्यः ।

१६२. यदि नाम कुमुदचन्द्रं नाजेष्यद्देवसूरिरहिमरुचिः ।
कटिपरिधानमधास्यत्कतमः श्वेताम्बरो जगति ॥*

–इति हेमाचार्यः ।

१६३. भेजेऽवकीर्णतां नग्नः कीर्तिकन्थामुपार्ज्य यः[7] ।
तां देवसूरिराच्छिद्य तं निर्ग्रन्थं पुनर्व्यधात् ॥

–इति श्रीउदयप्रभदेवः ।

१६४. वादविद्याव्रतोऽ[8]द्यापि लेखशालामनुज्झताम्[9] ।
देवसूरिप्रभोः[10] साम्यं कथं स्याद्देवसूरिणा ॥

–इति श्रीमुनिदेवाचार्यः ।

१६५. नग्नो यत्प्रतिमार्धर्मात्[11]कीर्तियोगपटं त्यजन् । ह्रियेवात्याजि भारत्या देवसूरिर्मुदेऽस्तु वः[12] ॥
१६६. स्त्रीणां मुक्तिं[13]... स्त्र्यागारमशेषकेवलभुवां मुक्तिं तथा स्थापयन्नारीणामपि मोक्षतीर्थमभवत्तन्मुक्तियुक्तोत्तरैः ।
यः श्वेताम्बरशासनस्य विजिते नग्ने प्रतिष्ठागुरुस्तद्देवाद्गुरुतोऽप्यमेयमहिमा श्रीदेवसूरिप्रभुः ॥

–इति मेरुतुङ्गसूरीणां द्वयम् ।

॥ इति देवसूरीणां प्रबन्धः* ॥

११०) अथ श्रीपत्तनवास्तव्य उच्छिन्नवंशकः आभडनामा वणिक्पुत्रः कांस्यकारकहट्टे[14] घर्घरकघर्षणं कुर्वंस्तत्र पञ्च विंशोपकानर्जयित्वा दिनव्ययं कुर्वाणो द्विसन्ध्यमपि प्रभु[15]श्रीहेमसूरीणां चरणमूले प्रतिक्रामन्, प्रकृतिचतुरतयाऽधीतागस्त्यबौद्धमतादिरत्नपरीक्षाग्रन्थो रत्नपरीक्षकाणां सांनिध्यात् तत्परीक्षादक्षः[16] कदाचिच्छ्रीहेमचन्द्रमुनीन्द्र[17]सन्निधौ धनाभावात्परिग्रहप्रमाणनियमान्सङ्कुचितान् गृह्णन् सामुद्रिकवेदिभिः प्रभुभिरायतौ तद्भाग्यवैभवप्रसरं[18] विमृशद्भिस्तस्य लक्षत्रयद्रम्माणां परिग्रहप्रमाणं[19] कारयद्भिः[20] सन्तुष्टतया व्यवहरन्, कस्मिन्नप्यवसरे क्वापि ग्रामे पिपासुरन्तरालेऽजाव्रजं व्रजन्तमालोक्यैकस्या अजायाः कण्ठे पाषाणखण्डं रत्नपरीक्षकतया रत्नजातीयं

1 D.P प्रभावनां चिकीर्षुः । 2 D.l पूर्यमाणेषु दिगन्तरालेषु । 3 D.l वाहद; B वाहड । 4 AD कन्दलनकारिणि । 5 B वाहडेन; Da-b वाहडेन । 6 BP एवं । * D विहाय नास्त्यन्यत्रेदं पद्यम् । 7 D मुपार्जयत् । 8 P वादविद्याविदो । 9 P ॰शालामनुज्झता । 10 P ॰गुरोः । 11 BP धर्मात् । 12 B सः । 13 D प्रमुक्ति॰ । * BP इति प्रभुश्रीदेवसूरिप्रबन्धः । 14 BP ॰हट्टे । 15 BP 'प्रभु' नास्ति । 16 BP विचक्षणः । 17 'मुनीन्द्र' D नास्ति । 18 P ॰वैभवं । 19 AD ॰प्रमाणं, B नियमं । 20 ABP कुर्वद्भिः ।

परीक्ष्य तल्लोभात्तं मूल्येन क्रीत्वा मणिकारपार्श्वात्तमुत्तेजितं निर्माप्य श्रीसिद्धराजस्य[1] मुकुटघटनाप्रस्तावे लक्षमूल्यद्रव्येण[2] तं नृपायैव ददौ। तेन नीवीधनेन मञ्जिष्ठास्थानकानि कदाचिदागतानि क्रीत्वा तद्विक्रयावसरे सांयात्रिकैर्जलचोरभयात्तदन्तर्निहिताः काञ्चनकम्बिकाः पश्यन् सर्वेभ्यः स्थानकेभ्यस्ताः सञ्जग्राह। तदनन्तरं सर्वनगरमुख्यः श्रीसिद्धराजमान्यो जिनशासनप्रभावकः श्रावकः प्रतिदिनं प्रतिवर्षं यदृच्छया जैनमुनिभ्योऽन्नवस्त्रादि[3] ददानो गुप्तवृत्त्या नव्यानि धर्मस्थानानि जीर्णानि च स्वप्रशस्तिरहितानि स्वदेशेषु विदेशेषु च समुद्दधार।

१९७. वल्लीच्छन्नद्रुम इव मृत्स्नाच्छादितसमस्तबीजमिव। प्रायः प्रच्छन्नकृतं सुकृतं शतशाखतामेति॥

॥ इति वसाह[4] आमडप्रबन्धः[5]॥

१११) अथान्यस्मिन्नवसरे श्रीसिद्धराजः संसारसागरं तितीर्षुः[6] प्रत्येकं सर्वदेशेषु[7] सर्वदर्शनेषु[8] देवतत्त्वधर्मतत्त्वपात्रतत्त्वजिज्ञासया पृच्छ्यमानेषु निजस्तुतिपरनिन्दापरेषु सन्देहदोलाधिरूढमानसः[9] श्रीहेमाचार्यमाकार्य विचार्यं कार्यं पप्रच्छ। आचार्यैस्तु चतुर्दशविद्यास्थानरहस्यं विमृश्येति पौराणिकनिर्णयो वक्तुमारेभे—'यत्पुरा कश्चिद् व्यवहारी पूर्वपरिणीतां[10] पत्नीं परित्यज्य संग्रहणीसात्कृतसर्वस्वः सदैव[11] पूर्वपत्न्या पतिवशीकरणाय तद्वेदिभ्यः कार्मणकर्मणि पृच्छ्यमाने कश्चिद्गौडदेशीयो 'रश्मिनियन्त्रितं तव पतिं करोमी'त्युक्त्वा किञ्चिदचिन्त्यवीर्यं भेषजमुपनीय भोजनान्तर्देयमिति भाषमाणः स[12] गतः। कियद्दिनान्ते समागते क्षयाहनि तस्मिंस्तथा कृते स प्रत्यक्षां वृषभतां प्राप। सा च तत्प्रतीकारमनवबुध्यमाना *विश्वविश्वाक्रोशान्सहमाना निजं दुश्चरितं शोचन्ती कदाचिन्मध्यंदिने दिनेश्वरकठोरतरनिकरप्रसरतप्यमानापि* शाड्वलभूमिषु तं पतिं वृषभरूपं[13] चारयन्ती, कस्यापि तरोर्मूले[14] विश्रान्ता निर्भरं[15] विलपन्ती, आलापं नभस्यकस्मा[16]च्छुश्राव। तदा तत्रागतो विमानाधिरूढः पशुपतिर्भवान्या तद्दुःखकारणं पृष्टो यथावस्थितं निवेद्य तस्यैव तरोश्छायायां पुंस्त्वनिबन्धनमौषधं तन्निर्बन्धादादिश्य तिरोदधे। सा तदनु तदीयां छायां रेखाङ्कितां निर्माय[17] तन्मध्यवर्तिन औषधाङ्कुरानुच्छेद्य वृषभवदने क्षिपन्ती, तेनाप्यज्ञातस्वरूपेणौषधाङ्कुरेण वदनन्यस्तेन स वृषभो मनुष्यतां[18] प्राप। यथा तदज्ञातस्वरूपोऽपि भेषजाङ्कुरः समीहितकार्यसिद्धिं चकार; तथा कलियुगे मोहात्तदपि तिरोहितं पात्रपरिज्ञानं सभक्तिकं सर्वदर्शनाराधनेनाऽविदितस्वरूपमपि मुक्तिप्रदं भवतीति निर्णयः।' इति हेमचन्द्राचार्यैः सर्वदर्शनसम्मते[19] निवेदिते सति श्रीसिद्धराजः सर्वधर्मानाराराध[20]।

॥ इति सर्वदर्शनमान्यताप्रबन्धः॥

११२) अथान्यदा निशि[21] कर्णमेरुप्रासादे नृपतिर्नाटकं विलोकयन् केनापि चणकविक्रयकारिणा[22] वणिग्मात्रेण स्कन्धे न्यस्तहस्तः[23] तल्लीलायितेन चित्रीयमाणमानसः भूयो भूयस्तद्दीयमानं सकर्पूरबीटकं परितोषितो गृह्णन् नाटकविसर्जनावसरेऽनुचरैस्तद्गेहादि सम्यगवगम्य सौधमासाद्य सुष्वाप। प्रत्यूषे भूपः[24] कृतप्राभातिककृत्यः सर्वावसरेऽलङ्कृतसभामण्डपस्तं चणकविक्रयकारिणं

1 AD सिद्धराजमु०। 2 P लक्षद्रव्यमूल्येन; A ०मूल्येन द्रव्येण। 3 नास्त्येतत्पदं P। 4 DP साहः BD० वसा। 5 B आभडस्य उत्पत्तिकथाप्रबन्धः; P आभडस्य उत्पत्तिप्रबन्धः। 6 BP तितीर्षया। 7 P नास्तीदं पदम्। 8 B नास्ति। 9 P 'दोलाधिरूढः' इत्येव। 10 P 'पूर्व' नास्ति। 11 P सर्वदैव। 12 'स गतः' नास्ति BP। * पुष्पद्वन्तर्गतः पाठः B आदर्शे नोपलभ्यते। 13 P गोरूपं। 14 B तरुमूले; P तरोस्तले। 15 P नास्ति। 16 P 'अकस्मात्' नास्ति। 17 P विधाय। 18 P मानवतां। 19 D सन्माने। 20 D ०धर्माराधनं चकार। 21 P रात्रौ। 22 D विहाय नान्यभेदं पदं दृश्यते। 23 AD ०न्यस्तहस्तेन। 24 B भूपतिः; P नास्ति।

णिनमाकार्य[1] 'निशि स्कन्धन्यस्तहस्तभारेण ग्रीवा बाधते' इत्यभिहितं[2]स्तत्कालोत्पन्नमति-ज्ञपयामास–'देव! आसमुद्रान्तभूभारे[3] स्कन्धाधिरूढे यदि स्वामिनः स्कन्धो न बाधते तदा मात्रस्य निर्जीवस्य मम पण्याजीवस्य भारेण स्वामिनः का स्कन्धबाधे'ति तदीयौचित्यविज्ञप-प्रमोदवान्नृपः पारितोषिकं ददौ।

॥ इति चणकविक्रयिवणिजः[4] प्रबन्धः ॥

११३) अथान्यस्यां निशि नृपतिः कर्णमेरुप्रासादात्प्रेक्षणं प्रेक्ष्य प्रत्यावृत्तः कस्यापि व्यवहा-रिणो हर्म्ये बहून् प्रदीपानालोक्य किमेतदिति पृष्टः स लक्षप्रदीपांस्तान् विज्ञपयामास। असौ न्यः 'स्वसौधमध्यमध्यास्य व्यतीतक्षणदाक्षणः, स धन्यंमानी तं सद्यः समानीयेत्यादिदेश'– एतेषां सदा प्रदीपानां प्रज्वालनेन भवतः सदा प्रदीपनम्, तद्भवदीयवित्तस्य कियन्तो लक्षाः?' इत्यभिहितः स विद्यमानांश्चतुरशीतिलक्षान्निवेदयामास। तदनु तदनुकम्पाकम्पमानमानसः कोशात्षोडशलक्षान् प्रसादीकृत्य तत्सौधे कोटिध्वजमध्यारोपयामास।

॥ इति षोडशलक्षप्रसाद[5]प्रबन्धः ॥

११४) अथान्यस्मिन्नवसरे[6] राज्ञा[7] बालाकदेशदुर्गभूमौ[8] सिंहपुरमिति ब्राह्मणानामग्रहारः स्थापितः। तच्छासने षडुत्तरशतं ग्रामाः। ‡अथ श्रीसिद्धराजः कदाचित् सिंहभीतैर्विप्रैर्देशमध्य-[9] निवासं याचितः साभ्रमतीतीरवर्तिनं आसांविली[10]ग्रामं तेभ्यो ददौ। तथा[11] तेषां[12] सिंहपुरा[13]द्धान्या-न्यादाय गच्छतामागच्छतां[14] च दाणमोक्षं चकार‡।

११५) अथ राज्ञा[15] सिद्धराजेन मालवकं प्रति कृतप्रयाणेन वाराहीग्रामपरिसरमाश्रित्य तदीयान् पट्टकिलानाहूय तच्चातुर्यपरीक्षाकृते निजां प्रधानां राजवाहनसेजवालीं स्थापनिकार्थं समर्पयत[16]। अथ नृपतौ पुरतः प्रयाते तैः सर्वैरपि सम्भूय तदङ्गानि प्रत्येकं विदार्य यथोचितं[17] सर्वेऽपि[18] स्वस्व-सौधे निदधिरे[19]। अथ दिग्यात्रा[20]मत्यावृत्तो नृपस्तां स्थापनिकां तेभ्यो याचमानस्तत्कौकिलानि[21] भि-न्नानि तदङ्गानि पश्यन् सविस्मयं किमेतदित्यादिशंस्तैर्विज्ञपयांचक्रे–'स्वामिन्! एकः कोऽप्यस्य व-स्तुनो गोपनविधौ न प्रभूष्णुः। मलिम्लुचानलादीनां[22] कदाचिदपाये सञ्जायमाने सति कः प्रभोरु-त्तरं कर्तेति विमृश्यैतदस्माभिर्व्यवसितम्।' तदा राजा विस्मयस्मेरमनास्तेषां मूर्ख इति बिरुदं ददौ।

॥ इति वाराहीय-मूर्खप्रबन्धः ॥

११६) अथ कदाचिच्छ्रीजयसिंहदेवो नृपतिर्मालवकं विजित्य प्रत्यावृत्त उज्झाग्रामे निवेशित-स्कन्धावारस्तैर्ग्रामीणैः प्रतिपन्नमातुलैर्दुग्धपरिपूर्णाऽऽवाहादिभिरुचितैः परितोष्यमाणस्तस्यामेव निशि गुप्तवृत्त्या तद्दुःखसुखजिज्ञासुः कस्यापि ग्रामण्यो[23] गृहे गतः। गोदोहादिव्याकुलतायामपि तेन 'कस्त्वम्?' इति पृष्टः 'श्रीसोमेश्वरस्य कार्पटिकोऽहं महाराष्ट्रदेशवास्तव्य' इति तस्मै न्यवेद-यत्। तेन च नृपतेः पार्श्वे महाराष्ट्रदेशस्य तन्महाराजस्य च गुणदोषवृत्तान्ते पृच्छ्यमाने स नृप-

---

1 P पणिजमाहूय। 2 AD °भिहिते। 3 BP °धराभारे। 4 P विक्रयवणिक्°। † एतदन्तर्गता पङ्क्तिः श्लोकरूपा वर्तमाना पद्यानुसारं श्लोकस्वरूपाभावात् गद्यरूपा एवैषमिति। 5 P विहाय 'प्रसाद' नास्ति। 6 B प्रस्तावे। 7 B राजा। 8 AD °दुर्गभूम्यां। ‡ एतद्वाक्यस्थाने P प्रतौ 'अथ कदाचिद्बालाकदेशदुर्गपर्वतभूमौ' एतादृशं वाक्यं विद्यते। 9 D सिंहभीतैः। 10 B आसांविलि, D आसांबिली, Da-b आशाम्बली। 11 P विहाय 'तथा' नास्ति। 12 BD तेषां च। 13 P सर्वेभ्यानि। 14 B नास्ति 'आगच्छतां'। § एतदन्तर्गतं वर्णनं A आदर्शे सर्वथाऽनुपलब्धम्। 15 BP नास्ति। 16 A समर्पिता। 17 D यथायोग्यं। 18 P विहाय नास्त्यन्यत्र। 19 BP निदधुः। 20 D यदा। 21 AD तद्ढौकि-कानि°। 22 D °नलादिभ्यः। 23 D ग्रामीणस्य।

तेस्तस्य पणणवतिराजगुणान् प्रशंसंस्तत्पार्श्वे च गूर्जराधीश्वरगुणदोषान् पृच्छन् 'श्रीसिद्धराजस्य प्रजापालनपाण्डित्यं सेवकेष्वप्यतुल्यवात्सल्यत्वं चे'त्यादीन् गुणान् वर्णयंस्तेन कृत्रिमदोषे उद्घाट्यमाने[1] स 'अस्माकं मन्दभाग्यतया नृपतेरपुत्रतालक्षण एव दोषः' इत्यश्रूणि मुञ्चन्नृपतिं निःकैतवभृत्या परितोषयामास। अथ प्रभातकाले सम्भूय सर्वेऽपि मिलिता नृपदर्शनोत्कण्ठिताः सौधमध्यास्य प्रभोः प्रणामानन्तरं तदतुल्यपल्यङ्के निविष्टाः। आसनदाननियोगिभिः प्रदत्तेऽपि पृथगासने तत्पर्यङ्कसौकुमार्यं करस्पर्शेन विचिन्त्य 'वयमिह सुखसुखेन निषण्णास्तिष्ठामः' इति नृपे स्मितमुखाम्भोजे तस्थुः।

॥ इति उञ्झावास्तव्यग्रामणीनां[2] प्रबन्धः ॥

११७) अथ कदाचिज्झालाज्ञातीयमाङ्गूनामा क्षत्रियः श्रीसिद्धराजसेवार्थं सभां[3] समागच्छन् प्रत्यहं पाराचीद्वयं भूमौ निहत्योपविशति। उद्धरन् तद्‌द्वयमुत्तिष्ठति। तस्य च भोजने घृतपरिपूर्णः कुतुप[4] एव[5] व्यये याति। तस्य तु घृताभ्यक्तदाढिकानिर्माजने घृतपोडशोऽवशिष्यते[6]। कदाचिद्वपुरपाटवे पथ्यावसरे पञ्चमाणकप्रमित[7]यवागूपथ्यप्रान्ते आयुर्वेदविदाऽमृतोदकमद्धाहारे किमिति न पीतमुपालब्धः। यतः–

१६८. पिबेद्धटसहस्रं तु यावन्नाभ्युदितो[8] रविः। उदिते तु[9] सहस्रांशौ बिन्दुरेको[10] घटायते ॥

रजन्याः पाश्चात्यघटिकाचतुष्टये सूर्यस्यानुदयावधि यत्पयः पीयते, जलयोगः क्रियते, तद्धटोदकम्, [[11]तदमृतोदकं] सूर्योदये समुत्पन्ने निरन्नैः प्रातर्यदुदकं पीयते तद्विषम्। ततः बिन्दुरेकोऽपि घटशतायते। भोजनार्द्धे यज्जलं पीयते तदमृतम्, भोजनान्ते तत्कालपीतं पयः छन्नं [12]"छन्नोदकम्" इति भण्यते। तेन प्रोक्तं पुनः–'पूर्वान्नं[13] भुक्तमद्धाहारं परिकल्प्य सम्प्रति पयः पीत्वा पुनरर्द्धाहारं करिष्यामी'त्युपक्रममाणस्तेनैव वैद्येन निषिद्धः। कदाचिद् नृपतिना निरायुधकारणं पृष्टः 'समयोचितं मे प्रहरणमि'ति विज्ञपयन्नऽन्यदा मज्जनावसरे हस्तिपकप्रेर्यमाणं हस्तिनमालोक्य गजस्य पुच्छभागं गृह्णन् तदीयातुलेन बलेनान्तस्त्रुटितस्य करटिन उत्तारिते हस्तिपके[15] भूपतितः सोऽसुभिर्व्ययुज्यत। स तु गूर्जरदेशसन्निहितश्वानेन शुण्डादण्डे निहत्य मर्मस्याननिपीडितस्य भूपाले पलायिते समायातम्लेच्छान् समरे स्वेच्छयोच्छेदयन् यत्र दिवं प्रासस्तत्र श्रीपत्तने माङ्गूस्थण्डिलमिति प्रसिद्धिः।

॥ इति [16]माङ्गूप्रबन्धः ॥

११८) अन्यदा म्लेच्छेशंप्रधानेषु[17] समायतेषु मध्यदेशादागतान्[18] वेषकारकानाहूय रहस्यं[19] किञ्चिदादिश्य विससर्ज। अथापरस्मिन्सायाह्नावसरे[20] समागते प्रलयकालप्रचण्डपवनप्रादुर्भावे नृपसुधर्मासधर्माणमास्थानीमास्थाय यावदवलोकते तावदन्तरिक्षादवतरन्तं मस्तकन्यस्तकाञ्चनेष्टिकायुगेन काञ्चनशोभां बिभ्राणं पलादयुगलमालोक्य भयभ्रान्ते समाजलोके नृपचरणपीठे तदुपायनं विमुच्य भूपीठलुठनपूर्वं प्रणिपत्येति विज्ञपयामास–'यदद्य देवतार्चनावसरे लङ्कानगर्या

1 AD उत्पाद्यमाने। 2 P उञ्झाग्रामण्यां०। 3 P सभायां। 4 A कुम्भ। 5 D एक एव। 6 D षोडशोऽवशि०।
7 P 'प्रमित' नास्ति। 8 Dc ०चात्समित०। 9 Dc अस्त याते। 10 Dc बिन्दुर्घटशतायते। 11 केवलं D पुस्तके [illegible]
दृश्यते। 12 PDc छन्नं छन्नोदक०। 13 D पूर्वभुक्त०। 14 P विहाय नान्यत्र। 15 BP 'उत्तारिते भूपतौ' इत्य०।
16 D माङ्गूस्था०। 17 BD म्लेच्छप्र०। 18 AD ०देशागतान्। 19 BP रहसि। 20 D सायाह्ने च।

महाराजाधिराजः श्रीविभीषणो राजस्थापनाचार्यस्य रघुकुलतिलकस्य श्रीरामस्याभिरामगुणग्रामाभिरामस्य स्मरन्, ज्ञानमयेन चक्षुषा सम्प्रति चौलुक्यकुलतिलकश्रीसिद्धराजावतारेऽवतीर्णं स्वीयं स्वामिनमवधार्य–"अकुण्ठोत्कण्ठायमानमानसोऽहं[1] तत्र प्रणामकरणायागच्छामीति, किं वा प्रभुर्मामत्रागमनेनानुग्रहीष्यती"ति विज्ञपयन्तौ प्रहितवान्। तन्निर्णयं श्रीमुखेन समादिशतु देवः।' ताभ्यामित्यभिहिते नृपतिः किञ्चिदन्तर्विचिन्त्य स तावेवं समादिशत्[2]–'यद्वयमेव प्रफुल्लापल्लकलहरीप्रेर्यमाणाः स्वसमये स्वयमेव विभीषणमिलनाय समेष्यामः' इत्युदीर्य निजकण्ठशृङ्गारकारिणमेकावलीहारं प्रतिप्राभृतं प्रसादीकृत्य[3] आपृच्छनावसरे[4] 'प्रभुणाहमन्यस्मिन्नपि[5] प्रेष्यप्रेषणावसरे न विस्मारणीय' इति विशेषविज्ञप्तिं विधायान्तरिक्षमार्गेण तद्राक्षसद्वन्द्वं तिरोधत्ते। तदैव ते म्लेच्छप्रधानपुरुषा[6] भयभ्रान्ताः स्वपौरुषमुत्सृज्य नृपपुरत आहूता भक्तिभरभासुराणि वचांसि ब्रुवाणास्तद्राज्ञे समुचितमुपायनमुपनीय श्रीसिद्धराजेन व्यसृज्यन्त[7]।

॥ इति म्लेच्छागमनिषेधप्रबन्धः ॥

११९) अथानन्तरं[8] कोल्लापुरनगरराज्ञः[9] सभायां बन्दिनः श्रीसिद्धराजस्य कीर्तिं वितन्वन्तः। 'तदा वयं तथ्यं सिद्धराजं मन्यामहे यदा प्रत्यक्षमप्यस्माकं कमपि चमत्कारं दर्शयती'त्येतद्ब्रुवाणेन [तेन राज्ञा ते[10]] पराभूतास्तत्स्वरूपं नृपतेर्विज्ञपयामासुः। अथ स्वामिनि सभां निभालयति तच्चित्तवेदिना[11] केनापि नियोगिनाऽञ्जलिर्बन्धनपूर्वकं[12] निजाभिप्राये प्रादुःक्रियमाणे राज्ञा रहसि तत्कारणं पृष्टो नृपतेराशयं स्वयं[13] विज्ञपयन् 'द्रव्यलक्षत्रयसाध्योऽयमर्थः' इति वाक्यविशेषमाह। तदैव दैवज्ञनिर्दिष्टे मुहूर्ते स नृपाल्लक्षत्रयमुपलभ्य वणिज्याकारो भूत्वा सर्वभाण्डानि सङ्गृह्य सिद्धसङ्केतं[14] रत्नखचितं सुवर्णपादुकायुगलमतुलं योगदण्डं च मणिमयकुण्डलयुगलं च तद्विधयोगपिशुनं योगपट्टं च चण्डांशुरोचिश्चन्द्रातकं[15] सह नीत्वा[16] पन्थानमुल्लङ्घ्य कतिपयैरहोभिस्तत्र[17] दत्तावासः; आसन्नायां[18] दीपोत्सवनिशि तन्नगरराज्ञोऽवरोधे महालक्ष्मीदेव्याः सपर्यापर्याकुलतया[19] तत्प्रासादमुपेयुषि स कृतकसिद्धपुरुषस्[20]तेन सिद्धवेषेणालङ्कृतः, केनापि सद्भ्यस्तोत्पतनेन वर्यैरेण नरेणानुगम्यमानो देव्याः पीठेऽकस्मात्प्रादुरासीत्। देव्या रत्नसुवर्णकर्पूरमयीं[21] सपर्यां विरचय्य तदवरोधाय तद्विधानि वीटकानि ददानः श्रीसिद्धराजनामाङ्कितं सिद्धवेषं पूजाव्याजात्तत्र नियोज्योत्पतनवशाद्वैरस्कन्धमधिरुह्य यथागतमगात्। निशावसानसमयेऽवरोधैः[22] स विरोधिनृपतिस्तं वृत्तान्तं[23] ज्ञापितः सन् भयभ्रान्तो[24] नृपः स्वप्रधानपुरुषैस्तं प्राभृतं सिद्धाधिपतये प्राहिणोत्। अथ तेन नियोगिना भाण्डादिक्रयविक्रयं संक्षिप्य 'ममागमनावधि नैतेषां प्रधानानां दर्शनं देयमि'ति वेगवता पुरुषेण विज्ञपयामास। तदनु झगिति कतिपयैर्दिनैस्तत्र समुपेतः, तत्स्वरूपं विज्ञप्तो नृपतिस्तेषां प्रधानानां तदुचितामावर्जनां चकार।

॥ इति कोल्लापुर[25]प्रबन्धः ॥

---

1 B अकुण्ठोत्कण्ठायमानमानसः; P अकुण्ठोत्कण्ठितमानसः। 2 A स च देवमादिदेश। 3 D कृत्वं। 4 D नास्त्येतत्पदम्। 5 D ०ऽन्यस्मिन्नपि। 6 P म्लेच्छप्रधानाः। 7 B विसृष्टाः। 8 P 'अथ' इत्येव। 9 A कोल्लाकपुरः; P कोल्लपुर। 10 D पुस्तके पूर्वेते शब्दाः प्राप्यन्ते। 11 B ०निवेदिना; P ०विदा; D तच्चित्तवेदिना। 12 P अञ्जलिं बद्ध्वा। 13 D नास्ति 'स्वयं'। 14 D ०सङ्केत। 15 AB ०चण्डातकं। 16 P गृहीत्वा। 17 D तत्पुरे। 18 BP समासन्नायां। 19 AD पूजार्थं। 20 AD सिद्धरूपः। 21 ABD रत्नमय०। 22 AD ऽवरोधैस्तं। 23 AD ०नृपवृत्तान्तं। 24 P ०भ्रान्तस्तं प्राभृतं; B ०भ्रान्तः सुप्रधानैस्तं। 25 D ०पुरराजप्रबन्धः।

१२०) श्रीसिद्धराजेन मालवमण्डलाद्यशोवर्मा नृपतिर्निबध्यानीतः । अवसरे क्रियमाणे सीलणाभिधानेन कौतुकिना 'बेडायां समुद्रो मग्न' इति तत्पृष्ठगायनेनापशब्दं ब्रूपे इति तर्जितो बेडासमानायां गूर्जरधरित्र्यां मालवकन्नृपतिसमुद्रो मग्न इति विरोधालङ्कारमर्थापत्त्या परिहरन् प्रभोर्हेममयीं जिह्वां प्राप ।

॥ इति कौतुकीसीलणप्रबन्धः ॥

१२१) कदाचित्सिद्धराजस्य वाग्मी कश्चित्सान्धिविग्रहिको जयचन्द्रनाम्ना कासिपुरीश्वरेण श्रीमदणहिल्लपुरस्य प्रासादप्रपानिपानादिस्वरूपाणि पृच्छतेति दूषणमुक्तम्–'यत्सहस्रलिङ्गसरोवरवारि †शिवनिर्माल्यतयाऽस्पृश्यतया सेवमानो लोकद्वयविरोधेन तत्र वास्तव्यो लोकः† कथमुदितोदितप्रभावः स्यात् ? । सिद्धाधिपेन सहस्रलिङ्गसरः कारयताऽनुचितमिदमाचरितमि'ति तस्य नृपतेर्वचसाऽन्तः कुपितः स नृपं पप्रच्छ–'अस्यां वाणारस्यां कुतस्त्यं पयः पीयते ?' नृपेण 'त्रिपथगाजलमि'त्यभिहिते 'किं नाम सुरसरिन्नीरं शिवनिर्माल्यं न ? यतः शिवोत्तमाङ्गमेव गङ्गानिवासभूमिः ।'

॥ इति जयचन्द्रराज्ञा समं गूर्जरप्रधानस्योक्तिप्रत्युक्तिप्रबन्धः ॥

१२२) कस्मिन्नप्यवसरे कर्णाटविषयादागतेन सान्धिविग्रहिकेण श्रीमयणल्लदेव्या पितुर्जयकेशिराज्ञः कुशलोदन्ते पृष्टेऽश्रुमिश्रलोचन इति विज्ञपयामास–'स्वामिनि ! सुगृहीतनामा श्रीजयकेशिमहीमहीन्द्रोऽशनावसरे पञ्जरात्क्रीडाशुकमाकारयन्, तेन मार्जार इत्युच्चरिते नृपः परितो विलोक्य निजभोजनभाजनाधोभागवर्तिनमोतुमपश्यन्, "यदि तव बिडालपालेन विनाशः स्यात्तदाहं त्वया सहगमनं करवाणी"ति प्रतिज्ञाते स यावत्पञ्जरादुड्डीय तस्मिन्काञ्चनभाजने निषीदति तावदकस्मात्तेन वृकदंशेन तं विनाशितमवलोक्य परित्यक्ताशनकवलः, उक्तियुक्तिवेदिना राजवर्गेण निषिध्यमानोऽपि–

१६९. राज्यं यातु श्रियो यान्तु यान्तु प्राणा अपि क्षणात् । या मया स्वयमेवोक्ता वाचा मा यातु शाश्वती ॥
इतीष्टदेवतमिव तामेव गिरं जपंस्तेनैव शुकेन सह दारुनिचितां चितां विवेश ।' इति वाक्याकर्णनाच्छोकाम्भोधिमग्नां श्रीमयणल्लदेवीं विशेषधर्मोपदेशहस्तावलम्बनेन विद्वज्जनः समभ्युद्दधार ।

१२३) अथ पितुः श्रेयसे श्रीसोमेश्वरपत्तने यात्रां गता सती सा सती त्रिवेदीवेदिनं कमपि ब्राह्मणमाकार्य तदञ्जलौ जलन्यासावसरे 'यदि भवत्रयपातकं ददासि तदा आददामि नान्यथे'ति तद्वचनविशेषपरितोषभाक् गजाश्वकाञ्चनादिभिर्दानैर्युतं पापघटमाददौ । स च तत्सर्वं विप्रेभ्यो ददानः किमिति देव्या पृष्टः प्राह–'प्राक्तनपुण्योपचयादस्मिन् जन्मनि नृपप्रिया-नृपतिजननी भूत्वा लोकोत्तरैरेभिर्दानैः सुकृतैर्भावी भवोऽपि श्रेयस्कर इति विमृश्य भवत्रयपातकं मया जगृहे । भवत्या पापघटदाने उपक्रान्ते कश्चिदधमद्विजोऽपि पापघटं नीत्वा, स्वं भवतीं च

1 P अथ श्री० । 2 P ०धरायां । 3 P नृपास्सुवर्णमयीं । 4 P जयन्तचन्द्र० । † एतदन्तर्गतपाठस्थाने D पुस्तके 'शिवनिर्माल्यं तदस्पृश्यतया तत्सेवकः भवो लोकद्वयविरोधिनस्तत्रत्यलोकः' एतादृशः पाठः । 5 P कुद्धः । 6 D ०राजेन । 7 D नास्ति 'प्रत्युक्ति' । 8 P ०भागतान् । 9 P ०विग्रहिकान् । 10 D ०लोचनेनेति सा । 11 D ०भोजनान्धोऽधो । 12 AD बिडालेन । 13 B नास्ति । 14 P स्मरन् । 15 AD नास्ति 'सा सती' । 16 D त्रिवेदिनं । 17 AD दानं । 18 D ददासि । 19 D ०र्दानैर्युतं । 20 AP पुण्योदयात्, D पुण्यात् ।

भवाम्भोधौ मज्जयिष्यतीति मया तु संन्यस्तसमस्तवित्तेन वित्तमेतदादाय पुनर्ददता लब्धादष्टगुणं पुण्यं लब्धमिति श्रेयः सञ्जगृहे ।[1]

॥ इति पापघटस्य प्रबन्धः ॥

१२४) अथ कदाचिन्मालवकमण्डलं विगृह्य स्वदेशनिवेशं प्रति प्रचलितः श्रीसिद्धाधिपोऽन्तराले स अप्रतिमल्लैर्भिल्लैर्निरुद्धमध्वानमवधार्य तस्मिन्वृत्तान्ते ज्ञाते सति मन्त्री सान्तूनामा प्रतिग्रामं प्रतिनगरं घोटकमुद्राद्य प्रतिवृषं पर्याणानि विन्यस्य मेलितातिदलस्तद्बलेन[2] भिल्लान्विद्राव्य श्रीसिद्धराजं सुखेन स्वदेशं[3] समानीतवान् ।

॥ इति सान्तूमन्त्रिबुद्धिप्रबन्धः[4] ॥

१२५) अथ कस्याञ्चिन्निशि द्वावकुण्ठौ वण्ठौ श्रीसिद्धनरेश्वरस्य चरणसंवाहनाव्यापृतौ तं निद्रामुद्रितलोचनं विचिन्त्य, तदाद्यो निग्रहानुग्रहसमर्थं श्रीसिद्धराजं सेवकजनकल्पवृक्षं सर्वराजगुणनिलयं प्रशशंस । अपरस्त्वस्यापि भूपतेः प्राज्यराज्यप्रदं प्राक्तनं कर्मैव श्लाघितवान् । एवमाकर्णितेन राज्ञा[5] तस्मिन्वृत्तान्ते तत्कर्मणः प्रशंसां विफलीकर्तुं स्वप्रशंसाकारिणः प्रेष्यस्यापरस्मिन्नहन्यऽनिवेदिततत्त्वस्य प्रसादलेखमार्पयत्—'यदस्मै वण्ठाय तुरङ्गमशतस्य सामन्तता[6] देया' इत्यालिख्य तं महामात्यश्रीसान्तूपार्श्वे प्राहिणोत् । अथ स यावच्चन्द्रशालाया निःश्रेण्यामवरोहति तावत्प्रस्खलितपदः[7] पृथिव्यां पतदीपदङ्गभङ्गमङ्गीकृतवान् । तत्पृष्ठानुगामिनाऽपरेण वण्ठेन किमेतदिति पृष्टस्तेन स्वस्वरूपे निवेदिते स मञ्चकन्यस्तो गृहं गत्वा तं प्रसादलेखमपरस्मै[8] समर्पितवान् । तत्प्रमाणेन महामात्यस्तस्मै शततुरङ्गमसामन्ततां ददौ । अथानयोर्यथावद्वृत्तान्तेऽवधारिते नृपतिः कर्मैव बलीय इति तत्प्रतिमेने ।

१७०. नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं विद्या न चापि मनुजेषु कृता न सेवा[9] ।
पुण्यानि[10] पूर्वतपसा किल[11] सञ्चितानि काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥

॥ इति वण्ठकर्मप्राधान्यप्रबन्धः ॥

१७१. सो जयउ कूडवरडो[12] तिहुयणमज्झम्मि जेसलनरिन्दो । छित्तूण रायवंसे[13] इक्कं[14] छत्तं कयं जेण ॥

१७२. *महालयो महायात्रा महास्थानं महासरः । यत्कृतं सिद्धराजेन क्रियते तन्न केनचित्[15] ॥

१७३. मात्रयाप्यधिकं किञ्चिन्न सहन्ते जिगीषवः । इतीव त्वं धरानाथ ! धारानाथमपाकृथाः ॥

१७४. मानं मुञ्च सरस्वति त्रिपथगे सौभाग्यभङ्गीस्त्यज रे कालिन्दि तवाफला कुटिलता रेवे रयस्त्यज्यताम् ।
श्रीसिद्धेशकृपाणपाटितरिपुस्कन्धोच्छलच्छोणितस्रोतोजातनदीनवीनवनितारक्तोऽम्बुधिर्वर्त्तते ॥

१७५. [16]श्रीमज्जयसिंहमृगारिदेवनृपते सत्यं प्रयाणोत्सवे पानीयाशयशोषणैः करटतो वीरव्रणाकाङ्क्षया ।
स्वीयस्वीयपतेर्विनाशसमयं सञ्चिन्त्य चिन्तातुरा मत्सी रोदिति मक्षिका च हसति ध्यायन्ति वामं स्त्रियः ॥

---

1 B 'सान्तू' इत्येव; P सान्तू इति नामा । 2 AD ०दलबलेन । 3 D 'स्वदेश' नास्ति । 4 P सान्तूबुद्धिप्रबन्धः; D बुद्धिवैभव० । 5 P भूभुजा । 6 P सामन्तपदं देयं । 7 P तावत्तत्र स्खलित० । 8 AD नास्ति 'प्रसादलेखं' । 9 P विद्यापि नैव नहि चैव कृतापि सेवा; B विद्या न चापि न च जन्मकृतापि सेवा । 10 B भाग्यानि; P कर्माणि । 11 P चिर । 12 A कूडगोलो; D कूडवरडो; Dd नरडो । 13 P पहुवीमज्झि । 14 AD रायवंसं । 15 P पुहं । * D पुस्तके नैतत्पद्यमत्र लभ्यते । 16 A 'इदं नान्यनुचेत तत्' पद्याद्योऽयं पाठः । D पुस्तक एवेदं पद्यं प्राप्यते ।

१७६. §सपादलक्षः सह भूरिलक्षैरानाकभूपाय नताय दत्तः।
दत्ते यशोवर्मणि मालवोऽपि त्वया न सेहे द्विषि सिद्धराज ॥

–इत्याद्या बहुशः स्तुतयः प्रबन्धाश्च तदीया ज्ञेयाः[1]।

‡संव० ११५० पूर्वं श्रीसिद्धराजजयसिंहदेवेन वर्षे ४९ राज्यं कृतम्।

॥ इति श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिते[2] प्रबन्धचिन्तामणौ श्रीकर्ण-श्रीसिद्धराजचरित्र-वर्णनो[3] नाम तृतीयः प्रकाशः ॥ ग्रंथाग्र ५७४ ॥

(अत्र P प्रतौ निम्नलिखिता श्लोका अधिकाः प्राप्यन्ते–)

{तदुपश्लोकनश्लोका यथा–

[१०६] शिशुनापि शुनासीरवीरश्रुचिमतीयुषा। कृपा भुजिष्यता नीताः पिशुना येन भूभुजः ॥

[१०७] अपारपौरुषोदारं खङ्गार गुरुमत्सरः। सौराष्ट्रं पिष्टवानाजौ करिणं केसरीव यः ॥

[१०८] असंख्यहरिसैन्येन प्रक्षिप्तानेकभूभृता। बद्धः सिन्धुपतिर्येन वैदेहीदयितेन वा ॥

[१०९] अमर्षणं मनः कुर्वन् विपक्षोर्वीभृदुन्नतौ। अगस्त्य इव यस्तूर्णमर्णोराजमशोषयत् ॥

[११०] गृहीत्वा दुहिता तूर्णमर्णोराजस्य विष्णुना। दत्तानेन पुनस्तस्मै भेदोऽभूदुभयोरयम् ॥

[१११] द्विषां शीर्षाणि लूनानि दृष्ट्वा तत्पादयोः पुरः। चक्रे शाकम्भरीशोऽपि शङ्कितः प्रणतं शिरः ॥

[११२] मालवस्वामिनः प्रौढलक्ष्मीपरिवृढः स्वयम्। समित्यपरमारो यः परमारममारयत् ॥

[११३] क्षिप्त्वा धारापतिं राजशुकं तत्काष्ठपञ्जरे। यः काष्ठापञ्जरे कीर्तिराजहंसीं न्यवीविशत् ॥

[११४] एकैव जगृहे धारा नगरी नरवर्मणः। दत्ता येनाश्रुधारास्तु तद्वधूना सहस्रधा ॥

[११५] धाराभङ्गप्रसङ्गेन यस्यासवस्य शङ्कितः। आघूर्णकमिषाद्दण्डं महोदयपतिर्ददौ ॥

[११६] सुधेव वसुधा लब्धुं वाञ्छिता येन विद्विषा। यशोभ्रमदसिर्बाहू राहुचक्रे तमाहवे ॥

[११७] जनेन मेने यः स्वामी कुमार इव शक्तिमान्। ताम्रचूडध्वजः सोऽभूत् किन्तु केकिध्वजः परः ॥

[११८] येन विश्वैकवीरेण न स राजा जितो न यः। काष्ठा कापि न सा यस्य यशोभिः शोभिता न या ॥

[११९] गणेशस्येव यस्याग्रपुष्करस्य बृपस्थितेः। आज्यसारः करस्थोऽभूद् गौडो मोदकवन्नृपः ॥

[१२०] श्मशाने यातुधानेन्द्रं बद्ध्वा बर्बरकाभिधम्। सिद्धराजेति राजेन्दुर्यो जज्ञे राजराजिषु ॥

[१२१] रजोभिः समरोद्भूतैर्यत्पुरा मलिनीकृतम्। तत्पश्चात्कीर्तिकल्लोलैर्येन क्षालितमम्बरम् ॥

[१२२] महीमण्डलमार्तण्डे तत्र लोकान्तरे गते। श्रीमान् कुमारपालोऽथ राजा रञ्जितवान् प्रजाः ॥}



§ AD आदर्श एवेदं पद्यं लभ्यते। 1 P आदर्शे एवैष शब्दः। ‡ AD आदर्शे इयं पंक्तिः "संव० ११५० वर्षे उपविष्टो जयसिंहदेवः। तथा तेन राज्ञा वर्षं ४९ राज्यं कृतम्।" एतादृशी लभ्यते। 2 P ॰चार्योविकृते। 3 AD श्रीकर्णश्रीसिद्धराजयोर्विविधचरितनानावदातवर्णनो।

[९. कुमारपालादिप्रबन्धः ।]

१२६) अथ परमार्हतश्रीकुमारपालप्रबन्धः[1] प्रारभ्यते—श्रीमदणहिलपुरपत्तने बृहति श्रीभीमदेवे[2] साम्राज्यं प्रति[3]पालयति, श्रीभीमेश्वरस्य पुरे बकुलदेवीनाम्नी[4] पण्याङ्गना पत्तनप्रसिद्धं[5] गुणपात्रं रूपपात्रं[6] च । तस्याः[7] कुलयोषितोऽप्यतिशायिनीं प्राज्यमर्यादां नृपतिर्विमृश्य[8] तद्वृत्तपरीक्षानिमित्तं[9] सपादलक्षमूल्यां क्षुरिकां निजानुचरैस्तस्यै ग्रहणके दापयामास । औत्सुक्यात्तस्यामेव निशि बहिरावासे प्रस्थानलग्नमसाधयत् । नृपो वर्षद्वयं यावन्मालवकमण्डले विग्रहाग्रहात्तस्थौ । सा तु बकुलदेवी तद्दत्तग्रहणकप्रमाणेन तद्वर्षद्वयं परिहृतसर्वपुरुषा शीललीलयैव तस्थौ । निस्सीमपराक्रमो भीमस्तृतीये[10] वर्षे स्वस्थानमागतो जनपरम्परया तस्यास्तां प्रवृत्तिमवगम्य[11] तामन्तःपुरे न्यधात् । तदङ्गजो हरिपालदेवः, तत्सुतस्त्रिभुवनपालः, तत्पुत्रः कुमारपालदेवः । स तु अविदितधर्मोऽपि कृपापरः परनारीसहोदरश्च । स तु सामुद्रिकवेदिभिः 'भवदनन्तरमयं नृपो भविष्यती'ति सिद्धनृपो विज्ञस्तस्मिन्हीनजातावित्यसहिष्णुतया विनाशावसरं सततमन्वेषयामास । स कुमारपालस्तं वृत्तान्तमीषद्विज्ञाय तस्मान्नृपतेः शङ्कमानमानसः तापसवेषेण निर्मितनानाविधदेशान्तरभ्रमणैः[12] कियन्त्यपि वर्षाण्यतिवाह्य पुनः पत्तनमागतः । क्वापि मठे[13] तस्थौ ।

१२७) अथ श्रीकर्णदेवस्य श्राद्धावसरे श्रद्धालुतया निमन्त्रितेषु सर्वेष्वपि तपस्विषु श्रीसिद्धराजः प्रत्येकं तेषां तपस्विनां स्वयं पादौ प्रक्षालयन् कुमारपालनाम्नस्तपस्विनः कमलकोमलौ चरणौ करतलेन संस्पृश्य तदूर्ध्वरेखादिभिर्लक्षणै राज्यार्होऽयमिति निश्चलया दृशाऽपश्यत् । तदिङ्गितैस्तं विरुद्धं बुध्यमानैस्तदैव वेषपरावर्तेन काकनाशं नष्टः । आलिगनाम्नः कुलालस्यालये मृत्पात्राणामापाके[15] रच्यमाने तदन्तर्निधाय तदानुपदिकेभ्यो राजपुरुषेभ्यो[16] रक्षितः । स क्रमात्ततः सञ्चरन् तद्विलोकनाकुलेन राजलोकेन आसितः सन्निहितां दुर्गमां दुर्गभूमिमनवलोक्य क्वापि क्षेत्रे ध्वाङ्क्षरक्षकैः[17] क्रियमाणे[18]च्छिन्नकण्टकिशाखिशाखानिचये समुपचीय[19]माने तं तदन्तर्निधाय तेषु स्वस्थानमागतेषु[20] पदिकेन तत्रानीते पदे सर्वथा तत्रासम्भावनया कुन्ताग्रेण भेद्यमानेऽपि तस्मिंस्तमनासाद्य व्यावृत्ते राजसैन्ये, द्वितीयेऽहनि क्षेत्राधिकृतैस्ततः स्थानादुद्धृतः पुरतः क्वापि प्रातरान्तव्रजन् क्वापि तरुच्छायायां विश्रान्तः सन्, बिलान्मूषकं मुखेन रूप्यनाणकमाकर्षन्तं निभृततया[21] विलोक्य, यावदेकविंशसंख्यानि दृष्ट्वा पुनस्तेभ्य एकं गृहीत्वा तस्मिन्[22] बिलं प्रविष्टे पाश्चात्यानि तु सर्वाणि स गृहीत्वा यावन्निभृतीभवति तावत्स तान्यनवलोक्य तदग्रे विपेदे । स तच्छोकव्याकुलितमानसश्चिरं परितप्य पुरतो व्रजन्, कयापीभ्यवध्वा श्वशुरगृहात्पितृगृहं व्रजन्त्या, पथि पाथेयाभावाद्दिनत्रयं क्षुत्क्षामकुक्षिर्भ्रातृवात्सल्यात्कर्पूरपरिमलशालिशालिकरम्बेण सुहितीचक्रे ।

१२८) तदनु स विविधानि[23] देशान्तराणि परिभ्रमन्[24] स्तम्भतीर्थे मह० श्रीउदयनपार्श्वे शम्बलं याचितुमागतः । तं पौषधशालास्थितमाकर्ण्य तत्रागते तस्मिन्नुदयनेन पृष्टः श्रीहेमचन्द्राचार्यः

1 P कुमारभूपालचरित्रं । 2 P श्रीभीमे । 3 AD 'प्रति' नास्ति । 4 D चउलादेवी० । 5 AD पत्तने । 6 B नास्ति । 7 D नास्ति । 8 P विमृश्य । 9 B तद्वृत्तान्त० । 10 P 'तृतीये वर्षे' स्थाने 'कृत्वी' । 11 P अवबुध्य । 12 BP 'भ्रमण' नास्ति । 13 BP श्रीजनार्दननृपतेः भवाते मठे । 14 B मन्यमानः । 15 D पाके । 16 D वास्त्वेतत्वं । 17 AD क्षेत्ररक्षकैः । 18 B क्रियमाणे । 19 B समुचीय० । 20 BP स्वालभाजिषु । 21 D निभृततया दृष्ट्वा । 22 AD नास्ति । 23 BP विविधान् देशान् । 24 BP ०भ्रम्य । 25 AD व्याकुलमानस० ।

त्यजसी'ति भाषमाणो मर्तुकाम औषधमिव तद्वचः पथ्यमपि न जग्राह । नृपस्तदाकारसंवरणे नाऽपन्हवं[1] विधायाऽपरस्मिन्दिवसे नृपसङ्केतितैर्मल्लैस्तदङ्गभङ्गं कृत्वा नेत्रयुगं[2] समुद्धृत्य च [3]तं तदावासे प्रस्थापयामास ।

१७८. आदौ मयैवायमदीपि नूनं न तद्दहेन्मामवहेलितोऽपि ।
इति भ्रमादङ्गुलिपर्वणापि स्पृश्येत नो दीप इवावनीपः ॥

इति विमृशद्भिः समन्ततः सामन्तैर्भयभ्रान्तचित्तैस्ततः प्रभृति स नृपतिः प्रतिपदं सिषेवे ।

१३१) तेन राज्ञा पूर्वोपकारकर्तुः श्रीमदुदयनस्याङ्गजः श्रीवाग्भटदेवनामा महामात्यश्चक्रे । आलिगनामा ज्यायान्प्रधानः, महं० उदयनदेवश्च[4] ।

१३२) चाहडनामा कुमारः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नपुत्रः श्रीकुमारपालदेवस्याज्ञामवमन्यमानः सपादलक्षीयभूपतेः[5] पत्तिभावं बभार । तेन श्रीकुमारपालभूपालेन सह विग्रहं चिकीर्षुणा तत्रत्यं सकलमपि सामन्तलोकं लञ्चोपचारदानादिना[6] स्वायत्तीकृत्य दुर्वारस्कन्धावारोपेतं सपादलक्षक्षोणीपतिं सहादाय देशसीमान्तमागतः । अथ चौलुक्यचक्रवर्त्ती अभ्यमित्रीणतया स्कन्धावारसमीपे निजं चमूसमूहं निवेशयामास । निर्णीते समरवासरे निष्कण्टके क्रियमाणे सीमनि सज्जीक्रियमाणायां चतुरङ्गसेनायां चउलिगनामा पट्टहस्तिनो हस्तिपकः कस्मिन्नप्यागसि[7] नृपेणाक्रुश्यमाणः क्रोधादङ्कुशं तत्याज[8] । अथ सामलनामाऽमात्रगुणपात्रं महामात्रो दुकूलवसुदानपूर्वकं तत्पदे नियोजितः सन् राज्ञा, स कलहपञ्चाननामानमनेकपं प्रक्षरितं[9] कृत्वा तदुपरि नृपासनं निवेश्य तत्र षट्त्रिंशदायुधानि नियोजयन्सकलकलाकलापसम्पूर्णः[10] कलापके चरणौ नियोज्य स्वयमारूढवान् । तदासनस्थचौलुक्यभूपालोऽपि सङ्ग्रामाधिकृतपुरुषैरुत्थापनिकां कार्यमाणेषु सामन्तेषु [11]'चाहडकुमारभेदादाज्ञाभङ्गकारिषु'-इति सैन्यविप्लवमाकलय्य तं निषादिनमादिदेश[12] । सम्मुखसेनायां सपादलक्षक्षितिपतिर्मतङ्गजच्छ[13]द्मसङ्केतादुपलक्ष्य विघटिते कटकबन्धे मयैवैकाकिना योद्धव्यमिति निर्णीय तेनाधोरणेन स्वं सिन्धुरं तत्सन्निधौ नेतुमादिशन्नपि तमपि तथाऽकुर्वाणं विलोक्य 'कथं[14] त्वमपि विघटितोऽसी'त्यादिशंस्तेन विज्ञपयांचक्रे-'स्वामिन्! कलहपञ्चाननो हस्ती सामलनामा हस्तिपकश्च द्वयं युगान्तेऽपि न विघटते, परं परस्मिन्कुम्भिकुम्भे चाहडनामाकुमारस्तारध्वनिरधिरूढोऽस्ति यस्य हक्कया हस्तिनोऽपि भज्यन्ते।' अतं[15] उत्तरीयाञ्चलयुगलेन[16] सिन्धुरश्रवणौ[17] पिधाय स निजं गजं प्रतिगजेन समं[18] संघट्टयामास । अथ चाहडः पूर्वमात्मसात्कृतं चउलिगनामानमारोहकं जानन् कृपाणिकापाणिः श्रीकुमारपालविनाशाशया, निजगजात्कलहपञ्चाननकुम्भे पदं ददानः तेन यन्त्रा पश्चात्कृते गजे स भूमीपतितस्तत्पक्षीयपदातिभिरधारि । तदनु चौलुक्यभूपतिना श्रीमदानाकनामा सपादलक्षनृपः[19] 'शस्त्रसज्जो भवे'त्यभिहितस्तन्मुखकमलं प्रति औचित्याच्छिलीमुखं व्यापारयन् 'प्रधानः क्षत्रियोऽसी'ति सोपहासश्लाघया तं वञ्चयित्वा नाराचेन निर्भिद्य कुम्भीन्द्रकुम्भे पातयित्वा

1 P भान्तुय । 2 P नयनयुगलं । 3 D ततः । 4 A उदयनदेवस्य पुत्र (D पुत्रो) चाहड० । 5 P क्षितिपतेः । 6 D शनैः । 7 BP केनापि आगसा नृपतिना । 8 BP उत्ततांपकार । 9 D पुष्कल० । 10 BP ०परिपूर्णः । 11 B चाहड० । 12 BP सादिनं । 13 D ०च्छद्मस्य पुरो यन्तुं । 14 D ०उत्तरचामर० । 15 D नास्ति । 16 D रज्जु० । 17 BP ०युगलं । 18 BP ०श्रवणयोरपिधाय । 19 AD नास्ति । 20 BP 'नृपतिः' इत्येव ।

जितं जितमिति ब्रुवाणः स्वयं पोतं भ्रमयांचकार । इति सर्वेषां सामन्तानां सर्वानपि तुरङ्गमान् स नृपतिराक्रम्य जग्राह ।

॥ इति चाहडकुमारप्रबन्धः ॥

१३३) तदनु चौलुक्यराज्ञा कृतज्ञचक्रवर्तिना आलिगकुलालाय सप्तशतीग्राममिता विचित्रा चित्रकूटपट्टिका ददे । ते तु निजान्वयेन लज्जमाना अद्यापि सगरा इत्युच्यन्ते । यैश्च छिन्नकटकान्तरे प्रक्षिप्य क्षितिपो रक्षितस्तेऽङ्गरक्षकपदे प्रतिष्ठिताः ।

१३४) अथ[1] सोलाकनामा गन्धर्वोऽवसरे गीतकलया परितोषिताद्राज्ञः प्रसादे[2] षोडशाधिकं द्रम्माणां शतं प्राप्य, तैः[3] सुखभक्षिकां विसाध्य तया[4] बालकांस्तर्पयन् कुपितेन राज्ञा निर्वासितः । [5]ततो विदेशं गतस्तत्रत्यभूपतेर्गीतकलया अतुलया[5] रञ्जितात्प्रसादप्राप्तं गजयुगलमानीयोपायनीकुर्वन्[5] चौलुक्यभूपालेन सम्मानितः ।

१३५) कदाचित्कोऽपि वैदेशिकगन्धर्वो 'मुषितोऽस्मि मुषितोऽस्मी'ति तारं[6] पुत्कारावं कुर्वाणः, 'केन मुषितोऽसी'ति राज्ञाभिहितो 'ममातुलया गीतकलया [7]समीपागतेन, मया कौतुकाज्ञलन्यस्तकनकशृङ्खलेन[7] त्रस्यता मृगेण' इति विज्ञपयामास । तदनु भूपतिना समादिष्टः सोलाभिधानो गन्धर्वराडटवीमटन् स्फीतगीताकृष्टिविद्यया कनकशृङ्खलाङ्कितगलं[8] मृगं नगरान्तः समानीय तस्य भूपतेर्दर्शयामास ।

१३६) अथ तत्कलाकौशलचमत्कृतमानसः प्रभुः श्रीहेमाचार्यो गीतकलाया अवधिं पप्रच्छ । स तु शुष्कदारुणः पल्लवप्ररोहमवधिं विज्ञपयान् । 'तर्हि तत्कौतुकं[9] दर्शये'त्यादिष्टः, अर्बुदाद्रिरेविरहकनामानं वृक्षमाक्षेपादानाय्य तच्छुष्कशाखाखण्डं[9] राजाङ्गणे कुमारमृत्तिकया[10] क्षुप्तालवाले निवेश्य[11] निजया नवगीतगीतिकलया सद्यः प्रोल्लसत्पल्लवं तं निवेदयन्, सनृपतीन् भट्टारकश्रीहेमचन्द्रसूरीन्[13] परितोषयामास ।

॥ इति [14]वइकारसोलाकप्रबन्धः ॥

१३७) अथ कदाचित्सर्वावसरस्थितश्चौलुक्यचक्रवर्ती[15] कौङ्कणदेशीयमल्लिकार्जुनाभिधानराज्ञो मागधेन "राजपितामह" इति विरुदमभिधीयमानमाकर्ण्य तदसहिष्णुतया सभां निभालयन्नृपचित्तविदा मन्त्रिणा[16]ऽम्बडेन योजितकरसम्पुटं दर्शयता चमत्कृतः, सभाविसर्जनानन्तरमञ्जलिबन्धस्य कारणं पृच्छन्नेवमवादीत्[17]–'यदस्यां सभायां स कोऽपि सुभटो[18] विद्यते यं प्रस्थाप्य मिथ्याभिमानिनं चतुरङ्गनृपवन्नृपाभासं मल्लिकार्जुनं विनाशयामः–इत्याशयविदा मया त्वदादेशक्षमेण चाञ्जलिबन्धश्चक्रे[19]' इति तद्[20]विज्ञप्तिसमनन्तरमेव तं नृपं प्रति प्रयाणाय दलनायकीकृत्य पञ्चाङ्गप्रसादं दत्त्वा समस्तसामन्तैः समं विससर्ज । स चानवच्छिन्नैः प्रयाणैः कुङ्कुणदेशमधिगम्य[21] दुर्वारवारिपूरां कलविणिनाम्नीं सरितमुत्तरन् परस्मिन्कूले आवासेषु दीयमानेषु तं

1 BP Dc तस्य चौलुक्यराज्ञः पट्टाभिषेकानन्तरं स सोलाकनामा । 2 D नास्ति । 3 D तेन । 4 D नास्ति । 5 एतद्-इत्यन्तपाठस्थाने P प्रती एतादृशः पाठः–'तन्निर्भर्त्सनया विदेशे गतः सकरेणुं करेणु सकलया रञ्जितापरत्रभूपतेर्लब्धा समानीय० ।' 5 B आदर्शे पूर्वे पदं विद्यते । 6 P सोत्तारितं । 7–7 BP सामीप्यमुपेयुषा कौतुकार्पितकनकशृङ्खलेन । 7 BP गलन्यस्तकनकशृङ्खलं । 8 P तत्कौतुकं । 9 AD शाखायाः काष्ठं । 10 BP ०मृत्तिकापूरा०, B ०मृत्तिकामिश्रिता० । 11 P विन्यस्य । 12 D द्वितीयः 'गीत' शब्दो नास्ति । 13 B हेमाचार्यान्; P हेमचन्द्राचार्यान् । 14 P वइकार; D भण्डइकार । 15 P सूर्पारः । 16 P नास्ति । 17 D एवमूचे; P पूर्वं तेन प्रोचे । 18 P नास्ति 'सुभट.' । 19 P बन्धोऽकारि । 20 'तद्' नास्ति AD । 21 D इत्यमेवेरित्वा । 22 P आसाद्य ।

संग्रामसज्जं विमृश्य स मल्लिकार्जुननृपतिः प्रहरंस्तत्सैन्यं त्रासयामास। अथ तेन पराजितः स सेनापतिः[1] कृष्णवदनः कृष्णवसनः कृष्णच्छत्रालङ्कृतमौलिः कृष्णगुडदरे निवसन्, चौलुक्यभूभुजा विलोक्य 'कस्यासौ सेनानिवेशः?' इत्यादिष्टे 'कुङ्कुणात्प्रत्यावृत्तस्य पराजितस्याम्बडसेनापतेः सेनानिवेशोऽयमि'ति विज्ञप्ते, तस्य [2]त्रपया चमत्कृतचित्तः प्रसन्नया[3] दृशा तं सम्भावयं[4]स्तदपरैर्बलवद्भिः सामन्तैः समं मल्लिकार्जुनं जेतुं पुनः प्रहितः। [[5]स तु कौङ्कणदेशं प्राप्य] तां नदीमासाद्य पद्याबन्धे विरचिते तेनैव पथा यथानुक्रमं[6] सैन्यमुत्तार्य सावधानवृत्त्याऽसमसमरारम्भे हस्तिस्कन्धाधिरूढं वीरवृत्त्या मल्लिकार्जुनमेव निश्चलीकुर्वन्[7] स आम्बडः सुभटो दन्तिदन्तमुशलसोपानेन कुम्भिकुम्भस्थलमधिरुह्य मायद्युद्धमरणरसः 'प्रथमं प्रहर, इष्टदैवतं वा स्मर' इत्युच्चरन् धारालकरालकरवालप्रहारान्मल्लिकार्जुनं पृथ्वीतले पातयन् सामन्तेषु तन्नगरलुण्ठनव्यापृतेषु केसरिकिशोरः करिणमिव लीलयैव जघान। तन्मस्तकं स्वर्णेन[10] वेष्टयित्वा तस्मिन्देशे चौलुक्यचक्रवर्त्तिन आज्ञां दापयन् श्रीमदणहिल्लपुरं प्राप्य सभानिषण्णेषु द्वासप्ततिसामन्तेषु स्वामिनः श्रीकुमारपालनृपतेश्चरणौ †तच्छिरःकमलेन पूजयामास†। तथा[11] वस्तु ४-शृङ्गारकोडीसाडी १, माणिकड पछे[व]डउ २, पापखउ हारु ३, संयोगसिद्धि सिप्रा ४; तथा हेमकुम्भा ३२, मूडा ९ मौक्तिकानां, सेडउ चतुर्दन्तहस्ति १, पात्राणां १२०, कोडीसार्द्धं १४ द्रव्यस्य दण्डः§। एतैर्वस्तुभिश्च सह। तदवदातप्रीतेन राज्ञा श्रीमुखेन श्रीमदाम्बडाभिधानमहामण्डलेश्वरस्य "राजपितामह" इति विरुदं ददे।

॥ इति आम्बडप्रबन्धः ॥

१७८) अथ कदाचिदणहिल्लपुरे भट्टारक[12]श्रीहेमचन्द्रसूरयो दत्तव्रतायाः पाहिणिनाम्न्याः स्वमातुः परलोकावसरे कोटिनमस्कारपुण्ये दत्ते व्यापत्तेरनु तत्संस्कारमहोत्सवे क्रियमाणे त्रिपुरुषधर्मस्थानसंनिधौ तत्तपस्विभिः सहजमात्सर्यादिमानभङ्गपमाने सूचिते सति[13] तदुत्तरक्रियां निर्माय तेनैव मन्युना मालवकसंस्थितस्य कुमारपालभूपालस्य[14] स्कन्धावारमलंचक्रुः।

१७९. आपणपई प्रभु होईयई कइ प्रभु कीजइ हत्थि। काजु[15] करेवा[16] माणुसह त्रीजउ[17] मागु न अत्थि[18] ॥

इति वचस्तत्त्वं[19] विमृशन्तः श्रीमदुदयनमन्त्रिणा नृपतेर्निवेदितागमनाः कृतज्ञमौलिमणिना[20] नृपेण[21] परोपरोधात्समीपमानीताः। तद्राज्यप्राप्तिनिमित्तज्ञानं स्मारयन्नृपः 'भवद्भिः सदैव देवतार्चनावसरेऽभ्युपेतव्यमि'त्युपरोधयन्–

१८०. भुञ्जीमहि वयं[22] भैक्ष्यं जीर्णं वासो वसीमहि। शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः॥

इति सूरिभिरभिहिते नृपः–

१८१. "एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा एका भार्या सुन्दरी वा दरी वा"।
एकं शास्त्रं वेदमध्यात्मकं वा एको देवः केशवो वा जिनो वा॥

1 P नास्ति। 2 P तद्दीपापत्रपया। 3 BP प्रसादकलितया। 4 P संभाव्य। 5 BP नास्ति कोष्ठकगतं वाक्यम्। 6 D यथाईं पदम्। 7 B कुर्वन्। 8 AD नास्ति 'सुभिट'। 9 'करालं' नास्ति BP। 10 P सुवर्णेन। † एतदन्तर्गतपाठस्थाने AD 'कोङ्कणदेशीयमनुष्यमल्लिकार्जुनशिरसा समं चरन्दं' एतादृशः पाठः। 11 AD 'नास्ति तथा वस्तु ४'। § एतदग्रे ABD आदर्शेषु 'श्रीआम्बडेनैतैर्वस्तुभिः सह तच्छिरःकमलेन पूजयामास (D पूजजे राजा)' इयं पंक्तिः। 12 D नास्त्येतत्पदं। 13 D नास्ति। 14 AD भूपतेः। 15 D होइवै। 16 AD हाथि। 17 AD काज; B काज। 18 D करिवा। 19 ABD त्रीजउ। 20 A अत्थि। 21 AD वचन तत्त्वं। 22 ABD ॰मणितया। 23 नास्ति D। 24 ABP वरं। * BP अत्र पदस्य द्व एवायः पाठो लभ्यते। 25 A 'एका भार्या पंडितायदा दिपा वा' एतादृशः पाठः।

इति महाकविप्रणीतत्वात्परलोकसमारचनाय भवद्भिः सह मैत्र्यमभिलषामी'ति व्याहरन्, अप्रतिषिद्धमनुमतमिति तस्य महर्षेः परीक्षितचित्तवृत्तिः श्रीमुखेन स नृपः स्खलनाकारिणां वेत्रिणां सर्वदूयकं[1] ददौ।

१३९) अथ तत्र गतायाते सञ्जायमाने सूरेर्गुणग्रामस्तवं कुर्वत्युर्वीपतौ पुरोधा विरोधावलिङ्गः[2] प्राह–

१८२. विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो येऽन्येऽम्बुपत्राशिनस्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
आहारं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवास्तेषामिन्द्रियनिग्रहः कथमहो दम्भः समालोक्यताम्॥

इति तद्वचनानन्तरं हेमचन्द्रः प्राह[3]–

१८३. सिंहो बली द्विरदशूकरमांसभोजी संवत्सरेण रतमेति किलैकवेलम्।
पारापतः खरशिलाकणभोजनोऽपि कामी भवत्यनुदिनं वद कोऽत्र हेतुः॥

तन्मुखमुद्राकारिणि प्रत्युत्तरेऽभिहिते सति, 'नृपप्रत्यक्षं केनापि मत्सरिणैते सिताम्बराः सूर्यमपि न मन्यन्ते[4]' इत्यभिहिते–

१८४. अधाम धामधामार्कं[5] वयमेव हृदि[6] स्थितम्। यस्यास्तव्यसने जाते[7] त्यजामो भोजनं वयः॥

इति प्रामाण्यनैपुण्याद्वयमेव सूर्यभक्ता नैते तत्त्वतः। इति[8] तन्मुखबन्धे जाते कदाचिद्देवतावसरक्षणे सौधमागते मोहान्धकारधिक्कारचन्द्रे श्रीहेमचन्द्रे यशश्चन्द्रगणिना रजोहरणेनासनपट्टं प्रमार्ज्य कम्बले तत्र निहिते, अज्ञाततत्त्वतया किमेतदिति नृपेण पृष्टः प्राह–'कदाचिदिह कोऽपि जन्तुर्भवति तदाबाधापरिहारायाऽसौ प्रयत्नः।' 'यदा प्रत्यक्षतया जन्तुर्निरीक्ष्यते तदैवेदं युज्यते नापरथा, वृथाप्रयासहेतुत्वादि'ति युक्तियुक्तां नृपोक्तिमाकर्ण्य तैः सूरिभिरभिदधे–'भवतां गजतुरगाद्या चमूः किं प्रतिनृपतिरिपावुपस्थिते क्रियते उत पूर्वमेव? यथायं राजव्यवहारस्तथा धर्मव्यवहारोऽपी'ति तद्गुणरञ्जितहृदा पूर्वप्रतिपन्ने राज्ये दीयमाने[9] सर्वशास्त्रविरोधहेतुत्वात्; यदाह–

१८५. राजप्रतिग्रहदग्धानां ब्राह्मणानां युधिष्ठिर!। दग्धानामिव बीजानां पुनर्जन्म न विद्यते॥

इदं पुराणोक्तम्। तथा च जैनागमः–

सन्निही गिहिमत्ते य रायपिण्डे किमिच्छए।

इति [प्रभूक्तं श्रुत्वा[10]] तत्सम्भोधचमत्कृतचित्तः श्रीपत्तनं प्राप[11]।

१४०) भूपोऽन्यदा मुनिं[12] पप्रच्छ 'कयापि युक्त्याऽस्माकमपि यशःप्रसरः कल्पान्तस्थायी भवति?' इति तदीयां गिरं श्रुत्वा 'विक्रमार्क इव विश्वस्यानृण्यकरणात्, यद्वा श्रीसोमेश्वरस्य काष्ठमयं प्रासादं वारिधिशीकरनिकरैरासन्नाम्भःशीर्णप्रायं युगान्तस्थायिकीर्त्तये समुद्धरे'ति चन्द्रातपनिभया श्रीहेमचन्द्रगिरोल्लसन्मुदाम्भोधिर्नृपस्तमेव महर्षिं पितरं गुरुं दैवतं मन्यमानो विजातीनितरद्विजान् निन्दन्, ततः प्रासादोद्धाराय तदैव दैवज्ञनिवेदितसुलग्नस्तम्भ पञ्चकुलं प्रस्थाप्य प्रासादप्रारम्भमङ्गीकरत्।

1 D अधाम॰। 2 D सर्वसमयकं। 3 D ॰आसिनः। 4 P त्रिपाय मात्स्य्यैरे। 5 P धिगर्ता॰। 6 Ds पक्ष्मं। 7 P ॰धामेव। 8 P सदा हृदि। 9 D जाते। 10 D नैते तन्मुखबन्धे। 11 P विहाय मात्सर्ये परे। 12 BP क्रियमाणे। 13 P चिताम्बर। 14 P मन्त्रोपाम्। 15 P प्राहः। 16 BP इत्याकर्ण्य पप्रच्छ। 17 BP कर्तासि॰। 18 BP चद्रेल्लसम्मुदाम्भोधिः। 19 D विजातीन् निन्दन् द्विजान्।

१४१) अन्यदा श्रीहेमचन्द्रस्य लोकोत्तरैर्गुणैः परिहृतहृदयो नृपो मन्त्रिश्रीउदयनमिति पप्रच्छ– "[†]यदीदृशं पुरुषरत्नं कस्मिन् समस्तवंशावतंसे वंशे समस्तपुण्यप्रवेशे देशे निःशेषगुणाकरे नगरे च[1] समुत्पन्नम्?" इति नृपादेशादनु स मन्त्री जन्मप्रभृति तच्चरित्रं पवित्रमित्थमाह–'अष्टादशशतमितग्रामनाम्नि देशे धुन्धुकाभिधाने[2] नगरे श्रीमन्मोढवंशे चाचिगनामा व्यवहारी सतीजनमतल्लिका जिनशासनशासन[3]देवीव तत्सधर्मचारिणी शरीरिणीव श्रीः[4] पाहिणीनाम्नी चामुण्डागोत्रजाया आद्याक्षरेणाङ्कितनामा तयोः पुत्रश्चाङ्गदेवोऽभूत्[5]। स चाष्टवर्षदेश्यः श्रीपत्तनात्तीर्थयात्राप्रस्थितेषु[6] श्रीदेवचन्द्राचार्येषु धुन्धुक्के श्रीमोढवसहिकायां देवनमस्करणाय प्राप्तेषु, सिंहासनस्थिततदीयनिषद्याया उपरि सवयोभिः शिशुभिः समं रममाणः सहसा निषसाद। तदङ्गप्रत्यङ्गानां जगद्विलक्षणानि लक्षणानि प्रेक्ष्य[7]–अयं यदि क्षत्रियकुले जातस्तदा सार्वभौमचक्रवर्ती, यदि वणिग्-विप्रकुले जातस्तदा महामात्यः, चेद्दर्शनं प्रतिपद्यते तदा युगप्रधान इव कलिकालेऽपि[8] कृतयुगमवतारयति–स[9] आचार्य इति विचार्य तन्नगरवास्तव्यैर्व्यवहारिभिः[10] समं तल्लिप्सया चाचिगौकः[11] प्राप्य तस्मिंश्चाचिगे ग्रामान्तरभाजि तत्पत्न्या विवेकिन्या स्वागतादिभिः परितोषितः 'श्रीसङ्घ[12]स्त्वत्पुत्रं याचितुमिहागत' इति व्याहरन्[13], अथ सा हर्षाश्रूणि मुञ्चती स्वं रत्नगर्भं मन्यमाना, श्रीसङ्घस्तीर्थकृतां मान्यः, स मत्सूनुं याचते इति हर्षास्पदेऽपि विषादः। यतः[14]–एतस्य[15] पिता नितान्तमिथ्यादृष्टिः। तादृशोऽपि सम्प्रति ग्रामे नास्ति। अथ तैर्व्यवहारिभिस्त्वया[16] दीयतामित्युक्ते[17] स्वदोषोत्तारणाय मात्रा दाक्षिण्या[18]दमात्रगुणपात्रं पुत्रस्तेभ्यो गुरुभ्यो ददे। तदनन्तरं तया श्रीदेवचन्द्रसूरिरिति तदीयमभिधानमबोधि[19]। तैर्गुरुभिः स[20] शिशुः 'शिष्यो भविष्यसी?'ति पृष्टः, ओमित्युत्तरन् प्रतिनिवृत्तैस्तैः समं कर्णावतीमाजगाम[21]। स उदयनमन्त्रिगृहे तत्सुतैः समं बालधारकैः पाल्यमानो यावदास्ते तावता[22] ग्रामान्तरादागतश्चाचिगस्तं वृत्तान्तं परिज्ञाय पुत्रदर्शनावधिसंन्यस्तसमस्ताहारस्तेषां गुरूणां नाम मत्वा कर्णावतीं प्राप्तः। तद्वसतौ समागत्य कुपितः पिता ईषत्तान् प्रणनाम[23]। गुरुभिः सुतानुसारेणोपलक्ष्य विचक्षणतया विविधाभिरावर्जनाभिरावर्ज्य,[24] तत्रानीतेनोदयनमन्त्रिणा धर्मबन्धुबुद्ध्या निजमन्दिरे नीत्वा ज्यायःसहोदरभक्त्या भोजयांचक्रे। तदनु चाङ्गदेवं सुतं तदुत्सङ्गे निवेश्य पञ्चाङ्गप्रसादसहितं दुकूलत्रयं प्रत्यक्षं लक्षत्रयं चोपनीय सभक्तिकमावर्जितः। तं प्रति चाचिगः प्राह–'क्षत्रियस्य मूल्ये अशीत्यधिकसहस्रम्[25], तुरगस्य मूल्ये पञ्चाशदधिकानि सप्तदशशतानि, अकिञ्चित्करस्यापि वणिजो मूल्ये नवनवतिकलभाः एतावता नवनवतिलक्षा भवन्ति[26]। त्वं तु लक्षत्रयं समर्पयन्नौदार्यच्छद्मना कार्पण्यं प्रादुःकुरुषे। मदीयः[27] सुतस्तावदनर्घ्यो भवदीया च भक्तिरनर्घ्यतमा, तदस्य[28] मूल्ये सा भक्तिरेवास्तु,[29] शिवनिर्माल्यमिवास्पृश्यो मे द्रव्य[30]सञ्चयः'। इत्थं चाचिगे[31] सुतस्य स्वरूपमभिदधाने प्रमोदपूरित-

1 P अपद्रव॰। † एतदन्तर्गतपाठस्थाने D पुस्तके 'एतादृशं पुरुषरत्नं समस्तवंशावतंसे देशे च समस्तगुणाकरे नगरे च कस्मिन्नुत्पन्नं' ईदृशः पाठः। 2 AD धुन्धुकनगरे। 3 D द्वितीय 'शासन' शब्दो नास्ति। 4 BP लक्ष्मी.। 5 AD ॰गोत्रदायोत्पन्ना॰। 6 BP समजनि। 7 BP वीक्ष्य। 8 BP युगेयुगेऽपि। 9 P ते आचार्याः। 10 D तन्नगरस्थव॰। 11 BP चाचिगगृहं। 12 D धीमन्तः। 13 B उचतन्; P व्याहृते; D व्याहरन्तो। 14 AD नास्ति। 15 BP एतत्पिता। 16 BP स्वजनैः। 17 BP अभिहिते। 18 BP 'दाक्षिण्यात्' नास्ति। 19 A प्रबोधि। 20 BP सोऽपि। 21 BP कर्णावतीं मेने। 22 BP तावत्। 23 AB प्रणम्य। 24 D आवर्जितः। 25 BP ॰अधिकः सहस्र.। 26 D भवन्ति। 27 AD मत्पुत्रः। 28 D तस्य। 29 AD भक्तिरस्तु। 30 P द्रविण॰। 31 P चाचिगे एवमभिदधाने।

चित्तः स मन्त्री अकुण्ठोत्कण्ठतया तं परिरभ्य साधु साध्विति वदन् पुनः[1] प्राह–'मम पुत्रत्वया समर्पितो योगिमर्कट इव सर्वेषां जनानां[2] नमस्कारं कुर्वन् केवलं[3]मपमानपात्रं भविता, गुरूणां दत्तस्तु गुरुपदं प्राप्य बालेन्दुरिव त्रिभुवननमस्करणीयो[4] जायते; अतो यथोचितं विचार्य व्याहरे'त्यादिष्टः स 'भवद्विचार एव प्रमाणमि'ति वदन्[5] गुरूणां पार्श्वे[6] नीतः । सुतं गुरुभ्योऽदीदपत्[7] । तदनु तस्य प्रव्रज्याकरणोत्सवश्चाचिगेन चक्रे । अथ कुम्भयोनिरिवाप्रतिमप्रतिभाभिरामतया समस्तवाङ्मयाम्भोधिमुष्टिन्धयोऽभ्यस्तसमस्तविद्यास्थानो हेमचन्द्र इति गुरुदत्तनाम्ना प्रतीतः सकलसिद्धान्तोपनिषन्निषण्णधीः षट्त्रिंशता सूरिगुणैरलङ्कृततनुर्गुरुभिः सूरिपदेऽभिषिक्तः । इति मन्त्रिणोदयनेनोदितां हेमाचार्यजन्मप्रवृत्तिमाकर्ण्य नृपो मुमुदेतराम् ।

१४२) अथ श्रीसोमनाथ[8]देवस्य प्रासादारम्भे खरं[9]शिलानिवेशे सञ्जाते सति पञ्चकुलप्रहितवर्द्धापनीं[10]विज्ञप्तिकां नृपः श्रीहेमचन्द्रगुरोर्दर्शयन्–'अयं प्रासादप्रारम्भः कथं निष्प्रत्यूहं प्रमाणभूमिमधिरोढा[11] ?' इति पृथ्वीपरिवृढेनानुयुक्तः श्रीमान्किञ्चिदुचितं विचिन्त्य गुरुरूचिवान्–'यदस्य धर्मकार्यस्यान्तरायपरिहाराय ध्वजारोपं यावद्भूजिष्ठब्रह्मसेवा, अथवा मद्यमांसनियमो द्वयोरेकतरं किमप्यङ्गीकरोतु नृपतिः' इत्यभिहिते[12] तद्वचनमाकर्ण्य[12] मद्यमांसनियममभिलपन्, श्रीनीलकण्ठोपरि उदकं विमुच्य तम[13]भिग्रहं जग्राह । संवत्सरद्वयेन तस्मिन् प्रासादे कलशध्वजाधिरोपं यावन्निवृत्ते तं नियमं मुमुक्षुर्गुरूननुज्ञापयंस्तैरूचे–'यद्यनेन निजकीर्त्तनेन सार्द्धमर्द्धचन्द्रचूडं प्रेक्षितुमर्हसि, तदात्रापर्यन्ते नियममोचनावसरः' इत्यभिधायोत्थिते श्रीहेमचन्द्रमुनीन्द्रे "तद्गुणैरुन्मीलश्रीलीरागरक्तहृदयस्तमेकमेव संसदि प्रशशंस सः । निर्निमित्तवैरिपरिजनस्तत्तेजःपुञ्जमसहिष्णुः–

१८६. उज्ज्वलगुणमभ्युदितं क्षुद्रो द्रष्टुं न कथमपि क्षमते । दग्ध्वा तनुमपि शलभो दीप्रं दीपार्चिषं[15] हरति ॥

इति न्यायात्पृष्टिमांसादनदोषमप्यङ्गीकृत्य[16] तदपवादानवादीत्[17]–'यदयममन्दच्छन्दानुवृत्तिपरः सेवाधर्मकुशलः केवलं प्रभोरभिमतमेव भाषते । यद्येवं न, तदा प्रातरुपेतः–†श्रीसोमेश्वरयात्रायां भवान् सहागच्छतु–इति गदितः स परतीर्थपरिहाराय तत्रागमिष्यतीत्यस्मन्मतमेव प्रमाणम् ।' नृपस्तद्वाक्यमादृत्य प्रातरुपगतं श्रीहेमचन्द्राचार्यं श्रीसोमेश्वरयात्रार्थमत्यर्थमभ्यर्थयन्† सूरयः प्रोचुः–'यद् बुभुक्षितस्य किं निमन्त्रणम्, उत्कण्ठितस्य किं केकारवश्रवणमिति लोकरूढेस्तपस्विनामधिकृततीर्थाधिकाराणां को नाम नृपतेरत्र निर्बन्धः ।' इत्थं गुरोरङ्गीकारे 'किं भवद्योग्यं सुखासनप्रभृति वाहनादि च लभ्यतामि ?'तीरिते 'वयं चरणचारेणैव सञ्चरन्तः पुण्यमुपालभामहे; परं वयमिदानीमापृच्छ्य मितैर्मितैः प्रयाणकैः श्रीशत्रुञ्जयोज्जयन्तादिमहातीर्थानि नमस्कृत्य भवतां श्रीपत्तनप्रवेशे मिलिष्यामः' इत्युदीर्य तत्तथैव कृतवन्तः । नृपतेः समग्रसामग्र्या कतिपयैः प्रयाणकैः श्रीपत्तनं प्राप्तस्य श्रीहेमचन्द्रमुनीन्द्रमिलनादतिप्रमुदितस्य सन्मुखागतेन गण्ड० श्रीबृहस्पतिनाऽनुगम्यमानस्य महोत्सवेन पुरं प्रविश्य श्रीसोमेश्वरप्रासादसोपानेष्वाक्रान्तेषु भूपीठलुठनादनन्तरं चिरतरातुल्यायल्लकानुमानेन गाढमुपगूढे सोमेश्वरलिङ्गे 'एते जिनादपरं दैवतं

---

1 AD श्रीमानुदयनः । 2 P नास्ति । 3 'केवलं' P नास्ति । 4 BP त्रिभुवननमस्यतां लभते । 5 B वदन्तु । 6 D गुरुपार्श्वे । 7 P ददौ । 8 P सोमेश्वर० । 9 D शिखर० । 10 AD वर्द्धापनिकाविं० । 11 P अधिरोहति । 12 एतत्पदद्वयस्थाने P 'तच्छ्रुत्वा' इत्येव । 13 D तं च । 14 D षट्त्रिंशद्गुणैः । 15 BP दीपार्चिरपहरति । 16 BP उररीकृत्य । 17 BP अपवादमेव । † एतदन्तर्गतपाठस्थाने AD आदर्शे 'श्रीसोमेश्वरयात्रार्थमत्यर्थमभ्यर्थेत । राज्ञा तथाकृते' एतादृशः संक्षिप्तः पाठः ।

न नमस्कुर्वन्ती'ति मिथ्यादृग्वचसा भ्रान्तचित्तस्य श्रीहेमचन्द्रं प्रति एवंविधा गीराविरासीत्-'यदि युज्यते तदेतैर्मनोहारिभिरुपहारैः श्रीसोमेश्वरमर्चयन्तु भवतः।' तत्तथेति प्रतिपद्य सद्यः[1] क्षितिपकोशादागतेन कमनीयेनोद्गमनीयेनालङ्कृततनुर्नृपतिनिदेशाच्छ्रीबृहस्पतिना दत्तहस्तावलम्बः प्रासाददेहलीमधिरुह्य किञ्चिद्विचिन्त्य प्रकाशं-'अस्मिन्प्रासादे कैलासनिवासी श्रीमहादेवः साक्षादस्तीति रोमाञ्चकञ्चुकितां तनुं बिभ्राणो द्विगुणीक्रियतामुपहारः' इत्यादिश्य शिवपुराणोक्तदीक्षाविधिनाऽऽह्वाननावगुण्ठनमुद्रामन्त्रन्यासविसर्जनोपचारादिभिः पञ्चोपचारविधिभिः शिवमभ्यर्च्य तदन्ते-

१८७. यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तु ते ॥

१८८. भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य। ब्रह्मा वा विष्णुर्वा महेश्वरो वा नमस्तस्मै ॥

इत्यादिस्तुतिभिः सकलराजलोकान्विते राज्ञि सविस्मयमवलोकमाने दण्डप्रणामपूर्वं स्तुत्वा श्रीहेमाचार्ये उपरते सति, भूपतिः[3] श्रीबृहस्पतिना ज्ञापितपूजाविधिः समधिकवासनया शिवार्चानन्तरं धर्मशिलायां तुलापुरुषगजदानादीनि महादानानि दत्त्वा[4] कर्पूरारात्रिकमुत्तार्य समग्रमपि[5] राजवर्गमपसार्य तद्गर्भगृहान्तः प्रविश्य 'न महादेवसमो देवः, न मम तुल्यो नृपतिः, न भवत्सदृक्षो महर्षिरिति भाग्यवैभववशादयत्नसिद्धे त्रिकसंयोगे बहुदर्शनप्रमाणप्रतिष्ठासन्दिग्धे देवतत्त्वे मुक्तिप्रदं दैवतमस्मिंस्तीर्थे तथ्यया गिरा निवेदय' इत्यभिहितः श्रीहेमाचार्यः किञ्चिद्धिया निध्याय नृपं प्राह-'अलं पुराणदर्शनोक्तिभिः; श्रीसोमेश्वरमेव तव प्रत्यक्षीकरोमि, यथा तन्मुखेन मुक्तिमार्गमवैपी'ति तद्वाक्यात्किमेतदपि[10] जाघटीतीति विस्मयापन्नमानसे नृपे 'निश्चितमत्र तिरोहितं दैवतमस्त्येव। आवां तु गुरूक्तयुक्त्या निश्चलावाराधकौ, तदित्थं द्वन्द्वसिद्धौ सुकरं दैवतमाविष्करणम्। मया प्रणिधानं क्रियते "भवता कृष्णागुरूत्क्षेपश्च कार्यः"[13]। तदा परिहार्यो यदा स्वयः प्रत्यक्षीभूय निषेधयति।' अथोभाभ्यामपि तथा क्रियमाणे धूमधूम्यान्धकारिते गर्भगृहे निर्वाणेषु नक्षत्रमालार्दीमप्रदीपकेषु[14] आकस्मिके प्रकाशे द्वादशात्ममहसीव प्रसरति, नृपो नयने सम्भ्रमादुन्मृज्य यावदालोकते तावज्जलाधारोपरि जात्यजाम्बूनदद्युतिं चर्मचक्षुषां दुरालोकमप्रतिमरूपमसम्भाव्यस्वरूपं तपस्विनमद्राक्षीत्। तं पदाङ्गुष्ठात् प्रभृति जटाजूटावधि करतलेन संस्पृश्य निश्चितदेवतावतारः पञ्चाङ्गचुम्बितावनितलं प्रणिपत्य भक्त्या [15]भूपतिरिति विज्ञपयामास-'जगदीश! भवद्दर्शनात्कृतार्थे दृशौ, आदेशप्रसादात्कृतार्थय श्रवणयुगलमि'ति विज्ञप्य तूष्णीं स्थिते नृपे[16] मोदनिशादिनमुम्बात्तन्मुखादिति दिव्या गीराविरासीत्-'राजन्! अयं महर्षिः सर्वदेवतावतारः। अजिमपरब्रह्मावलोककरतलकलितमुक्ताफलवत्कालत्रयविज्ञातस्वरूपः। एतदुपदिष्ट एवासन्दिग्धो मुक्तिमार्गः' इत्यादिश्य तिरोभूते भूतपतावुन्मनीभावं भजति[18] भूपतौ, रेचितप्राणापामपवनः ऊर्ध्वीकृतासनबन्धः श्रीहेमचन्द्रो यावद् 'राजन्!' इति वाचमुवाच, तावदिष्टदैवतसङ्केतापहृतराज्याभिमानः क्षितिपतिः[20] 'जीव! पादोऽवधार्यतामि'ति व्याहृतिपरो[21] विलयनम्र-

1 D नास्ति। 2 P अधिक 'उद्गमनीयेन।' 3 P समस्त०। 4 P शिवार्चानन्तरं दण्ड०। 5 D स नृपः। 6 BP स्पर्शं। 7 BP निर्णयं। 8 AD 'अपि' नास्ति। 9 D अत्र स्थिते। 10 D 'अपि' स्थाने 'इति'। 11 BP पूर्वं। 12-13 D स्थितं नास्ति। 14 D ०मालार्द्रदीपेषु। 15 D भूपान्। 16 D नास्ति। 17 P ०आमलककरतल०। 18 ABP भजद् भूपतौ। 19 'यावद् राजन्' स्थाने—A 'यावद् राजानम्'; D यावन्नृप। 20 P क्षिता न। 21 D ०परे गुरौ।

मौलिर्यत्कृत्यमादिशेति व्याजहार । अथ तत्रैव नृपतेर्यावज्जीवं पिशित-प्रसन्नयोर्नियमं[1] दत्त्वा ततः प्रत्यावृत्तौ क्ष्मापती[2] श्रीमदणहिल्लपुरं प्रापतुः ।

१४३) श्रीजिनवदननिर्गमपावनीभिः शुद्धसिद्धान्तगीर्भिः प्रतिबुद्धो नृपः प र मा र्ह त बिरुदं भेजे । तदभ्यर्थितः प्रभुः त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम्, विंशतिवीतरागस्तुतिभिरुपेतं पवित्रं श्रीयोगशास्त्रं रचयांचकार । प्रभोरादेशाच्चाज्ञाकारिष्वष्टादशदेशेषु चतुर्दशवत्सरप्रमितां सर्वभूतेषु मारिं निवारितवान् ।

[१२३] *सप्तर्षयोऽपि सततं गगने चरन्तो मोक्तुं क्षमा नहि मृगीं मृगयोः सकाशात् ।
जीयादसौ चिरतरं प्रभुहेमसूरिरेकेन येन भुवि जीववधो निषिद्धः ॥

[१२४] *कलाकलापैः स्तुमहर्द्धं श्रीहेमचन्द्रम्† (?)...................... ।
ररक्ष दक्षः प्रथमः समग्रान् मृगान् यदन्यो मृगमेकमेव ॥

तेषु तेषु च देशेषु चत्वारिंशदधिकानि चतुर्दशशतानि विहाराणां कारयामास । सम्यक्त्वमूलानि द्वादशव्रतान्यङ्गीकुर्वन्, अदत्तादानपरिहाररूपे तृतीयव्रते व्याख्यायमाने रुदतीवित्तदोषान् पापैकनिबन्धनान् ज्ञापितो नृपस्तदधिकृतं पञ्चकुलमाकार्य[3] द्वासप्ततिलक्षप्रमाणं तदायपट्टकं विपाट्य मुमोच । तस्मिन्मुक्ते–

१८९. न यन्मुक्तं पूर्वैं रघुनहुषनाभागभरतप्रभृत्युर्वीनाथैः कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि ।
विमुञ्चन्कारुण्यात्तदपि रुदतीवित्तमधुना कुमारक्ष्मापाल त्वमसि महतां मस्तकमणिः ॥

इति विद्वद्भिः स्तूयमाने–

१९०. अपुत्राणां धनं गृह्णन् पुत्रो भवति पार्थिवः[4] । त्वं तु सन्तोषतो मुञ्चन् सत्यं राजपितामहः ॥

इति प्रभुरपि स नृपतिमनुमोदयांचक्रे ।

१४४) अथ सुराष्ट्रादेशीयं सउंसरंनामानं[5] विग्रहीतुं श्रीमदुदयनमन्त्रिणं दलनायकीकृत्य[6] समस्तकटकबन्धेन समं [प्रस्थापयामास[7]] स[8] श्रीवर्द्धमानपुरं प्राप्य श्रीयुगादिदेवपादान्निनंसुः पुरःप्रयाणकाय समस्तमण्डलेश्वरानभ्यर्थ्य स्वयं विमलगिरिमागतः । विशुद्धश्रद्धया श्रीदेवपादानां पूजादि विधाय यावत्पुरतो विधिवच्चैत्यवन्दनां विधत्ते तावन्नक्षत्रमालाया देदीप्यमानां दीपवर्तिमादाय मूषकः काष्ठमयप्रासादबिले प्रविशन्[9] देवाङ्गरक्षैस्त्याजितः । तदनु स मन्त्री समाधिभङ्गात्काष्ठमयदेवप्रासादविध्वंससाध्वसाच्च[10] जीर्णोद्धारं चिकीर्षुः श्रीदेवपादानां पुरत एकभक्तादीनभिग्रहान् जग्राह । तदनु कृतप्रयाणः स्वं स्कन्धवारमुपेत्य तेन प्रत्यर्थिना समं समरे सञ्जायमाने परैः पराजिते नृपबले श्रीमदुदयनः स्वयमुत्तस्थौ[11] । तदा तत्प्रहारजर्जरितदेहः[12] आवासं[13] नीतः[14] सकरुणं क्रन्दन् स्वजनैस्तत्कारणं पृष्टः–सन्निहिते मृत्यौ श्रीशत्रुञ्जय-शकुनिकाविहारयोर्जीर्णोद्धारवाञ्छया देवऋणं पृष्ठलग्नम्–मन्त्री प्राह । अथ तैः 'भवन्नन्दनौ वाग्भटाऽम्रभटनामानौ गृहीताभिग्रहौ तीर्थद्वयमुद्धरिष्यतः–इत्यर्थे वयं प्रतिभुवः' इति तदङ्गीकारात्पुलकिताङ्गो धन्यंमन्यः, अन्त्याराधनाकृते

1 ABD प्रसन्नानियमं । 2 'एकः क्ष्मायाः पृथिव्याः, अन्यः क्षान्तेः पतिः'–D टिप्पणी । * एतत्पद्यद्वयं P प्रतावेव लभ्यते । † अस्य पद्यस्यायं पूर्वार्द्धः खण्डितरूप एवोपलब्धः । 3 P आहूय । 4 P भूपतिः । 5 B सउसर; P मुसर; D सुंवर । 6 B दलमादायैकीकृत्य । 7 D विहाय नान्यत्रेदं पदम् । 8 D सोपि । 9 D प्राविशत् । 10 D विध्वंसभयात् । 11 D समुत्तस्थौ । 12 BP ०शरीरः । 13 BP आवासान्; A आवासे । 14 D नीते ।

स मन्त्री कमपि चारित्रिणमन्वेषयामास । तस्मिन्ननुपलभ्यमाने कमपि वण्ठं तद्वेषमानीय निवेदिते, मन्त्री तदङ्घ्री[1] ललाटेन परिस्पृशन् तत्समक्षं दशधाऽऽराधनां विधाय श्रीमानुदयनः परलोकं प्राप । वण्ठस्तु चन्दनतरोरिव तद्वासनापरिमलेन क्षुद्रद्रुमवद्वासितोऽनशनप्रतिपत्तिपूर्वकं रैवतके जीवितान्तं चकार ।

१४५) अथाणहिल्लपुरं प्राप्तैस्तैः स्वजनैस्तं वृत्तान्तं ज्ञापितौ वाग्भटाम्रभटौ तानेवाभिग्रहान् गृहीत्वा जीर्णोद्धारमारेभाते । वर्षद्वयेन श्रीशत्रुञ्जये प्रासादे निष्पन्ने उपेत्यागतमानुषेण वर्द्धापनिकायां याच्यमानायां पुनरागतेन द्वितीयेन पुरुषेण 'प्रासादः स्फुटित' इत्यूचे[2] । ततस्तत्तत्र[3] प्रायां गिरं निशम्य श्रीकुमारपालभूपालमापृच्छ्य मह॰ कपर्दिनि श्रीकरणमुद्रां नियोज्य तुरंगमाणां चतुर्भिः[4] सहस्रैः सह श्रीशत्रुञ्जयोपत्यकां प्राप्य स्वनाम्ना[5] वाहडपुरनगरं[6] निवेशयामास । सभ्रमे प्रासादे पवनः प्रविष्टो न निर्यातीति स्फुटनहेतुं शिल्पिभिर्निर्णीयोक्तम्, भ्रमहीने तु[7] प्रासादे निरन्वयता[8] च विमृश्याऽन्वयाभावे धर्मसन्तानमेवास्तु; पूर्वोद्धारकारिणां श्रीभरतादीनां पङ्क्तौ नामास्तु–इति तेन मन्त्रिणा दीर्घदर्शिन्या बुद्ध्या विभाव्य भ्रमभित्त्योरन्तरालं शिलाभिर्निचितं विधाय वर्षत्रयेण निष्पन्ने प्रासादे कलशदण्डप्रतिष्ठायां श्रीपत्तनसङ्घं निमन्त्रणापूर्वमिहानीय महता महेन सं॰ १२११* वर्षे ध्वजाधिरोपं मन्त्री कारयामास । शैलमयबिम्बस्य मम्माणीयखनीसत्कपरिकरमानीय निवेशितवान् । श्रीवाहडपुरे नृपतिपितुर्नाम्ना श्रीत्रिभुवनपालविहारे श्रीपार्श्वनाथं स्थापितवान् । तीर्थपूजाकृते च चतुर्विंशत्यारामान्नगरपरितो वप्रं देवलोकस्य ग्रासवासादि दत्त्वा चैतत्सर्वं कारयामास । अस्य तीर्थोद्धारस्य व्यये–

१९१. पष्टिलक्षयुता कोटी व्ययिता यत्र मन्दिरे । स श्रीवाग्भटदेवोऽत्र वर्ण्यते विबुधैः कथम् ॥

॥ इति श्रीशत्रुञ्जयोद्धारप्रबन्धः ॥

१४६) अथ विश्वविश्वैकसुभटेन श्रीआम्रभटेन पितुः श्रेयसे भृगुपुरे श्रीशकुनिकविहारप्रासादमारम्भे खन्यमाने गर्त्तापूरे नर्मदासान्निध्यादकस्मान्मिलितायां भूमौ छादितेषु[10] कर्मकरेषु कृपापरवशतयात्मानमेवामन्दं निन्दन् सकलत्रपुत्रस्तत्र झम्पामदात् । तत्साहसातिशयात्तस्मिन्प्रत्यूहे निराकृते शिलान्यासपूर्वं समस्तप्रासादे निष्पन्ने कलशदण्डप्रतिष्ठावसरे समस्तैनगरसङ्घान्निमन्त्रणपूर्वं तत्रानीय यथोचितमशनवस्त्राभरणादिसन्मानैः सन्मान्य समस्तेषु[11] यथागतं प्रहितेषु, आसन्ने लग्ने सञ्जायमाने भट्टारकश्रीहेमचन्द्रसूरिपुरस्सरं सङ्घपतिं श्रीमदणहिल्लपुरसङ्घं तत्रानीयातुल्यवात्सल्यादिभिर्भूषणादिदानैश्च सन्तर्प्य ध्वजाधिरोपाय सञ्चरत्र्मर्थिभिः[12] "स्वमन्दिरं मुषितं कारयित्वा श्रीसुव्रतप्रासादे ध्वजं महाध्वजोपेतमध्यारोप्य हर्षोत्कर्षात्तत्रानालस्यं लास्यं विधाय तदन्ते भूपतिनाऽभ्यर्थितं आरात्रिकं गृह्णन् तुरङ्गं द्वारभट्टाय दत्त्वा" राज्ञा स्वयं कृततिलकायसरः,[13] द्वासप्तत्या सामन्तैश्चामरपुष्पवर्षादिभिः कृतसाहाय्यस्तदात्वागतार्थे वन्दिने कृतकङ्कणवितरणो बाहुभ्यां धृत्वा बलात्कारेण नृपेणावतार्यमाणारात्रिकमङ्गलप्रदीपः श्रीसुव्रतस्य च

1 BP तच्चरणौ । 2 A ऊचाथ । 3 BP 'ततः' नास्ति । 4 P चतु-सहस्रैर्योधैः; B तुरंगमचतुर्भिः सहस्रैः । 5 B नास्ति । 6 BP वाहडपुरमिति नगरं न्यासयत् । 7 AD च । 8 D निरन्वयतां । * A सं॰ ९५; Da-b सं॰ ११९५ । 9 AB सत्तरहिल्लपु॰; P सल्लक्ष॰ । 10 D बाधितेषु । 11 D 'समस्त' नास्ति । 12 A समन्तेषु; D सामन्तेषु । 13 BD ॰भृगुपु॰ । 14 D स्वयं स्वं मन्दिरं । 15 P वितीर्य । 16 AD ॰वसरे । 17 B ॰स्वागताय; D ॰भ्यागताय ।

गुरोश्चरणौ प्रणम्य सार्धर्मिकवन्दनापूर्वं नृपतिं सत्वराराविकहेतुं पप्रच्छ । 'यथा चूतकारो चूतरसातिरेकाच्छिरःप्रभृतीन् पदार्थान् पणीकुरुते तथा 'भवानप्यतः परमर्थिप्रार्थितस्त्यागरसातिरेकाच्छिरोऽपि तेभ्यो ददासी'ति नृपेणादिष्टे 'तल्लोकोत्तरचरित्रेणापहृतहृदया विस्मृताजन्ममनुष्यस्तुतिनियमाः श्रीहेमाचार्याः-

१९२. किं कृतेन न यत्र त्वं यत्र त्वं किमसौ कलिः । कलौ चेद्भवतो जन्म कलिरस्तु कृतेन किम् ॥

-इत्यमाम्रभटमनुमोद्य क्षमापती यथागतं जग्मतुः ।

१४७) अथ तत्रागतानां प्रभूणां श्रीमदाम्रभटस्याकस्मिकदेवीदोषात्पर्यन्तदशांगतस्यापृच्छनविज्ञप्तिकायामुपागतायां सत्यां तत्कालमेव-तस्य महात्मनः प्रासादशिखरे नृत्यतो मिथ्यादृशां देवीनां दोषः सञ्जातः-इत्यवधार्य प्रदोषकाले यशश्चन्द्रतपोधनेन समं खेचरगत्योत्पत्य निमेषमात्रादलङ्कृतभृगुपुरपरिसरभुवः प्रभवः सैन्धवां देवीमनुनेतुं कृतकायोत्सर्गास्तया जिह्वाकर्षणादवगणनास्पदं नीयमाना, उदूखले शालितन्दुलान्प्रक्षिप्य यशश्चन्द्रगणिना प्रदीयमाने मुशलप्रहारे प्राक् प्रासादः' कम्पितः, द्वितीये प्रहारे दीयमाने' सा देवीमूर्तिरेव स्वस्थानादुत्पत्य 'वज्रपाणिवज्रप्रहारेभ्यो रक्ष रक्ष' इत्युचरन्ती प्रभोश्चरणयोर्निपपात । इत्थमनवद्यविद्याबलात्तन्मूलानां मिथ्यादृग्व्यन्तराणां दोषं निगृह्य श्रीसुव्रतप्रासादमाजग्मुः' ।

१९३. संसारार्णवसेतवः शिवपथप्रस्थानदीपाङ्कुरा विश्वालम्बनयष्टयः परमतव्यामोहकेतुद्रुमाः ।
किं वास्माकमनोमतङ्गजदृढालानैकलीलाजुषस्त्रायन्तां नखरश्मयश्चरणयोः श्रीसुव्रतस्वामिनः ॥

इति स्तुतिभिः श्रीमुनिसुव्रतमुपास्य श्रीमदाम्रभटमुल्लाघलानेन पट्टकृत्य यथागतमागुः । श्रीमदुदयनचैत्ये शकुनिकाविहारे घटीगृहे राज्ञा कौङ्कणनृपतेः कलशत्रितयं स्थानत्रये न्यास्यत् ॥

॥ इति श्रीराजपितामह-आम्रभटप्रबन्धः ॥

१४८) अथान्यस्मिन्नवसरे कुमारपालनृपतिः पाण्डित्यलिप्सया कपर्दिमन्त्रिणोऽनुमतेन भोजनानन्तरक्षणे केनापि विदुषा वाच्यमाने कामन्दकीयनीतिशास्त्रे-

१९४. पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपतिः । विकलेऽपि हि पर्जन्ये जीव्यते न तु भूपतौ ॥

वाक्यमिदमाकर्ण्य नृपतेर्मय ऊ प म्या इति कुमारपालभूपालेनाभिहिते सर्वेष्वपि सामाजिकेषु न्युञ्छनानि कुर्वाणेषु तदा कपर्दिमन्त्रिणमवाङ्मुखं वीक्ष्य," एकान्ते नृपपृष्ट एवमवादीत्-'ऊ प म्या शब्दे स्वामिना सपसुचरिते सर्वव्याकरणेषु अपप्रयोगे "एभिश्छन्दानुवर्तिभिर्न्युञ्छनानि क्रियमाणे मम द्रुशाऽप्यवाङ्मुखत्वं "समुचितम् । तथा परमराजकं विश्वं" न तु मूर्खो राजेति प्रतीपनृपालमण्डलेष्वपकीर्त्तिः प्रसरति । अतोऽस्मिन्नर्थे उपमानं" उपमेयं" औपम्यं उपमा-इत्याद्याः शब्दाः शुद्धा' इति तद्वचनानन्तरं राज्ञा शब्दव्युत्पत्तिज्ञानहेतवे पञ्चाशद्वर्षदेशीयेन कस्याप्युपा-

1 P तमपि । 2 ABD भवतो० । 3 AD ह्लाभावास्य० । 4 AD समागतमस्य । 5 D नर्ति । 6 AD पत्रागन्धिरा० । 7 P कार्येदीयमा० । 8 P प्रासा० । ‡ इलोकोऽयं Da 'एते चतुर्भिर्भगणैः सोऽर्धेन मर्मदिने' इत्यर्धं अत्र विद्यते । 9 P श्रीमदाम्रभट० । 10 AD कुमारपालभूपाला । 11 D ०मन्त्री भूपं । 12 BP ०वाचेत्य । 13 D ०स्याकरणेष्वेषु प्रयोगारोपेषु न्युञ्छनानु० । 14 D द्रुशाऽप्यवाङ्मुखत्वमुचितं । 15 P भुवर्न । 16 P विश्वं न । 17 P ०र्ति । 18 D शब्दसमूहम् ।

ध्यायस्य समीपे मातृकापाठात्प्रभृति शास्त्राण्यारभ्यैकेन वर्षेण वृत्तिकाव्यत्रयमधीतम् । विचारचतुर्मुखमिति विरुदमर्जितम् ।

॥ इति विचारचतुर्मुखश्रीकुमारपालाध्ययनप्रबन्धः[†] ॥

१४९) कस्मिन्नप्यवसरे विश्वेश्वरनामा कविर्वाराणस्याः[1] श्रीपत्तनमुपागतः[2] प्रभु[3]श्रीहेमसूरीणां संसदि प्राप्तः । तत्र कुमारपालनृपतौ विद्यमाने सः–

१९५. पातु वो हेमगोपालः कम्बलं दण्डमुद्वहन् ।

इति भणित्वा विलम्बमानो नृपेण सक्रोधं निरैक्ष्यत[4] ।

षड्दर्शनपशुग्रामं चारयन् जैनगोचरे ॥

इत्युत्तरार्द्धपरितोषितसमाजलोकः श्रीरामचन्द्रादीनां समस्यां समर्पयामास–

१९६. व्यापिद्धा नयने मुखं च रुदती से गर्हिते कन्यका नैतस्याः प्रसृतिद्वयेन सरले शक्ये पिधातुं दृशौ ।
सर्वत्रापि च लभ्यते मुखशशिज्योत्स्नावितानैरियमित्थं मध्यगता सखीभिरभितो दृग्मीलनाकेलिषु ॥

व्यापिद्धा० । इति श्रीकपर्दिना महामात्येन पूरितायां समस्यायां पश्चात्कविः[5] पञ्चाशत्सहस्रमूल्यं निजं ग्रैवेयकं श्रीकपर्दिनः कण्ठे 'श्रीभारत्याः पदम्' इत्युच्चरन्निवेशयामास । अथ तद्वैदग्ध्यचमत्कृतेन नृपतिना स्वसंनिधौ स्थाप्यमानः–

१९७. कथाशेषः कर्णोऽजनि जनकृशा काशिनगरी सहर्षं हेषन्ते हरिहरिति हम्मीरहरयः ।
सरस्वत्याश्लेषप्रवणलवणोदप्रणयिनि प्रभासस्य क्षेत्रे मम हृदयमुत्कण्ठितमदः ॥

इत्युक्त्वाऽऽपृच्छ्य[6] नृपसत्कृतः स यथास्थानमगात्[7] ।

१५०) कदाचिद्देवश्रीकुमार[8]विहारे नृपाहूताः प्रभवः श्रीकपर्दिना दत्तहस्तावलम्बा यावत्सोपानमारोहन्ति तावन्नर्तक्याः कञ्चुके गुणमाकृष्यमाणं विलोक्य श्रीकपर्दी–

१९८. सोहग्गिउ सहिकञ्चुयउ जुत्तउ ताणु[9] करेइ ।

एवमुक्त्वा यावद्विलम्बते

पुट्ठिहिँ पच्छइ तरुणीयणु[10] जसु गुणगहणु करेइ ॥

इति श्रीप्रभुपादैरुत्तरार्द्धमपूरि ।

१५१) कदाचित्प्रत्यूषे श्रीकपर्दिमन्त्री प्रणामानन्तरं श्रीसूरिभि[11]र्हस्ते किमेतदिति पृष्टः स प्राकृतभाषया ह र ड इ इति विज्ञपयामास । प्रभुभिरुक्तम्–'किमद्यापि?' अना[12]र्हतप्रतिभतया तद्वचनच्छलमाकलय्य कपर्दिनोक्तम्–'इदानीं तु न ।' कुतोऽन्त्योऽप्याद्योऽभूत्, मात्राधिकश्च । हर्षाश्रुपूर्[13]णदृशः प्रभवः श्रीरामचन्द्रप्रभृतिपण्डितानां पुरस्तात्तच्चातुरीं प्रशशंसुः । तैरज्ञाततत्त्वैः किमिति पृष्टो ह र ड इ इति शब्दच्छलेन हकारो रडइ; अस्माभिरुक्तम्[14]–'किमद्यापि?' इत्यभिहितमात्रेण वचस्तत्त्वविदाऽनेन नेदानीमुक्तम् । यतः पुरा मातृकाशास्त्रे हकारः प्रान्ते पठ्यते अत एव रडइ; साम्प्रतं त्वस्मद्धामनि प्रथमस्तथा मात्राधिकश्च ।

॥ इति ह र ड इ प्रबन्धः* ॥

---

† 'इति नृपाध्ययनप्रबन्धः ।' इत्येव P आदर्शे । 1 B वाण्यारस्याः । 2 BP उपेतः । 3 D 'प्रभु' नास्ति । 4 B ईक्षितः; P निरीक्षितः । 5 BP नास्त्येतत्पदम् । 6 D ॰पृच्छ्यमानो आपृच्छ्य । 7 P यथागतं । 8 AD ॰कुमारपालविहारे । 9 D ॰ताणु; P ताडु । 10 B ॰जणु । 11 P विना न । 12 AD आर्हत॰ । 13 BD परि॰ । 14 D नास्त्येतत्पदम् ।
* D पुस्तक एवेदं समाप्तिसूचकं वाक्यं विद्यते ।

१५२) कदाचित् केनापि पण्डितेनोर्वशीशब्दे शकारस्तालव्यो दन्त्यो वेतिपृष्टे यावत्प्रभवः किञ्चित्समादिशन्ति तावत्, ऊरौ शेते उर्वशीति पत्रकं लिखित्वा श्रीकपर्दिना प्रभोरुत्सङ्गे मुक्तम् । तत्प्रामाण्यात्तालव्यशकारनिर्णयस्तदग्रे प्रभुभिरभिहितः ।

॥ इत्युर्वशीशब्दप्रबन्धः* ॥

१५३) अथान्यदा सपादलक्षीयराज्ञः कश्चित्सान्धिविग्रहिकः श्रीकुमारपालनृपतेः सभायामुपेतो राज्ञा 'भवत्स्वामिनः कुशलमि'ति पृष्टः । स मिथ्याभिमानी पण्डितमानी च 'विश्वं लातीति विश्वलस्तस्य च को विजयसन्देहः?' । राज्ञा प्रेरितेन श्रीमता कपर्दिना मन्त्रिणा–श्वलश्वल्ल आशुगतौ इति धातोर्विरिव श्वलतीति नश्यतीति विश्वलः । अनन्तरं प्रधानेन तन्नामदूषणं विज्ञप्तः स राजा विग्रहराज इति पण्डितमुखान्नाम बभार । परस्मिन्वर्षे स एव प्रधानः श्रीकुमारपालनृपतेः पुरो विग्रहराज इति नाम विज्ञपयन्, मन्त्रिणा श्रीकपर्दिना–विग्रो विगतनासिक एवं विधो ह-राजौ रुद्रनारायणौ कृतौ येन इति । तदनन्तरं स नृपः कपर्दिना नामखण्डनभीरुः कविबान्धव इति नाम बभार ।

१५४) अथान्यदा श्रीकुमारपालनृपपुरतः श्रीयोगशास्त्रव्याख्याने सञ्जायमाने पञ्चदशकर्मादानेषु वाच्यमानेषु–

"दन्तकेशनखास्थित्वग्रोम्णां ग्रहणमाकरे"

इति प्रभुकृते मूलपाठे पं० उदयचन्द्रं रोम्णां ग्रहणमिति भूयो भूयो वाचयन्तं प्रभुभिर्लिपिमेदं पृष्टे स "प्राणितूर्याङ्गानाम्" इति व्याकरणसूत्रेण प्राण्यङ्गानां सिद्धमेकत्वमिति लक्षणविशेषं विज्ञपयन् प्रभुभिः श्लाघितो राज्ञा न्युञ्छनैः सम्भावितः" ।

॥ इति पं० उदयचन्द्रप्रबन्धः ॥

१५५) अथ कदाचित्स राजर्षिर्घृतपूरभोजनं कुर्वन् किञ्चिद्विचिन्त्य कृतसर्वाहारपरिहारः पवित्रीभूय" इति प्रभुं पप्रच्छ–'यदस्माकं घृतपूराहारो युज्यते नवा ?' इति प्रभुभिरभिदधे–'वणिग्ब्राह्मणयोर्युज्यते, कृताभक्ष्यनियमस्य क्षत्रियस्य तु न । तेन पिशिताहारस्यानुस्मरणं भवति ।' इत्थमेवेति पृथ्वीपतिरभिधाय पूर्वभक्षितस्याभक्ष्यस्य प्रायश्चित्तं" याचितवान्" । द्वात्रिंशद्दशनसंख्यया एकस्मिन्" निबन्धे" द्वात्रिंशद्विहारान्कारयेति । राज्ञा तथाकृते, प्रभुदत्ते प्रतिष्ठालग्ने पटपद्रकानिजप्रासादमूलनायकप्रतिष्ठां कारयितुं श्रीपत्तनमुपेयुषि कान्हूनाम्नि व्यवहारिणि तन्नगरमुख्ये प्रासादे तद्बिम्बं मुक्त्वा यावदुपहारान्गृहीत्वा स पुनरुपैति तावन्नृपतेरङ्गरक्षकैर्निरुद्धे" द्वारि अन्तः प्रवेशमलभमानः कियति काले व्यतिक्रान्ते उत्थितैर्द्वारपालकैर्व्यतीते प्रतिष्ठोत्सवे" स तत्र प्रविश्य प्रभोः पादमूले लगित्वा सोपालम्भं भृशं" रुरोद । प्रभुभिरन्यथा तुरपनेयं तस्य दुःखं विमृश्य रङ्गमण्डपाद्बहिर्भूत्वा नक्षत्रचारेण स्वदत्तं" लग्नमुदितं ज्योतिः विलोक्य 'कूटघटिकासम्बन्धेन नैमित्तिकेन यस्मिँल्लग्ने बिम्बानि प्रतिष्ठापितानि तेषां वर्षत्रयमायुः । सम्प्रतितने लग्ने तु प्रतिष्ठितं बिम्बमिदं चिरायुरि'ति प्रभुभिरादिष्टम् । स तदैव प्रतिष्ठामकारयत्तत्प्रभृतं तथैव जज्ञे ।

॥ इत्यभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तप्रबन्धः ॥

---

1 AP तथा । 2 D अस्मत् प्रभुते । 3 P गभात्सायाके । 4 P नास्तेकार् भरय् । 5 D इंस्व । 6 AD इति नाम । 7 D प्रधानः पुरुषः । 8 AD एवं । 9 AD नास्ति । 10 D व्याख्यानं [illegible] । 11 BP 'अथ' नास्ति । 12-13 D [illegible] । 14 [illegible] AD । 15-16 BP प्रायश्चित्तं नास्ति । 17-18 D नास्ति । 19 AD 'प्रतिष्ठा' नास्ति । 20 D [illegible] । 21 P [illegible] । 22 D [illegible] । 23 AD 'भृशं' नास्ति । 24 'स्वदत्तं' स्थाने AD [illegible] ।

१५६) मयापहृते धने पुरा कश्चिन्मूषको मृतस्तत्प्रायश्चित्ते राज्ञा याचिते तच्छ्रेयसे[1] प्रभुभिस्तन्नामाङ्कितो विहारः कारितः ।

१५७) तथा च कयापि व्यवहारिवध्वाऽज्ञातज्ञातिनामग्रामसम्बन्धया पथि दिनत्रयं बुभुक्षितो नृपतिः शालिकरम्बेन सुहितीकृतस्तत्कृतज्ञतया तत्पुण्याभिवृद्धये करम्बकविहारं श्रीपत्तनेऽकारयत् ।

१५८) तथा यूकाविहारश्चैवम्–सपादलक्षदेशे कश्चिदविवेकी धनी[2] केशसंमार्जनावसरे प्रियार्पितां यूकां करतले सङ्गृह्य[4] पीडाकारिणीं तां तर्जयंश्चिरेण मृदित्वा व्यापदयामास । संनिहितैर्नामारिकारिपञ्चकुलेन स श्रीमदणहिल्लपुरे समानीय नृपाय निवेदितः । तदनु प्रभूणामादेशात्तद्दण्डपदे तस्य सर्वस्वेन तत्रैव यूकाविहारः कारितः ।

॥ इति यूकाविहारप्रबन्धः ॥

१५९) अथ स्तम्भतीर्थे सामान्ये सालिगवसहिकाप्रासादे यत्र प्रभूणां दीक्षाक्षणो बभूव तत्र रत्नमयबिम्बालङ्कृतो निरुपमो[7] जीर्णोद्धारः कारितः ।

॥ इति सालिगवसहि-उद्धारप्रबन्धः ॥

१६०) अथ श्रीसोमेश्वरपत्तने कुमारविहारप्रासादे बृहस्पतिनामा गण्डः कामम्परतिं कुर्वाणः प्रभोरप्रसादाद्भ्रष्टप्रतिष्ठः श्रीमदणहिल्लपुरं प्राप्य षोढावश्यकेऽपि[8] प्रौढिं प्राप्तः[9] प्रभून् सिषेवे । कदाचिच्चातुर्मासिकपारणके प्रभूणां पादयोर्द्वादशावर्त्तवन्दनादनु–

१९९. चतुर्मासीमासीत्तव पदयुगं नाथ निकषा कषायप्रध्वंसाद्विकृतिपरिहारव्रतमिदम् ।
इदानीमुद्भिद्यन्निजचरणनिर्लोठितकलेर्जलक्लिन्नैरन्नैर्मुनितिलक ! वृत्तिर्भवतु मे ॥

इति विज्ञपयंस्तत्कालागतेन राज्ञा प्रसन्नान् प्रभून् विमृश्य स पुनरेव तत्पदव्रानपात्रीकृतः ।

॥ इति बृहस्पतिप्रबन्धः[12] ॥

१६१) अन्यदा सर्वावसरस्थितेन राज्ञा आलिगनामा वृद्धप्रधानपुरुष इत्यपृच्छयत[14]–'यदहं श्रीसिद्धनृपतेर्हीनः समानोऽधिको वा ?' तेन चाऽछलप्रार्थनापूर्वं 'श्रीसिद्धनृपतेरष्टनवतिर्गुणा द्वौ दोषौ; स्वामिनस्तु द्वौ गुणौ तत्संख्या एव दोषाः' इति निवेदिते नृपतिर्दोषमये आत्मनि विरागं दधानो यावच्छुरिकां चक्षुषि क्षिपति तावत्तदा[18] तदाशयविदा तेनेति व्यज्ञपि–'श्रीसिद्धनृपतेरष्टनवतिर्गुणाः सङ्ग्रामाऽसुभटता-स्त्रीलम्पटतादोषाभ्यां तिरोहिताः[19], कार्पण्यादयो भवद्दोषास्तु समरशूरता-परनारीसहोदरतागुणाभ्यामपहृताः' इति तद्वचसा स पृथ्वीनाथः स्वस्थावस्थस्तस्थौ[20] ।

॥ इति आलिगप्रबन्धः ॥

१६२) अथ पुरा श्रीसिद्धराजराज्ये पाण्डित्ये स्पर्धमानो वामराशिनामा विप्रः प्रभूणां प्रतिष्ठानिष्ठां विशिष्टामसहिष्णुः–

---

1 BP विषद्ध. । 2 BP प्रायश्चित्तं यच्छतेति भूपेन विज्ञप्तैः । 3 P धनवान् । 4 A गृह्य; BP कलयन् । 5 D 'मय' नास्ति । 6 P नास्ति । 7 AD प्रभुदीक्षावसहिकाया उद्धार॰ । 8 AD 'पि' नास्ति । 9 D प्राप्य । 10 D यावत् । 11 P इदानीमभ्युद॰ । 12 D बृहस्पतिगण्डस्य पुन. पददानप्रबन्धः । 13 AD वृद्धः । 14 AB अपृच्छत् । 15 AD सम्यक्॰ । 16 AD सङ्ग्रामाद्य दोष॰ । 17 BP क्षुरिकायां चक्षुर्निक्षिपति । 18 D तावदाशय॰ । 19 P तिरस्कृताः । 20 P स्वस्थमवस्थामाप ।

२००. यूकालक्षशतावलीवलवलल्लोलोल्ललत्[1]कम्बलो दन्तानां मलमण्डलीपरिचयाद्दुर्गन्धरुद्धाननः ।
नासावंशनिरोधना[3]द्गिणिगिणत्पाठप्रतिष्ठारुचिः सोऽयं हेमडसेवडः पिलपिलत्खल्लिः समागच्छति ॥

इति तदीयममन्दं निन्दास्पदं वचनमाकर्ण्यान्तर्भूत[4]ण्यर्थवत्तर्जनापरं वचः प्रभुभिरभिहितम्[5]– 'पण्डित ! विशेषणं[2] पूर्वमिति भवता किं[6] नाधीतम् ? अतः परं सेवडहेमड इत्यभिधेयमिति'। सेवकैः[7] कुन्तपश्चाद्भागेन तदा[8]हृत्य मुक्तः। श्रीकुमारपालनृपते राज्येऽशक्तो वध इति तद्वृत्तिच्छेदः कारितः। स ततः परं कणभिक्षया प्राणाधारं कुर्वाणः प्रभूणां पौषधशालायाः पुरतः स्थितोऽना[9]दिभूपतितपस्विभिरधीयमानं योगशास्त्रमाकर्ण्याऽशठतयेदमपाठीत्–

२०१. आतङ्ककारणमकारणदारुणानां वक्रेषु[10] गालिगरलं निरगालि येषाम् ।
तेषां जटाधरफटाधरमण्डलानां श्रीयोगशास्त्रवचनामृतमुज्जिहीते ॥

इति तद्वचसाऽमृत[11]धारासारेण निर्वाणपूर्वोपतापास्तस्मै द्विगुणां वृत्तिं प्रसादीकृतवन्तः ।

॥ इति वामराशिप्रबन्धः ॥

१९३) अथ कदाचिच्चारणौ द्वौ सुराष्ट्रामण्डलनिलयौ दूहाविद्यया मिथः[12] स्पर्धमानौ 'श्रीहेमचन्द्राचार्येण यो व्याख्यायते सोऽपरस्य हीनोपक्षयं ददाती'ति प्रतिज्ञाय श्रीमदणहिल्लपुरं प्रापतुः। तदैकेन प्रभुसभागतेन–

२०२. लच्छि-वाणिमुहकाणि सा[13] पई भागी मुह मरउं[14] । हेमसूरिअत्थाणि[15] जे ईसर ते पण्डिया ॥

इत्युक्त्वा तूष्णीं[16] स्थिते तस्मिन्; श्रीकुमारविहारे आरात्रिकावसरानन्तरं प्रणामपरो नृपः प्रभुणा दत्तपृष्ठिहस्तः क्षणं यावत्तिष्ठति; अत्रान्तरे प्रविश्य[17] द्वितीयश्चारणः–

२०३. हेम तुहाला कर मरउं[18] जिह[19] अबन्भुयैंरिद्धि[20] । जे चंपह हिट्ठा मुहा तीहँ[21] ऊपहरीं[22] सिद्धि ॥

इत्यनुच्छिष्टेन तद्वचसाऽन्तश्चमत्कृतो नृपतिरेतदेव भूयोभूयः पाठयामास। तेन[23] त्रिःकृत्वः पठिते 'किं पठिते पठिते लक्षं दास्यसी?' ति विज्ञप्तस्तस्मै त्रिलक्षीं दापयामास ।

॥ इति [24]चारणयोः प्रबन्धः ॥

१९४) कदाचिच्छ्रीकुमारपालनृपतिः श्रीसङ्घाधिपतीभूय तीर्थयात्रां चिकीर्षुर्महता महेन श्रीदेवालयप्रस्थाने सञ्जाते सति देशान्तरादायातयुगलिकया 'त्वां प्रति डाहलदेशीयकर्णनृपतिरुपैती'ति विज्ञप्तः। स्वेदबिन्दुतिलकितं ललाटं दधानो मन्त्रिवाग्भटेन सार्कं साध्वसध्वस्तसङ्घाधिपत्यमनोरथः प्रभुपादान्ते स्वं निनिन्द। अथ तस्मिन्नृपतेः समुपस्थिते महाभये किञ्चिदवधार्य 'द्वादशे यामे भवतो निवृत्तिर्भविष्यती'त्यादिश्य विसृष्टो नृपः किंकर्तव्यतामूढो यावदास्ते तावन्निर्णीतवेलायां समागतयुगलिकया 'श्रीकर्णो दिवं गत' इति विज्ञप्तः। नृपेण ताम्बूलमुत्सृजता[25] कथमिति पृष्टौ तावूचतुः–'कुम्भिकुम्भस्थलस्थः श्रीकर्णः निशि प्रयाणं कुर्वन्निद्रामुद्रितलोचनः कण्ठपीठप्रणयिना सुवर्णशृङ्खलेन प्रविष्टन्यग्रोधपादपेनोल्लम्बितः पञ्चतामचितवान्। तस्य

1 D ०ल्लसद्–। 2 D विशेष०। 3 B ०गिणिगिणितिवाल्यनिष्ठास्थितिः; D ०गणिगिणित्पादमनिष्ठ०। 4 AD ०भूतासर्पवत्। 5 BP अभिदधे। 6 P नास्ति। 7 D विहाय नास्त्यन्तर। 8 D 'तत्' नास्ति। 9 D आनादि०। 10 D वक्त्रेषु। 11 P वचनामृत०। 12 AD नास्ति। 13 B ए पई; D ए यई। 14 D मरउं। 15 D अत्थीणि। 16 D अभ्यर्णे। 17 P नास्ति। 18 D मरउं। 19 AD जांह। 20 AD अबन्भू०। 21 AD तांह। 22 B उप्पहरीं; P उप्पहरइं। 23 D ततः। 24 D सौराष्ट्रचारणयोः। 25 AD उत्सृज्य।

संस्कारानन्तरमावां प्रचलिताविति ताभ्यां विज्ञप्ते तत्कालं पौषधवेश्मनि समागतो नृपः प्रशंसापरः कथं कथमप्यपवार्य[1] द्वासप्ततिमहासामन्तैः समं समस्तसङ्घेन च प्रभुणा द्विधोपदिश्यमानवर्त्मा धुन्धुक्कनगरे प्राप्तः । प्रभूणां जन्मगृहभूमौ स्वयं कारितसप्तदशहस्तप्रमाणे झोलिकाविहारे प्रभावनां विधित्सुर्जातिपिशुनानां द्विजातीनामुपसर्गमुदितं वीक्ष्य तान् विषयताडितान् कुर्वन् श्रीशत्रुञ्जयतीर्थमाराधयामास[2] । तत्र[3] "दुक्खक्खओ कम्मक्खओ" इति प्रणिधानदण्डकमुच्चरन् देवस्य पार्श्वे विविधप्रार्थनावसरे–

२०४. इक्कह फुल्लह माटि सामीउ "देयइ[4] सिद्धिसुहु । तिणिसउं[5] केही साटि कंटरे भोलिम जिणवरह ॥

इति चारणमुच्चरन्तं निशम्य नवकृत्वः पठितेन नवसहस्रांस्तस्मै नृपो ददौ । तदनन्तरमुज्जयन्तसन्निधौ गते तस्मिन्नकस्मादेव पर्वतकम्पे सञ्जायमाने श्रीहेमचन्द्राचार्या नृपं प्राहुः–'इयं छत्रशिला युगपदुपेतयोरुभयोः[7] पुण्यवतोरुपरि निपतिष्यतीति वृद्धपरंपरा[8] । तदावां पुण्यवन्तौ, यदियं गीः[9] सत्या भवति तदा लोकापवादः । नृपतिरेवातो[10] देवं नमस्करोतु न वयमि'त्युक्ते नृपतिनोपरुध्य प्रभव एव सङ्घेन सहितैः[11] महिताः न[12] स्वयम् । छत्रशिलामार्गं परिहृत्य परस्मिन् जीर्णप्राकारपक्षे नव्यपद्याकरणाय श्रीवाग्भटदेव आदिष्टः । पद्योपक्षये[13] व्ययीकृतास्त्रिषष्टिलक्षाः ।

॥ इति तीर्थयात्राप्रबन्धः ॥

१६५) कदाचित्पृथिव्या आनृण्याय नृपतिना स्वर्णसिद्ध्यै श्रीहेमचन्द्रसूरीणामुपदेशात्तद्गुरवः श्रीदेवचन्द्राचार्याः[14] श्रीसङ्घनृपतिविज्ञप्तिकाभ्यामाकारितास्तीव्रव्रतपरायणा महत्सङ्घकार्यं विमृश्य विधिविहारक्रमेण पथि केनाप्यलक्ष्यमाणा निजामेव पौषधशालामागताः । राजा तु प्रत्युद्गमादिसामग्रीं कुर्वन् प्रभुज्ञापितै[15]स्तत्राययौ । अथ गुरोः[16] पुरो नृपतिप्रमुखैः समस्तश्रावकयुतैः[17] प्रभुभिर्द्वादशावर्त्तवन्दनं[18] दत्त्वा तौ श्रुततदुपदेशौ[19] गुरुभिः पृष्टे सङ्घकार्ये सभां विसृज्य जवनिकान्तरितौ श्रीहेमचन्द्र-नृपती[20] तत्पादयोर्निपत्य सुवर्णसिद्धि[21]याचनां चक्राते । 'मम बाल्ये [22]वर्त्तमानस्य ताम्रखण्डं काष्ठभारवाहकात् याचितवल्लीरसेनाभ्यक्तं युष्मदादेशाद्वह्निसंयोगात्सुवर्णीयभूव । तस्या वल्लेर्नामसङ्केतादिरादिश्यतामि'ति श्रीहेमाचार्ये उक्तवति कोपाटोपात् श्रीहेमचन्द्रं दूरतः प्रक्षिप्य 'न योग्योऽसीति; अग्रे मुद्गरसप्रायदत्तविद्यया त्वमजीर्णभाक्, कथमिमां विद्यां मोदकप्रायां[23] तव मन्दाग्नेर्ददामि ?' इति तं निषिध्य नृपं प्रति 'एतद्भाग्यं भवतो नास्ति येन जगदानृण्यकारिणी हेमनिष्पत्तिविद्या तव सिद्ध्यति; अपि च मारिनिवारणजिनमण्डितपृथ्वीकरणादिभिः पुण्यैः सिद्धे लोकद्वये किमतोऽप्यधिकमभिलपसी'त्यादिश्य तदैव[25] विहारक्रमं[26] कृतवन्तः ।

॥ इति सुवर्णसिद्धिनिषेधप्रबन्धः ॥*

{ †एकदा पृष्टः राज्ञा पूर्वभवस्वरूपं तत्सर्वं कथितं प्रभुभिरिति । }

* * * * *

1 P वारित्वा । 2 AB आराधन् । 3 AD नास्ति । 4 AD देवइ सामी । 5 AD तिणिसिउ । 6 D नास्ति, P कपर; A रे । 7 AD द्वयो. । 8 D परपरया । 9 D गीरसत्यासत्या । 10 D 'अत' नास्ति । 11 AD सह । 12 D नास्ति । 13 D पद्यापा. पक्षद्वये । 14 D नास्ति । 15 P प्रभुणादिष्ट । 16 AD गुरो । 17 P सहितै. । 18 'वन्दन दत्त्वा' स्थाने D 'वन्दनावन्दितै वन्दनान्ते' । 19 AD ॰देशानन्तर । 20 P नास्त्येतत्पद । 21 AD सिद्धे' । 22 P विषमा॰ । 23 P मोदकादनसङ्काशां । 24 BP सुवर्ण॰ । 25 AD तथैव । 26 P विहार । * P आदर्श एतत् पङ्क्तिद्वयमुपलभ्यते । † D पुस्तक एवैषा पङ्क्तिर्दृश्यते नान्यत्र ।

१९६) अथ कस्मिन्नप्यवसरे सपादलक्षं प्रति सज्जीकृते सैन्ये श्रीवाग्भटस्यानुजन्मा चाहडनामा मन्त्री दानशौण्डतया दूषितोऽपि भृशमनुशिष्य भूपतिना सेनापतिश्चक्रे । तेन प्रयाणद्वित्रयानन्तरमस्तोकमर्थिलोकं मिलितमालोक्य कोशाधिपा[1]ल्लक्षद्रव्ये याचिते सति नृपादेशात्तस्मिन्नददाने, अथ तं कशाप्रहारेणाहत्य सेनापतिः कटकान्निरवासयत् । स्वयं तु यदृच्छया दानैः प्रीणितार्थिलोकश्चतुर्दशशतीसंख्यासु करभीष्वारोपितैर्द्विगुणैः सुभटैः समं सञ्चरन् मितैः प्रयाणैर्बम्बेरानगरप्राकारं वेष्टयामास । अथ तस्यां निशि सप्तशतीकन्यानां विवाहः प्रारब्धोऽस्तीति नगरलोकान् मत्वा तद्विवाहार्थं तथैव निशि स्थित्वा प्रातः प्राकारपरावर्त्तं चकार । तत्राधिगतं स्वर्णकोटीः सप्त तथैकादशसहस्राणि वडवानामिति सम्पत्तिगर्भितां विज्ञप्तिकां वेगवत्तरैर्नरैर्नृपं प्रति प्राहिणोत् । स्वयं तत्र देशे श्रीकुमारपालनृपतेराज्ञां दापयित्वा[3]ऽधिकारिणो नियोज्य व्याघुटितः । श्रीपत्तनं प्रविश्य राजसौधमधिगम्य नृपं प्रणनाम । नृपस्तदुचितालापावसरे तद्गुणरञ्जितोऽप्येवमवादीत्–'तव स्थूललक्ष्यतैव मद्दूषणं [*दार्ष्टान्तिकयोः साधनादौ साधीयान् नेदीयान्प्रयोगनिष्पत्तिः] रक्षामन्त्रः, नो वा चक्षुर्दोषेणोर्द्ध्व एव विदीर्यसे । यं व्ययं भवान् कुरुते तादृशं कर्त्तुमहमपि न प्रभूष्णुः ।' स इति श्रुतनृपादेशो नृपं प्रति 'तथ्यमेव तदादिष्टं देवेन, एवंविधं व्ययं कर्त्तुं प्रभुर्न प्रभवति । यतः स्वामी परम्परया न नृपतेः सुतः । अहं तु नृपपुत्रः । अतो मयैव साधीयान् द्रव्यव्ययः क्रियते ।' तेनेति विज्ञप्ते नृपतिस्तोषं करोतु रोषं वा, निकषं निकषाकाञ्चनश्रियमासाद्य, अनर्घ्यतां लभमानो नृपतिविसृष्टः स्वं पदं प्रपेदे ।

॥ इति राजघरट्टचाहडप्रबन्धः ॥

१९७) तथा[5] तस्य कनीयान् भ्राता सोलाकनामा मण्डलीकसत्रागारमिति[6] बिरुदं बभार ।

१९८) अथ कदाचिद् आनाकनामा मातृष्वस्रीयस्तत्सेवागुणतुष्टेन राज्ञा दत्तसामन्तपदोऽपि तथैव सेवमानः कदापि मध्यन्दिनावसरे चन्द्रशालापल्यङ्कस्थितस्य नृपतेः पुरो निविष्टः सहसा कमपि प्रेष्यं तत्र प्राप्तं प्रेक्ष्य कोऽयमिति पृष्टे नृपतिना[7] श्रीमदानाकः स्वं कर्मकरमुपलक्ष्य तत्सङ्केतान्निकेतनान्निर्गत्य सकौशलं †पृष्टः पुत्रजन्मवर्द्धापनिकां प्रार्थयामास । स तया वार्त्तया तु दिनकरप्रभयेव विकसितवदनारविन्दं तं[8] विसृज्य स्वं पदमुपेतः । राज्ञा[9] किमेतदिति पृष्टस्तेन स्वामिनः पुत्रोत्पत्तिरिति विज्ञप्ते; स वसुधाधवः स्वगतं किञ्चिदवधार्य तं प्रति प्रकाशं प्राह– 'यज्जन्म निवेदयितुमयं कर्मकरो वेत्रिभिरस्खलित एवेमां भुवमाप[10] तावता पुण्योपचयेनायं गूर्जरदेशे नृपो भावी, परमस्मिन्पुरे धवलगृहे च न; यतोऽतः स्थानादुत्थापितस्य तवाग्रे सुतोत्पत्तिर्निवेदिता,[11] ततो हेतोर्नास्मिन्नगरेश्वरत्वम्' ।

॥ इति विचारचतुर्मुखेन श्रीकुमारपालदेवेन निर्णीतो[12] लवणप्रसादराणकप्रबन्धः ॥

२०५. आज्ञावर्तिषु मण्डलेषु विपुलेष्वष्टादशस्वादरादब्दान्येव चतुर्दश प्रसृमरां मारिं निवार्यौजसा ।
कीर्तिस्तम्भनिभांश्चतुर्दशशतीसंख्यान्विहारांस्तथा कृत्वा निर्मितवान्कुमारनृपतिर्जैनो निजैनोव्ययम् ॥

---

1 P कोशाध्यक्षात् । 2 AD चौरः । 3 P दापयामास । * कोष्ठकगता पंक्तिः AD आदर्शे दृश्यते । 4 D चोपेन । 5 D अथ । 6 AD 'इति' नास्ति । 7 P नृपतिना आदिष्टः । 8 B विवेचनात्, P नास्ति । † एतदन्तर्गतपाठस्थाने P आदर्शे 'पृष्टस्तेन पुत्रजन्मना वर्द्धापितो दिनकरप्रभाविनिद्रारविन्दं सुन्दरवदनस्तं' एतादृशः पाठः 9 P क्षितिपतिना । 10 D भुवमाप । 11 P पूर्णतोऽयं निवेदितः । 12 D निर्णीतम् । 13 P विहाय नान्यत्र 'राणक' शब्दः ।

[१२५] {¹कर्णाटे गूर्जरे लाटे सौराष्ट्रे कच्छ-सैन्धवे। उच्चायां चैव भंभेर्यां मारवे मालवे तथा॥
[१२६] ¹कौंकणे तु तथा राष्ट्रे कीरे जांगलके पुनः। सपादलक्षे मेवाडे दील्यां जालन्धरेऽपि च॥
[१२७] ¹जन्तूनामभयं सप्तव्यसनानां निषेधनम्। वादनं न्यायघण्टाया रुदतीधनवर्जनम्॥}

१६९) अथ प्रभोः कदाचित्, कच्छपराजलक्षराजमातुर्महासत्याः शापाच्छ्रीमूलराजान्वयिनां राजन्यानां² लूतारोगः सङ्क्रामतीति सम्बन्धात्तु गृहिधर्मप्रतिपत्त्यवसरे प्रभोरुद्गणितराज्यभारे श्रीकुमारपाले तच्छिद्रेण प्रविश्य लूताव्याधिर्बाधामधात्। तद्दुःखदुःखिते सराजलोके राज्ञि प्रणिधानान्निजमायुः सबलं वीक्ष्याऽष्टाङ्गयोगाभ्यासेन प्रभवस्तं लीलयोन्मूलितवन्तः।

१७०) कदापि कदलीपत्राधिरूढं कमपि योगिनमालोक्य विस्मिताय नृपतये आसनबन्धेन चतुरङ्गुलभूमित्यागाद्ब्रह्मरन्ध्रेण निर्यत्तेजःपुञ्जं प्रभवो दर्शयामासुः।

१७१) अथ चतुरशीतिवर्षप्रमाणायुःपर्यन्ते निजमवसानदिनमवधार्यान्त्याराधनक्रियायामनशनपूर्वं प्रारब्धायां तदर्तितरलिताय नृपतये 'तवापि षण्मासीशेषमायुरास्ते, सन्तत्यभावाद्ध्रियमाण एव निजामुत्तरक्रियां कुर्या' इत्यनुशिष्य दशमद्वारेण प्राणोत्क्रान्तिमकार्षुः। तदनन्तरं प्रभोः संस्कारस्थाने⁴ तद्भस्म पवित्रमिति राज्ञा तिलकव्याजेन नमश्चक्रे। ततः समस्तसामन्तैस्तदनु नगरलोकैस्तत्रत्यमृत्स्नायां गृह्यमाणायां तत्र हेमखड्ड इत्यद्यापि प्रसिद्धिः।

१७२) अथ राजा बाष्पाविललोचनः प्रभुशोकविक्लवमनाः सचिवैर्विज्ञप्त इदमवादीत्–'स्वपुण्यार्जितोत्तमलोकान् प्रभून् शोचामि किं तु निजमेव ससाङ्गं राज्यं सर्वथा परिहार्यं राजपिण्डदोषदूषितं यन्मदीयमुदकमपि जगद्गुरोरङ्गे न लग्नं तदेव शोचामी'ति प्रभुगुणानां स्मारं स्मारं सुचिरं विलप्य प्रभृतिते दिने तदुपदिष्टविधिना समाधिमरणेन नृपः स्वर्लोकमलंचकार।

(अत्र P आदर्शे निम्नोद्धृता एतद्गुणश्लोकान्श्लोकाः प्राप्यन्ते–)

[१२८] {पृथुप्रभृतिभिः पूर्वैर्गच्छद्भिः पार्थिवैर्दिवम्। स्वकीयगुणरत्नानां यत्र न्यास इवार्पितः॥
[१२९] न केवलं महीपालाः सायकैः समराङ्गणे। गुणैर्लोकंपृणैर्येन निर्जिताः पूर्वजा अपि॥
[१३०] वीतरागरतेर्यस्य मृतवित्तानि मुञ्चतः। देवस्येव नृदेवस्य युक्ताभूदमृतार्थिता॥
[१३१] करवालजलैः स्नातां वीराणामेव योऽग्रहीत्। श्रीं वाष्पाम्बुधाराभिर्निर्वीराणां न तु श्रियम्॥
[१३२] शूराणां सम्मुखान्येव पदानि समरे ददौ। यः पुनस्तत्कलत्रेषु मुखं चक्रे पराङ्मुखम्॥
[१३३] हृदि प्रविश्यद्बाणक्लिष्टेनाघूर्णितं शिरः। जाङ्गलक्षोणिपालेन व्याचक्षाणैः परैरपि॥
[१३४] चूडारत्नप्रभावक्रं नम्रं गर्वादकुर्वतः। कणशः कुङ्कणेशस्य यश्चकार शरैः शिरः॥
[१३५] रागाद् भूपालवल्लाल-मल्लिकार्जुनयोर्मृधे। गृहीतौ येन मूर्धानौ स्तनाविव जयश्रियः॥
[१३६] दक्षिणक्षितिपं जित्वा यो जग्राह द्विपद्वयम्। तद्यशोभिः करिष्यामो विश्वं नश्यद्विपद्वयम्॥
[१३७] विहारं कुर्वता वैरिवनिताकुचमण्डलम्। महीमण्डलमुद्दण्डविहारं येन निर्ममे॥
[१३८] पादलग्नैर्महीपालैः पशुभिश्च तृणाननैः। यः प्रार्थित इवात्यर्थमहिंसाव्रतमग्रहीत्॥}

१७३) सं० ११९९ वर्षपूर्वं ३१ श्रीकुमारपालदेवेन राज्यं कृतम्।

---

¹ P आदर्शे एव एतच्छ्लोकत्रयं प्राप्यते। 1 D नास्ति। 2 D संक्रमतीति ॥ व्याधिः कुमारपाले बाधामधात्। सम्बन्धात्–। 3 D दृस्त्वभूमि०। 4 D नास्ति। 5 D संस्काराद्भु।

१७४) सं० १२३० वर्षेऽजयदेवो राज्येऽभिषिक्तः ।

(एतद्वर्णनात्मकाऽपि P आदर्शे एते विशिष्टाः श्लोकाः प्राप्यन्ते—)

[१३९] {भूपालोऽजयपालोऽभूत्कल्पद्रुमसमस्ततः । चक्रे वसुन्धरा येन काञ्चनैरनकिञ्चना ॥
[१४०] दण्डे मण्डपिका हैमी सह मत्तैर्मतङ्गजैः । दत्त्वा पादं गले येन जाङ्गलेशादगृह्यत ॥
[१४१] जामदग्न्य इवोद्दामधाममर्त्सितभास्करः । क्षत्रास्रक्षालितां धात्रीं श्रोत्रियत्रा चकार यः ॥
[१४२] दानानि ददतो नित्यं नित्यं दण्डयतो नृपान् । नित्यमुद्वहतो नारीर्यस्यासीत् त्रिगणः समः ॥}
[१४३] धृतपार्थिवनेपथ्ये निष्क्रान्तेऽत्र शतक्रतौ । जयन्ताभिनयं चक्रे मूलराजस्तदङ्गजः ॥

१७५) अस्मिन् अजयदेवे[1] पूर्वजप्रासादान् विध्वंसयति सति सीलणनामा कौतुकी नृपतेः पुरः प्रारब्धेऽवसरे कृतकामपटुतां मायया निर्माय तत्र स्वकल्पितं तृणमयं देवकुलपञ्चकं पुत्रेभ्यः समर्प्य 'ममानन्तरं भक्त्यतिशयेनाराधनीयमि'त्यनुशिष्यान्त्यावस्थायां यावदास्ते तावत्तेन लघुपुत्रेण तत्तूर्णं चूर्णितमाकर्ण्य 'रे पुत्राधम'। श्रीमदजयदेवेनापि पितुः परलोकानन्तरं तद्धर्मस्थानानि विध्वंसितानि, त्वं त्वधुनैव मयि विद्यमानेऽपि चूर्णयन्[2] अधमाधमतां गतोऽसी'ति तस्य तद्धसरालापेन[†] सत्रपो नृपस्तस्मादसमञ्जसाद्विरराम। [‡]तद्विनावशिष्टाः श्रीकुमारविहारा अद्यापि[3] दृश्यन्ते। श्रीतारङ्गदुर्गे अजयपालनाम्ना अजितनाथो धूर्तैरित्युपायेन रक्षितः[‡]।

१७६) तदनु श्रीअजयदेवेन श्रीकपर्दिमन्त्री महामात्यपदं दातुमत्यर्थमभ्यर्थितः । 'प्रातः शकुनान्यवलोक्य तदनुमत्या प्रभोरादेशमाचरिष्यामी'त्यभिधाय शकुनगृहं गतः । ततः ससविधं दुर्गादेव्याः याचितं शकुनमवाप्य तच्छकुनं पुष्पाक्षतादिभिरभ्यर्च्य कृतकृत्यं[4] मन्यमानः पुरगोपुरान्तः[5] प्राप्तो नदन्तं वृषभमीशानदिग्भागे विलोक्यातिशयस्मेरमनाः[6] सं निधासमासाद्य भोजनानन्तरं मरुवृद्धेन यामिकेन शकुनस्वरूपं पृष्टः श्रीकपर्दी तदग्रे तत्स्वरूपमादिश्य तांस्तुष्टाव। ततो मरुवृद्धः[7]—

२०६. नद्युत्तारेऽप्यवैषम्ये दुर्गे[8] संनिहिते भये । नारीकार्ये रणे व्याधौ विपरीता प्रशस्यते ॥

इति प्रामाण्याद्व्यानासन्नव्यसनतया मतिभ्रंशात्प्रतिकूलमप्यनुकूलं मनुषे[9]। यस्तु[10] वृषभो भवता शुभः परिकल्पितः सोऽपि भवदुव्यापत्त्या शिवस्याभ्युदयं पश्यंस्तद्वाहनोऽसौ जगर्ज। इति तदुक्तिमवमन्यमाने तस्मिन्नापृच्छ्य तीर्थान्यवगाढुं[11] गते, स नृपतिना प्रसादीकृतां मुद्रामासाद्य महता महेन समधिगतनिजसौधे विश्रम्य निशि नृपतिना विधृतः समानप्रतिष्ठैरभिभवितुमारब्धः ।

२०७. जो करिवराण कुम्भे पायं दाऊण मुत्तिए[12] दलइ । सो सीहो विहिवसओ[13] जम्बूयपयंपिछणं सहइ ॥

इत्यादि विमृशन्कटाहिकायां प्रक्षेपकाले—

२०८. अर्थिभ्यः कनकस्य दीपकपिशा विश्राणिताः कोटयो[14] वादेषु प्रतिवादिनां विनिहिताः शास्त्रार्थगर्भा गिरः । उत्खातप्रतिरोपितैर्नृपतिभिः शारैरिव क्रीडितं कर्तव्यं कृतमर्थिता यदि विधेस्तत्रापि सज्जा वयम् ॥

स सुधीरिति काव्यमधीयंस्तथैव व्यापादयांचक्रे ।

॥ इति मन्त्री[15] श्रीकपर्दिप्रबन्धः ॥

---

1 P विना नान्यत्रेदं पदं। 2 P विना नान्यत्र। 3 AD त्वद्यापि। † एतदन्तर्गतपाठस्थाने ABD 'अधमाधमोऽसीति तद्वालापेन' एतादृशः पाठः। ‡ एतदन्तर्गता पङ्क्तिः P आदर्शे एवोपलभ्यते। 4 P कृतकृत्यमानी। 5 P गोपुराभ्यर्णे। 6 P ०मानसः। 7 ABP नास्ति। 8 D तथा। 9 D मनुते। 10 D यस्त्वया वृषभः। 11 D तद्वराशाय तथा। 12 D तद्दर्शनपरागाढुं। 13 P मुत्तियं। 14 P सो विहिवसेण सीहो। 15 AD परिपिछणं। 16 P शतशः। 17 AD अन्त्यकार्यं। 18 AD 'मंत्री' नास्ति।

१७७) अथ प्रबन्धशतकर्त्ता रामचन्द्रस्तु तेन भूपापसदेन तप्तताम्रपट्टिकायां निवेश्यमानः–

२०९. महिवीढह सचराचरह जिणिं सिरिं दिन्हा पाय । तसु अत्थमणु दिणेसरह होइ त्तु होउ चिराय ॥

इत्युदीर्य दशनाग्रेण रसनां छिन्दन् विपन्न एव व्यापादयांचक्रे ।

॥ इति रामचन्द्रप्रबन्धः ॥

१७८) अथ राजपितामहः श्रीमानाम्रभटस्तत्तेजोऽसहिष्णुभिः सामन्तैस्तैः समं तदा लब्धावसरैः प्रणामं कारयद्भिराक्षिप्त एवमवादीत्–'देवबुद्ध्या श्रीवीतरागस्य, गुरुबुद्ध्या श्रीहेमचन्द्रमहर्षेः, स्वामिबुद्ध्या कुमारपालस्यैव मे नमस्कारोऽस्मिन् जन्मनी'ति । जैनधर्मवासितसप्तधातुना तेनेत्यभिहिते रुष्टो राजा युद्धसज्जो भवेति तद्गिरमाकर्ण्य श्रीजिनबिम्बं समभ्यर्च्याऽनशनं प्रपद्याङ्गीकृतसङ्ग्रामदीक्षो निजसौधाद्राज्ञः परिग्रहं निजभटवातेन तृणनिकरमिव विकिरन् घटिकागृहे प्राप्तः । तेषां मलीमसानां सङ्गजनितं कश्मलं धारातीर्थे प्रक्षाल्य तत्कौतुकालोकनागताभिरप्सरोभिरहंपूर्विकया व्रियमाणो देवभूयं जगाम ।

२१०. वरं भट्टैर्भाव्यं वरमपि च खिड्गैर्द्धनकृते वरं वेश्याचार्यैर्वरमपि महाकूटनिपुणैः ।
दिवं याते दैवादुदयनसुते दानजलधौ न विद्वद्भिर्भाव्यं कथमपि बुधैर्भूमिवलये ॥

२११. त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः । अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते ॥

इति पुराणोक्तप्रामाण्यात्स कुनृपतिर्वयजलदेवनाम्ना प्रतीहारेण क्षुरिकया हतो धर्मस्थानपातनपातकी कृमिभिर्भक्ष्यमाणः प्रत्यक्षं नरकमनुभूय परोक्षतां प्रपेदे ।

सं० १२३० पूर्वं वर्ष ३ अजयदेवेन राज्यं कृतम् ।

१७९) सं० १२३३ पूर्वं वर्ष २ बालमूलराजेन राज्यं कृतम् । अस्य मात्रा नाइकिदेव्या परमर्दिनृपतिसुतयोत्सङ्गे शिशुं सुतं नृपं निधाय गाडरारघट्टनामनि घाटे सङ्ग्रामं कुर्वत्या म्लेच्छराजा तत्सत्त्वादकालागतजलदपटलसाहाय्येन विजिग्ये ।

[१४४] {*चापलादिव बालेन विहृता समराङ्गणे । तुरुष्काधिपतेर्येन विप्रकीर्णा वरूथिनी ॥

[१४५] *यच्छिन्नम्लेच्छकङ्कालस्थलमुर्वीविलोकयन् । पितुः प्रालेयशैलस्य न सरत्यर्बुदाचलः ॥

[१४६] *द्रुतमुन्मूलिते तत्र धात्रा कल्पद्रुमाङ्कुरे । उज्जगामानुजन्मास्य श्रीभीम इति भूपतिः ॥}

१८०) सं० १२३५ पूर्वं वर्ष ६३ श्रीभीमदेवेन राज्यं कृतम् ।

[१४७] *भीमसेनेन भीमोऽयं भूपतिर्न कदाचन । बकोपकारिणा तुल्यो राजहंसदमक्षमः ॥

अस्मिन् राजनि राज्यं कुर्वाणे श्रीसोहडनामा मालवभूपतिर्गूर्जरदेशविध्वंसनाय सीमान्तमागतः ततः प्रधानेन सम्मुखं गत्वेत्यवादि–

२१२. प्रतापो राजमार्तण्ड । पूर्वस्यामेव राजते । स एव विलयं याति पश्चिमाशावलम्बितः ॥

इति विरुद्धामुपश्रुतिं तद्गिरमाकर्ण्य स पश्चान्निववृते । तदनु तेन तत्पुत्रेण श्रीमदर्जुनदेवनाम्ना गूर्जरदेशभङ्गोऽकारि ।

1 D त्रिन । 2 P दिन्ना सिरि । 3 AD होवत होह । 4 AD प्रमाणोक्त० । 5 D 'पातन' नास्ति । 6 D 'सुतं नृपं' नास्ति । 7 A विजग्ये । 8 B गाडरा० । * P आदर्शे एव पद्यचतुष्कमेतत् प्राप्यते । 9 AD नास्ति पद्यमिदम् । 10 D नास्ति । 11 P गूर्जरधरा० ।

१८१) श्रीमद्भीमदेवराज्यचिन्ताकारी व्याघ्रपल्लीयसङ्केतप्रसिद्धः श्रीमदानाकनन्दनः श्रीलवणप्रसादश्चिरं राज्यं चकार। तत्सुतः साम्राज्यभारधवलः श्रीवीरधवलः। तन्माता मदनराज्ञी देवराजनाम्नो भगिनीपतेः पट्टकिलस्य भगिन्यां विपन्नायां तस्य बहुतरमनिर्वहमाणमायद्वारं निशम्य तन्निर्वहणाय लवणप्रसादाभिधपतिमापृच्छ्य शिशुना वीरधवलेन समं तत्र गता सती तेन स्पृहणीयगुणाकृतिरिति गृहिणी चक्रे। श्रीलवणस्तद्वृत्तान्तं सम्यगवगम्य तं व्यापादयितुं निशि तद्गृहे प्रविष्टः। निभृतीभूय स यावदवसरं निरीक्षते, तावत्स भोजनायोपविशन् 'वीरधवलं विना नाश्नामी'ति भूयो भूयो व्याहृत्य निर्बन्धात्समानीयैकस्मिन्नेव स्थालेऽश्नन्नकस्मादापतितशरीरिणं कृतान्तमिव सातङ्कमालोक्य श्यामलास्यो मा भैषीरिति तेनोचे–'यदहं त्वामेव हन्तुमागतः परमस्मिन्मन्नन्दने वीरधवले वात्सल्यं साक्षाच्चक्षुषा निरीक्ष्य तदाग्रहान्निवृत्तोऽस्मी'त्युक्त्वा तेन सत्कृतो यथागतं जगाम।

१८२) वीरधवलस्यापरपितृकाः[1] राष्ट्रकूटान्वयाः साङ्गण-चामुण्डराजादयो वीरव्रतेन[4] भुवनतलप्रतीताः।

१८३) अथ स वीरधवलक्षत्रिय उन्मीलितकिञ्चिच्चेतनस्तस्मान्मातृवृत्तान्तात्त्रपमाणस्तद्गृहं त्यक्त्वा निजमेव जनकं सिषेवे। स तु[5] आजन्मौदार्यगाम्भीर्यस्थैर्यनयविनयौचित्यदयादानदाक्षिण्यादिगुणशाली[7] शालीनतया कण्टकप्रस्तां कामपि भुवमाक्रम्य पित्रापि कियत्कृतजनपदप्रसादो द्विजन्मना चाहडनाम्ना सचिवेन चिन्त्यमानराज्यभारः प्राग्वाटवंशमुक्तामणिना पुरा श्रीमत्पत्तनवास्तव्येन तत्कालं तत्रायाततेजःपालमन्त्रिणा सह सौहार्दमुत्पेदे[8]।

[१०. वस्तुपाल-तेजःपालप्रबन्धः।]

---

१८४) अथ प्रकृतमन्त्रिणो जन्मप्रबन्धं स्तुमः*–कदाचिच्छ्रीमत्पत्तने भट्टारकश्रीहरिभद्रसूरिभिर्व्याख्यानावसरे कुमारदेव्यभिधाना काचिद्विधवातीव रूपवती [बाला[9]] मुहुर्मुहुर्निरीक्ष्यमाणा तत्र स्थितस्याशराजमन्त्रिणश्चित्तमाचकर्ष[10]। तद्विसर्जनानन्तरं मन्त्रिणानुयुक्ता गुरव इष्टदेवतादेशाद्–'अमुष्याः कुक्षौ सूर्याचन्द्रमसोर्भाविनमवतारं पश्यामः। तत्सामुद्रिकानि भूयो भूयो विलोकितवन्तः' इति प्रभोर्विज्ञाततत्त्वः स तामपहृत्य निजां प्रेयसीं कृतवान्। क्रमात्तस्या उदरेऽवतीर्णौ तावेव ज्योतिष्केन्द्राविव[11] वस्तुपालतेजःपालाभिधानौ सचिवावभूताम्।

१८५) अथान्यदा श्रीवीरधवलदेवेन निजव्यापारभारायाभ्यर्थ्यमानः प्राक् स्वसौधे तं सपत्नीकं भोजयित्वा श्रीअनुपमा राजपत्न्यै श्रीजयतलदेव्यै निजं कर्पूरमयताडङ्कयुग्मं कर्पूरमयो मुक्ताफलसुवर्णमयमणिश्रेणिभिरन्तरिताभिर्निष्पन्नमेकावलीहारं प्राभृतीचकार। मन्त्रिणः

---

1 P 'भिधमभिकमा०; B ०भिधमछिकमा०। 2 BP नास्ति 'श्रीलवणः'। 3 AD मातृकाः। 4 D वीरव्रतेन। 5 D 'मातृ' नास्ति। 6 D सत्वौदार्य०। 7 P '०गाम्भीर्यधैर्यादिगुणशाली' इत्येव। 8 P ०मनुबभूव। * P विहाय अन्यग्रंथद्वयस्थाने 'मन्त्रिणस्तु जन्मवार्ता चैवम्' एतादृशं वाक्यम्। 9 P प्रतावेव एष शब्दो विद्यते। 10 BP ०ततवान्। 11 B ०केन्द्रार्कविव वस्तु०।

प्राभृतमुपढौकितं निषिध्य निजमेवं व्यापारं समर्पयन्[1] 'यत्तवेदानीं वर्त्तमानं वित्तं तत्ते कुपितोऽपि प्रतीतिपूर्वं पुनरेवाददामी'ति अक्षरपत्रान्तरसम्बन्धपूर्वकं[2] श्रीतेजःपालाय व्यापारसम्बन्धिनं पश्चात्प्रसादं ददौ ।

२१३. अकरात्कुरुते कोशमवधाद्देशरक्षणम् । युक्तिवृद्धिमयुद्धाच्च स मन्त्री बुद्धिमांश्च सः ॥

१८६) निखिलनीतिशास्त्रोपनिषन्निषण्णधीः स्वस्वामिनं वर्द्धयन् भानूदये कालपूजया विधिवच्छ्रीजिनमर्चित्वा, गुरूणां चन्दनकर्पूरपूजानन्तरं द्वादशावर्त्तवन्दनादनु यथावसरप्रत्याख्यानपूर्वमपूर्वमेकैकं श्लोकं गुरोरध्येति[6] । मन्त्रावसरानन्तरं[7] सद्यस्करसवतीपाकभोजनानन्तरं, मुञ्जालनामा महोपासकस्तदङ्गलेखकोऽवसरे रहसि[8] पप्रच्छ–'स्वामिनाऽहर्मुखे शीतान्नमाहार्यते किं वा सद्यस्कमि'ति पृच्छन्तं मन्त्रिणा[9] ग्राम्योऽयं इति द्विस्त्रिरवधीर्य कदाचित्क्रोधानुबन्धात्[10] पशुपाल इत्याक्षिप्तः । स धृतधैर्यं 'उभयोः कश्चिदेकतरः स्यादि'त्यभिहिते[11] तद्वचश्चातुरीचमत्कृतचित्तेन[12] मन्त्रिणा[13] 'अनधिगतभवदुपदेशाध्वनिरहम्, तद्विज्ञ! यथास्थितं विज्ञप्यतामि'त्यादिष्टः स वाग्मी प्रोवाच[14]–'यां रसवतीमलीव रसलुतां सद्यस्कां प्रभुरभ्यवहरति तां प्राक्पुण्यरूपां जन्मान्तरिततयात्यन्तशीतलां मन्ये[15] । किं चेदं मया गुरोः सन्देशवचनमाविष्कृतम्, तत्त्वं तु त एवावधारयन्तीति तत्र पादाववधार्यताम् ।' तेनेति विज्ञप्तः श्रीतेजःपालनामा मन्त्री कुलगुरुभट्टारकश्रीविजयसेनसूरीणामभ्यर्णमागतः । गृहिधर्मविधिं[16] गुरून् पप्रच्छ । तैरुपासकदशाभिधसप्तमाङ्गाज्जिनोदिते देवपूजावश्यकयतिदानादिके गृहिधर्मे समुपदिष्टे, ततःप्रभृति स देवतार्चनविशेषजैनमुनिदानाद्यं धर्मकृत्यमारब्धवान् । वर्षपत्रितधदेवतावसरायपदेन पृथक्कृतेन षट्त्रिंशत्सहस्रप्रमाणेन द्रव्येण धवलक्कग्रामे श्रीनेमिनाथप्रासादः समजनि ।

(अत्र P आदर्शे निम्नगता विशेषाः श्लोका लिखिता लभ्यन्ते–)

[१४८] सांयात्रिकजनो येन कुर्वाणो हरणं नृणाम् । निषिद्धस्तदभूदेष धर्मोदाहरणं भुवि ॥
[१४९] स्पृष्टास्पृष्टनिषेधाय विधायावधिवेदिकाम् । पुरेऽस्मिन् वारितस्तेन तक्रविक्रयविप्लवः ॥
[१५०] यन्न्यूनं यत्र यत्तष्टं यत्तत्र तदचीकरत् । उत्पत्तिरुत्तमानां हि रिक्तपूरणहेतवे ॥
[१५१] अकल्पयदनल्पानि देवेभ्यः काननानि यः । हरनेत्राग्नितापस्य यत्र न स्मरति स्मरः ॥
[१५२] रम्भासम्भाविवैर्येस्य वर्णैर्नृपनिषेवितैः । मनोज्ञसुमनोवर्गैः स्वर्गसौन्दर्यमाददे ॥
[१५३] संगृहीतानि हारीतशुककपित्रशिखण्डिभिः । धर्मशास्त्रसधर्माणि यस्योद्यानानि रेजिरे ॥
[१५४] दर्शयन् सुमनोभावं श्रीमतामतुलामयम् । काननानां सबन्धूनां सबन्धूनामिवाकरोत् ॥
[१५५] आददानाः पयःपूरं यत्कासारेषु कासराः । विराजन्तेतरां पारावारेष्विव पयोधराः ॥
[१५६] अकारयदयं वापीस्तापी यः क्रियारतः । सुधायामपि माधुर्यं यज्जलैर्गलहस्तितम् ॥
[१५७] ताः प्रपाः कारितास्तेन यदीयं पिबतां पयः । तृप्यन्त्याक्षाणि पान्थानां न रूपं पश्यतां दृशः ॥
[१५८] भवार्णवतरी ब्रह्मपुरी येनात्र निर्ममे । यस्यां गायन्ति सामानि नरा नार्यस्तु तद्यशः ॥
[१५९] स्फुटं वेष्टयता शुभ्रैः कीर्तिकूटैः पटैरिव । दशापि प्राह्विता येन दिशः श्वेताम्बरव्रतम् ॥

1 D समर्पयन् । 2 D ॰सम्बन्धपत्रसम्बन्ध॰ । 3 A D देवगृहवि॰ । 4 D चन्दन॰ । 5 B ॰स्तुतिस्य । 6 P आत्मवेश्मन् । 7 BP विजने इति । 8 AD नास्ति । 9 AD ग्राम्येयं द्वैधा वेधाऽ॰ । 10 AD क्रोधान्मत्रिणा । 11 P दृष्ट्वा । 12 AD 'चित्त:' इत्येव । 13 AD नास्ति । 14 BP भाषमुवाच । 15 D मन्यते । 16 D 'गृहिधर्मं' इत्येव ।

[१६०] येन पौषधशालास्ताः कारितास्तारितात्मना । मध्ये श्वेताम्बरैर्यासां विशुद्धिः सुधया बहिः ॥

[१६१] यस्य पौषधशालासु यतयः संवसन्ति ते । सदा येषामदाराणामात्मभूसम्भवः कुतः ॥

[१६२] ज्ञानाख्यं यस्य तच्चक्षुर्वाचां देवी ददे मुदा । नित्यं येनैष धर्मस्य गतिं सूक्ष्मामपीक्षते ॥

१८७) अथ सं० १२७७ वर्षे सरस्वतीकण्ठाभरण-लघुभोजराज-महाकवि-महामात्य-श्रीवस्तुपालेन महायात्रा प्रारेभे । गुरूपदिष्टे लग्ने तत्कृतसङ्घाधिपत्याभिषेकेण श्रीदेवालयप्रस्थाने उपक्रम्यमाणे दक्षिणपक्षे दुर्गादेव्याः स्वरमाकर्ण्य स्वयं तद्विदा शाकुनिकेन किञ्चिच्चिन्तयति । कश्चिन्मरुवृद्धः[1] 'शकुनं भारितं विधेही'त्यभिदधानः, शकुनाच्छब्दो बलीयानिति विचार्य पुराद्बहिरावासेषु श्रीदेवालयं संस्थाप्य शकुनव्यतिकरं पृष्टो मार्गवैषम्ये शकुनानां वैपरीत्यं श्लाघ्यते । राज्यविकलतायां तीर्थमार्गाणां वैषम्यम् । तथा यत्र सा दुर्गा दृष्टिपथं गता तत्र कमपि दक्षं पुरुषं प्रस्थाप्य स प्रदेशो दर्श्यताम् । तथाकृते स पुरुष इति विज्ञपयामास-'यत्तस्मिन् वरण्डके[2] नवीक्रियमाणे सार्द्धत्रयोदशे घरे'(गृहे ?) निषण्णा देव्यभूत्[3] ।' अथ स मरुवृद्धो 'देवी भवतः सार्द्धत्रयोदशसंख्या यात्रा अभिहितवती ।' अन्त्यार्द्धयात्राहेतुं भूयः पृष्टे स प्राह-'इहातुलमङ्गलावसरे तद्वक्तुं न युक्तम् । समये सर्वं निवेदयिष्यामी'ति वाक्यानन्तरं श्रीसङ्घेन समं स मन्त्री पुरतः प्रयाणमकरोत् । सर्वसंख्यया-वाहनानामर्द्धपञ्चमसहस्राणि, एकविंशतिशतानि श्वेताम्बराणाम्, त्रिशती दिग्वाससाम्; सङ्घरक्षाधिकारे सहस्रं तुरङ्गमाणाम्, सप्तशती रक्तकरभीणाम्, सङ्घरक्षाधिकारिणश्चत्वारो महासामन्ताः । इत्थं समग्रसामग्र्या मार्गमतिक्रम्य श्रीपादलिप्तपुरे स्वयं कारिते श्रीमहावीरचैत्यालङ्कृतस्य श्रीललितसरसः परिसरे आवासान् दापयामास । तत्र तीर्थाराधनां विधिवद्विधाय मूलप्रासादे काञ्चनकलशम्, प्रौढजिनयुगलम्, श्रीमोढेरपुरावतार-श्रीमन्महावीरचैत्याराधकमूर्त्ति-देवकुलिकामूलमण्डपश्रेणेरुभयतश्चतुष्किकाद्वयपङ्क्ति-शकुनिकाविहार-सत्यपुरावतार-चैत्यपुरतो रजतमूल्यं तोरणम्, श्रीसङ्घयोग्या मठाः, जालिसप्तकस्य देवकुलिकाः, नन्दीश्वरावतारप्रासादः, इन्द्रमण्डपश्च; तन्मध्ये गजाधिरूढश्रीलवणप्रसाद-वीरधवलमूर्ती, तुरङ्गाधिरूढे निजमूर्ती, तत्र सप्त पूर्वपुरुषमूर्तयः, सप्त गुरुमूर्तयश्च, तत्सन्निधौ चतुष्किकायां ज्यायोभ्रात्रोर्मं०मालदेव-लूणिगयोराराधकमूर्ती, प्रतोली, अनुपमासरः, कपर्दियक्षमण्डपतोरणप्रभृतीनि[4] बहूनि धर्मस्थानानि[5] रचयांचक्रे । तथा नन्दीश्वरकर्मस्थाने कण्टेलीयापापाणसत्कजातीयषोडशस्तम्भेषु पावकपर्वतात् जलमार्गेणानीयमानेषु समुद्रकण्ठोपकण्ठे उत्तार्यमाणेषु, एककः स्तम्भस्तथा पङ्के निमग्नः यथा निरीक्ष्यमाणोऽपि न लभते । तत्पदेऽपरपाषाणस्तम्भेन प्रासादः प्रमाणकोटिं नीतः । वर्षान्तरे वारिधिवेलावशात्पङ्कनिमग्नः स एव स्तम्भः प्रादुरासीत् । सचिवसमादेशात्तस्मिंस्तत्र सञ्चार्यमाणे प्रासादो विदीर्ण इति निवेदितुमागताय परुषभाषकायापि पुरुषाय हैमीं जिह्वां स मन्त्री ददौ" । दक्षैः किमेतदिति पृष्टे 'अतः परं तथा कथञ्चिद्धर्मस्थानानि दृढानि कारयिष्यन्ते यथा युगान्तेऽपि तेषां नाशो भवति । अतः पारितोषिकं दानम् ।' आमूलात्तृतीयवेलायामयं प्रासादः समुद्धृतो विजयते । श्रीपालिताणके च विशालां पौषधशालां कारयामास । श्रीमदुज्जयन्ते च श्रीसङ्घेन सह प्राप्तो मन्त्री । तत्र च तदुपत्यकायां तेजलपुरे" स्वकारितं नव्यं

1 D 'कश्चित्' नास्ति। 2 D वरण्डकाके। 3 A धिरे; B घरे; P घरे; D ०देव्यभूत्। 4 D मार्गवैषम्यम्। 5 D धर्मस्थान०। 6 A 'प्रभृतिनित्यधर्मस्थानानि' इत्येव। 7 D त्रिगर्त०। 8 D 'पावक' शब्दो नास्ति। 9 'अपि पुरुषाय' नास्ति AD। 10 P भराय; A दृढं। 11 D तेजपुरे कारितं।

वप्रं, तथा तन्मध्ये श्रीमदाशराजविहारं, तथा कुमारदेवीसरश्च, निरुपमं विलोक्य धवलगृहे 'पादोऽवधार्यतामि'ति नियुक्तैरुच्यमाने 'श्रीमद्गुरूणां योग्यं पौषधवेश्मास्ति नास्ति?' इति मन्त्रिणादिष्टे तन्निष्पाद्यमानमाकर्ण्य विनयातिक्रमभीरुर्गुरुभिः सह बहिर्दापितावासे[1] तस्थौ। प्रातरुज्जयन्तमारुह्य श्रीशैवेयक्रमकमलयुगलममलमभ्यर्च्य स्वयंकारितश्रीशत्रुञ्जयावतारतीर्थे प्रभूतप्रभावनां विधाय, कल्याणत्रयचैत्ये चर्यसपर्यादिभिस्तदुचितीमाचर्य, स मन्त्री यावत्तृतीये दिनेऽवरोहति तावदुभाभ्यां दिनाभ्यां निष्पन्ने पौषधौकसि मन्त्रिणा समं गुरवस्तत्र समानीतास्तान्[2] प्रशशंसुः; पारितोषिकदानेनानुजगृहुः। श्रीमत्पत्तने प्रभासक्षेत्रे[3] चन्द्रप्रभं प्रभावनया प्रणिपत्य यथौचित्यादभ्यर्च्य च निजेऽष्टापदप्रासादेऽष्टापदकलशं समारोप्य तत्रत्यदेवलोकाय दानं ददानः, प्रभु[4]श्रीहेमाचार्यैः श्रीकुमारपालनृपतये जगद्विदितं श्रीसोमेश्वरः प्रत्यक्षीकृत इति पञ्चदशाधिकपञ्चशतदेशधार्मिकपूजाकारकमुखादाकर्ण्य तच्चरित्रचित्रितमना व्यावृत्तमानो मार्गे लिङ्गोपजीविनामसदाचारेणान्नदाने निषिद्धे तत्पराभवं विज्ञाय वायटीयश्रीजिनदत्तसूरिभिर्निजोपासकपार्श्वात्तस्मिन्क्षणे पूर्यमाणे सति दर्शनानुनयार्थं[5] तत्र समागताय मन्त्रिणे–

२१४. रत्नाकर इव क्षारवारिभिः परिपूरणात्। गम्भीरिमाणमाधत्ते शासनं लिङ्गधारिभिः॥
२१५. यान् लिङ्गिनोऽनुवन्दन्ते संविग्ना अपि साधवः। तदर्चा[6] चर्च्यते कस्माद्धार्मिकैर्भवभीरुभिः॥
२१६. प्रतिमाधारिणोऽप्येषां त्यजन्ति विषयं पुरः। लिङ्गिनां विषयस्थानामनर्चा तु विरोधिनी॥
२१७. लिङ्गोपजीविनां लोके कुर्वन्ति[7] येऽवधीरणाम्। दर्शनोच्छेदपापेन लिप्यन्ते ते दुराशयाः॥

*आवश्यकवन्दनानिर्युक्तौ–

२१८. तित्थयरगुणा पडिमासु नत्थि निस्संसयं वियाणन्तो। तित्थयरो त्ति[8] नमन्तो सो पावइ[9] निज्जरं विउलं॥
२१९. लिङ्गं जिणपन्नत्तं एव नमंसन्ति[10] निज्जरा विउला। जइवि गुणविप्पहीणं वन्दइ अज्झप्पसुद्धीए॥

इति तदुपदेशाद्विमार्जितसम्यक्त्वदर्पणो विशेषाद्दर्शनपूजापरः स्वस्थानमासदत्।

१८८) अथ ज्यायसा सोदरेण मं० लूणिगनाम्ना परलोकप्रयाणावसरेऽर्बुदे विमलवसहिकायां मम योग्या देवकुलिकैका कारयितव्ये'ति धर्मव्ययं याचित्वा तस्मिन्विपन्ने तद्गोष्ठिकेभ्यस्तद्भुवमलभमानश्चन्द्रावत्याः स्वामिनः पार्श्वात्तभ्यां भूमिं विमलवसहिकासमीपेऽभ्यर्थ्य तत्र श्रीलूणिगवसहिप्रासादं भुवनत्रयचैत्यशलाकारूपं कारयामासिवान्[11]। तत्र श्रीनेमिनाथबिम्बं संस्थाप्य प्रतिष्ठितम्। तद्गुणदोषविचारणाकोविदं श्रीजावालिपुरान्छ्रीयशोवीरमन्त्रिणं समानीय मन्त्री प्रासादस्वरूपं पप्रच्छ। तेन[12] प्रासादकारकसूत्रधारः शोभनदेवोऽभ्यधायि–'रङ्गमण्डपेषु[13] [14]शालभञ्जिकामिथुनस्य विलासपीठस्तीर्थकृत्प्रासादे सर्वथानुचितः, वास्तुनिषिद्धश्च। तथा गर्भगृहप्रवेशद्वारे सिंहाभ्यां तोरणमिदं देवस्य विशेषपूजाविनाशि। तथा पूर्वपुरुषमूर्त्तियुतगजानां पुरतः[15] [16]प्रासादः कारापकस्यायतिविनाशी[17]। [18]इत्यप्रतीकारार्हं दूषणत्रयं विज्ञस्यापि सूत्रभृतो यदुत्पद्यते स भाविकर्मणो दोषः' इति निर्णीय स [19]यथागतमयोगतः। तदुपश्लोकनश्लोका एवम्–

1 P बहिरावासेषु। 2 AD तत्। 3 P नास्ति। 4 D 'प्रभु' नास्ति। 5 P ॰नुनयाय। 6 P तदेव। 7 P कुर्वते। * एतत्पदमग्रिमं गाथाद्वयं च P आदर्शे नोपलभ्यम्। 8 B तित्थयरत्ति। 9 A पावइ। 10 B ॰नमंसु त्ति। 11 P कारयामास। 12 D तत्तेन; A ततः। 13 AD ॰मण्डपे। 14 AD विशाल॰। 15 AD शालापश्चाद्भागे। 16 B प्रासादे; AD प्रासाद॰। 17 AD ॰विनाशि; Db भाग्यविनाशः। 18 P विहाय 'इति' नास्ति। 19 AD 'मयो' नास्ति।

२२०. यशोवीर यशोमुक्ताश्रेणिरिन्दुसमी स्थिता । तद्ग्रथनाय रथ्याभाः श्रीशौरी लाञ्छनच्छलात् ॥
२२१. बिन्दवः श्रीयशोवीर शून्यमध्या निरर्थकाः । संख्यावन्तो विधीयन्ते त्वयैकेन पुरस्कृताः ॥
२२२. यशोवीर लिखत्यास्यं यावचन्द्रं विधिर्भ्रमात् । न माति भुवने तावदायतमक्षरद्वयम् ॥
[१६३] {[1]न माघः श्लाघ्यते कैश्चिन्नाभिनन्दो न मन्यते । निष्कलः कालिदासोऽपि यशोवीरस्य सन्निधौ ॥
[१६४] [1]प्रकाश्यते सता माघाद्यशोवीरेण मन्त्रिणा । मुखे दन्तद्युता भाती करे श्रीः स्वर्णमुद्रया ॥
[१६५] [1]ऊर्जितास्ते गुणालेन चाहुमानेन्द्रमन्त्रिणा । विधिरप्येव नन्दिन्यां वरेण निराश्रिता ॥
[१६६] [1]लक्ष्मीरेव न याति तत्र यत्र ते विनयो नहि । यशोवीर महाचित्रं सा च मा च म च त्वयि ॥
[१६७] [1]वस्तुपालयशोवीरौ सत्यं वाग्देवतासुतौ । एको दानसमाधोऽभूदुभयोरन्यथा कथम् ॥}

॥ इति श्रीशत्रुञ्जयादितीर्थानां यात्राप्रबन्धः ॥

१८०) अथ श्रीवस्तुपालस्य स्तम्भतीर्थे सदीयनाम्ना नौवित्तकेन समं विग्रहे सञ्जायमाने भृगुपुरान्महासाधनिकं शङ्खनामानं श्रीवस्तुपालं प्रति पक्षपातरूपमानीतवान् । स जलधितटे रणनिवासो नगरप्रवेशमार्गान् शङ्कुसङ्कीर्णितानालोक्य व्यवहारिणां चित्तानि पामराश्चरणानि च वीक्ष्य प्रहितैश्चरैर्विविधैः श्रीवस्तुपालेन समं समरवासरं निर्णीय यावच्चतुरङ्गसैन्यं सम्भृतो नाग- श्रीवस्तुपालेन पुरः कृतो गुर्जरजातीयो भूणपालनामा सुभटो 'यदि शङ्खमन्तरेणाहं प्रहरामि तदा कपिलां धेनुमेवे'ति पारवर्णिकारूपं 'कः शङ्खः?' इति तद्वचनादनु शङ्खोऽहमिति सौभाग्य- देनोदितं तं घातेन' निपात्य पुनरनयैव रीत्या द्विरपि शुभिनोऽपि पातिते सति 'कथं समुद्रसामी- प्यात् शङ्खबाहुल्यमि'त्युच्चरन् महासाधनिकशङ्खेनैव मत्सुभटानां आगमनेनाहूतः, कुन्तार्पणेन प्रहरन्, सतुरग एकेनैव प्रहारेण' व्यापादितः । तदनु श्रीवस्तुपालेन समराङ्गणवनधिना केसरि- किशोरेणेव शङ्खसैन्यं गजयूथमिव त्रासितं दिशो दिशमनेशत् । [पथायां शिरस्को मारितः सर- पद इति* ।] तदनु भूणपालमृत्युस्थाने भूणपालेश्वरप्रासादो मन्त्रिणा कारितः ।

इत्यत्र[1] आर्ति[2]शब्दपारितोषिके[3] श्रीमन्त्रिणा षोडशसहस्रद्रम्माणां[4] दातिः[5] प्रसादीकृता । कचिच्चिन्तातुरस्य मन्त्रिणो भूमिं मृगयमाणस्य समागतः सोमेश्वरदेवः समयोचितमिदमपाठीत्[6]–

२२४. एकस्त्वं भुवनोपकारक इति श्रुत्वा सतां जल्पितं लज्जानम्रशिराः स्थिरातलमिदं यद्वीक्ष्यसे वेद्मि तत् ।
वाग्देवीवदनारविन्दतिलकः श्रीवस्तुपालः स्वयं[7] पातालाद्बलिमुद्दिधीर्षुरसकृन्मार्गं भवान् मार्गति ॥

मन्त्रिणास्य काव्यस्य पारितोषिकेऽष्टौ सहस्राणि प्रदत्तानि । तथा–

२२५. त्वचं कर्णः शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः । ददौ दधीचिरस्थीनि···

इति त्रिषु पदेषु पण्डितेष्वधीयमानेषु पण्डितजयदेवः समस्यापदमिव–

वस्तुपालः पुनर्वसु ॥

इत्युच्चरन् सहस्रचतुष्टयं लेभे ।

तथा सूरीणां दर्शनमतिलाभनावसरे[8] केनापि दुर्गतद्विजातिना याचनया तन्नियुक्तेभ्यः कृपया पटीमुपलभ्य मन्त्रिणं प्रति समयोचितमित्यूचे–

२२६. कचित्तूलं कचित्सूत्रं कार्पासास्थि कचित्कचित् । देव ! त्वदरिनारीणां कुटीतुल्या पटी मम ॥

एतत्पारितोषिके मन्त्रिणा दत्तानि पञ्चदशशतानि ।

तथा बालचन्द्रनाम्ना पण्डितेन श्रीमन्त्रिणं प्रति–

२२७. गौरी रागवती त्वयि त्वयि वृषो बद्धादरस्त्वं युतो भूत्या त्वं च लसद्गुणः शुभगणः किं वा बहु ब्रूमहे ।
श्रीमन्त्रीश्वर ! नूनमीश्वरकलायुक्तस्य ते युज्यते बालेन्दुश्चिरमुच्चकै रचयितुं त्वत्तोऽपरः कः प्रभुः ॥

इत्युक्ते तस्याचार्यपदस्थापनायां द्रम्मसहस्रचतुष्टयं[10] व्ययीकृतम् ।

१९१) कदाचिन्म्लेच्छपतेः[11]सुरताणस्य गुरुं मालिमं[12]मक्कतीर्थयात्राकृते इह समागतमवगम्य तन्निग्रहीतुभ्यां श्रीलवणप्रसाद-वीरधवलाभ्यां श्रीतेजःपालमन्त्री मन्त्रं पृष्ट एवमाख्यातवान्[13]–

२२८. धर्मच्छद्मप्रयोगेण या सिद्धिर्वसुधाभुजाम् । समानदेहपण्येन तदिदं द्रविणार्जनम् ॥

इति नीतिशास्त्रोपदेशेन तयोर्वृकयोरिव छागमुन्मोच्य पाथेयादिना सत्कृत्य च तं तीर्थं महितवान् । स च कियद्भिर्दिनैः[14] पश्चाद्व्यावृत्तः श्रीमन्त्रिणा तदुचितनेपथ्यादिभिः सत्कृतः स स्वस्थानं प्राप्तस्तीर्थगुणानां विस्मरन् श्रीसुरताणपुरतः श्रीवस्तुपालमेव वर्णयामास । स सुरताणस्तदनन्तरम्–'अस्माकं देशे भवानेवाध्यक्षोऽहं तु भवतः सेलभृत्, तच्चयाहं यत्कृत्यादेशेनैव सर्वदानुग्राह्य' इति प्रतिवर्षं तत्प्रहितयमलकपत्रेणोपरुध्यमानः श्रीमन्त्रीशः श्रीशत्रुञ्जयभूमिगृहयोग्यं श्रीयुगादिजिनबिम्बं धन्यंमन्यमानस्य सुरताणस्यानुज्ञया तद्देशवर्त्तिन्या मैम्माणीनाड्याः[15] खन्याः प्रपन्नशतैरानीतवान् । तस्मिन्नथोरोहति श्रीमूलनायकस्यामपोतपर्वते विद्युत्पातः समजनि । ततः प्रभृति श्रीमन्त्रीश्वरस्याजीवितान्तं श्रीदेवपादैर्दर्शनं न ददे ।

(१९२) कस्मिंश्चित्पर्वणि श्रीमदनुपमया निरुपमे मुनीनामन्नदाने यदृच्छया दीयमाने कार्पोत्स्थपातदागतः श्रीवीरधवलदेवः सिताम्बरदर्शनेन[17] द्वारमदेवां पाणिन्यममालोक्य विस्मयस्मेरमा-

1 P आर्ति पदे पदं लभ्यते । 2 A आर्ति०; D नास्ति । 3 पुस्तकद्वयमपि D नास्ति । 4 BP षोडशसहस्राः । 5 D दत्तिः; BP नास्ति । 6 ABD अपाठीत्-यथा । 7 P पाता० । 8 P युवं । 9 P प्रस्तावे । 10 D 'चतुष्टयं नास्ति । 11 D सुरत्राण० । 12 P मंत्र । 13 P इत्यूचे । 14 Dod दिनैः 15 A मुम्माण; B मुम्मायी मुम्माणी । 16 ABD 'मम' स्थाने 'अपि' । 17 D ०दर्शनेन ।

नासौ मन्त्रिणमभिहितवान्–'हे मन्त्रिन्! इत्थं सदैवाभिमतदैवतवत् किममी न सत्क्रियन्ते। तव चेदशक्तिस्तदर्द्धविभागो ममास्तु[1]। मामकमेव सर्वं[2] वा दीयतां सदैवेत्यतः कारणान्नोच्यते। तथा कृते भवतो[3] वृथायास एव स्यादि'ति तन्मुखचन्द्रविनिर्गतैर्गोभिर्निर्वाणोपतापः 'स्वामिनः कियानर्द्धविभागः, सर्वमेव भवदीयमेवे'त्युक्त्वा[4] पटीं न्युञ्छनीचक्रे[5]।

१९३) अन्यदा यतिदानावसरे मिथो मुनिजनसम्मर्द्दात्[6] श्रीमदनुपमायाः प्रणमत्याः प्राज्याज्यपूर्णं घृतपात्रं पृष्ठे पतितमालोक्य कुपितं तेजःपालमन्त्रिणमिति सान्त्वितवती 'यत्तव स्वामिनः प्रासादान्मुनिजनपुण्यपात्रपतितैराज्यैरङ्गेऽभ्यङ्गो भवती'ति तत्पूर्णदानविधिचमत्कृतो मन्त्री पश्चात्प्रसादपूर्वम्–

२२९. दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्। त्यागसहितं च वित्तं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ॥

इति युक्तोक्तिपूर्वं च तां मन्त्री प्रशशंस। इत्यनेकधा दानावदातनिकपरेखां प्राप्तां–

२३०. लक्ष्मीश्चला शिवा चण्डी शची सापत्न्यदूषिता। गङ्गा न्यग्गामिनी वाणी वाक्साराऽनुपमा ततः ॥

इत्यादिभिः स्तुतिभिर्जैनाचार्यैः स्तूयते स्म।

१९४) अथान्यदा पञ्चग्रामसङ्ग्रामाधिरूढयोः श्रीवीरधवल–लवणप्रसादयोः श्रीवीरधवलपत्नी राज्ञी जयतलदेवी सन्धिविधानहेतवे जनकं प्रतीहारं[7] श्रीशोभनदेवमुपागता। 'किं वैधव्याद्भीरुः सन्धिमन्धं कारयसि?' इति तेनाभिहिता। वीरचूडामणेः पत्युः श्रीवीरधवलस्योन्नतिमारोपयन्ती सा 'पितृकुलविनाशशङ्कया भूयो भूयोऽहमेवं व्याहरामि। तुरगपृष्ठाधिरूढे तस्मिन्वीरे[8] स कोऽस्ति सुभटो यस्तत्सन्मुखे स्थास्यती'ति व्याहृत्य सा सामर्षेव प्रतस्थे। अथ तस्मिन्समरसंरम्भे प्रहारव्यथाव्याकुले श्रीवीरधवले भुवस्तलमलंकुर्वति* किञ्चिदन्तर्भग्ने समग्रसुभटवर्गे 'एक एवायं पत्तिः पतित' इति सकलं निजबलमुत्साहयन् श्रीलवणप्रसादः समस्तानपि रिपून् लीलयैव समूलकायं कषितवान्। इत्थमेकाविंशतिकृत्वः सत्त्वगुणरोचिष्णु रणरसिकतया क्षेत्रे पितुरग्रे पतितः।

२३१. यः पञ्चग्रामसङ्ग्रामभूमौ भीमपराक्रमः। घातैः पपात सञ्जातैरश्वतो न तु गर्वतः ॥

१९५) श्रीवीरधवलस्यायुःपर्यन्ते प्रतितीर्थं प्रस्थितस्य[9] दत्तमेकधा सहस्रगुणमुपलभ्यत इति रूढेः श्रीतेजःपालेन जन्मसुकृतं ददे। तदनु तस्मिन् स्वामिनि विपन्ने तत्सौभाग्यातिशयात्सेवकानां विंशत्यधिकशतेन सहगमनं चक्रे। तदनु श्रीतेजःपालेन प्रेतवने यामिकान्मुक्त्वा लोकस्य स निर्बन्धो निषिद्धः।

२३२. आयान्ति यान्ति च परे ऋतवः क्रमेणः सञ्जातमेतदृतुयुग्ममगत्वरं तु।
वीरेण वीरधवलेन विना जनानां वर्षा विलोचनयुगे हृदये निदाघः ॥

१९६) अथ श्रीमन्त्रिणा वीरधवलस्य[10] सुतो[11] वीसलदेवो राज्येऽभिषिक्तः। श्रीअनुपमदेव्या विपत्तौ तेजःपालस्य[12] आरूढे ग्रन्थावनिवर्त्तमाने तत्रागतैर्भट्टा० श्रीविजयसेनसूरिभिर्यत्नात्पुरुषैरुपशमितायां विपदि किञ्चिचेतनया सापत्रपः श्रीतेजःपालः सूरिणोचे[13]–'वयमस्मिन्नवसरे भवतः

1 P 'मम' इत्येव। 2 P नास्ति 'सर्वं वा'। 3 P भवतो वृथा प्रयास। 4 P इत्युदित्वे। 5 P चक्रर। 6 D तत्समर्दे। 7 PD प्रति; B प्रती०। 8 AD वीरधवले। * ABD आदर्शे एतत्स्थाने एव 'यः पञ्चग्राम०' इति श्लोको लिखितो दृश्यते। 9 D प्रस्थितेन। 10 11 एतत्पदद्वय BP नास्ति। 12 D तेज पाला स्वस्तोकमन्यायमि। 13 D विहाय 'सूरिणा' नास्ति।

कैतवमालोकयितुमुपेताः ।' श्रीवस्तुपालेन किमेतदिति पृष्टे गुरवः प्राहुः–'यदस्माभिः त्रिंशोत्तेजःपालस्योपयामाय धरणिगपार्श्वादनुपमा कन्या याचिता तदा स्थिरपत्रदानादनु[2] तस्याः कन्याया एकान्ते विरूपतां निशम्य तत्सम्बन्धभङ्गाय चन्द्रप्रभभिडंप्रतिष्ठितक्षेत्राधिपतेरष्टौ द्रम्माणां भोगमप्युपयाचितीचक्रे । इदानीं तद्वियोगे ग्रन्थैरामनस्यमित्युभयोर्वृत्तान्तयोः कस्तथ्यः ?' इति तन्मूलसङ्केताच्छ्रीतेजःपालः स्वहृदयं दृढीचक्रे ।

१९७) अथान्यदावसरे मन्त्री वस्तुपालः पूर्णायुः श्रीशत्रुञ्जयं यियासुरिति मत्वा पुरोधाः सोमेश्वरदेवस्तत्रागतोऽनर्घ्यासनेषु[6] मुच्यमानेष्वऽनुपविशन् हेतुं पृष्ट इत्याह–

२३३. अन्नदानैः पयःपानैर्धर्मस्थानैर्धरातलम्[7] । यशसा वस्तुपालस्य रुद्धमाकाशमण्डलम् ॥

इति स्थानाभावान्नोपविश्यते इति तदुक्तेरुचितपारितोषिकदानपूर्वं तमापृच्छय मन्त्री[8] पथि प्रस्थितः । अंकेवालीयाग्रामे देहयकुण्यां दर्भसंस्तरमारूढो गुरुभिराराधनां कार्यमाण आहारपरिहारपूर्वं पर्यन्ताराधनया प्रध्वंसितकलिमलो युगादिदेवमेव जपन्–

२३४. सुकृतं न कृतं किञ्चित्सतां संसरणोचितम् । मनोरथैकसाराणामेवमेव गतं वयः ॥

इति वाक्यप्रान्ते नमोऽर्हद्भ्यो नमोऽर्हद्भ्य इत्यक्षरैः समं परिहृतसप्तधातुर्वृद्धशरीरः[11] स्वकृतकृतोपमसुकृतफलमुपभोक्तुं स्वर्लोकमलंचकार । तत्संस्कारस्थानेऽनुजश्रीतेजःपाल-सुतजैत्रसिंहाभ्यां श्रीयुगादिदेवदीक्षावस्थामूर्त्तिनालंकृतः स्वर्गारोहणप्रासादोऽकारि ।

२३५. अद्य मे फलवती पितुराशा मातुराशिषि[12] शिखाऽङ्कुरिताऽद्य ।
यद्युगादिजिनयात्रिकलोकं प्रीणयाम्यहमशेषमखिन्नः ॥

२३६. नृपव्यापारपापेभ्यः सुकृतं स्वीकृतं न यैः । तान् धूलिधावकेभ्योऽपि मन्येऽधमतराञ्नरान् ॥

इत्यादीनि श्रीवस्तुपालमहाकवेः काव्यानि स्वयं कृतान्यमूनि ।

२३७. पूर्णः स्वामिगुणैः स वीरधवलो निःसीम[17] एव प्रभुर्विद्वद्भिः कृतभोजराजविरुदः श्रीवस्तुपालः कविः ।
तेजःपाल इति प्रधाननिवहेष्वेकश्च मन्त्रीश्वरस्तज्जायानुपमा गुणैरनुपमा प्रत्यक्षलक्ष्मीरभूत् ॥

॥ इति श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिते[19] प्रबन्धचिन्तामणौ श्रीकुमारपाल-भूपालप्रमुखमन्त्रीश्वरवस्तुपाल-तेजःपालपर्यन्तमहापुरुषयशोवर्णनो* नाम चतुर्थः प्रकाशः ॥ ग्रंथाग्रं ८२४† ॥

---

1 AD °मालोकितुं° । 2 D स्थिरता कृता तदनु । 3 D 'भिड' स्थाने 'जिन' । 4 P 'भोग' नास्ति । 5 A अधिष्ठितैः, D तपस्वी । 6 P अनर्घ्येषूत्तमासनेषु मण्डयमानेषु । 7 A च भूतलं । 8 AD °पालेन । 9 P नास्ति । 10 P संे° । 11 P शिरश्च । 12 P धातुमय° । 13 D रातिं । 14 P 'स्वहृदयफल°' इत्येव । 15 P °पदे । 16 AD स्वीकृत° । 17 P मूलत्राण; B अधमतरान् । 18 D निर्माल । 19 P °चार्यविकृते । * D श्रीकुमारपालमंत्रीश्वरवस्तु-तेजःपालमहापुरुषवर्णनो । † A B ८०४ ।

[११. प्रकीर्णकप्रबन्धः ।]

अथ पूर्वोक्तेभ्यो महापुरुषचरितेभ्यो यान्यवशिष्टानि तानि, तदितराणि चेह प्रकीर्णकप्रकाशे प्रारभ्यन्ते । तद्यथा–

१९८) समीपस्फुरच्छिप्राप्रवन्त्यामवन्त्यां पुरि पुरा श्रीविक्रमार्कनृपः स्वसत्रागारे वैदेशिकं लोकं भोजनानन्तरं निद्रापरं सम्पन्नदीर्घनिद्रमाकर्ण्य विस्मयस्मेरमानसस्तद्वृत्तान्तं जिज्ञासुस्तान् सर्वानपि वसनपिहितान्विधाप्य तद्वार्तां चापन्हुतां निजाज्ञया विधाय पुनरुपागतानभ्यागतांस्तथैव भोजयित्वा प्रदोषे चोष्णोदकं तैलं च तेषां चरणपरिचारणानिमित्तमुपनीय तेषु तेषु प्रसुप्तेषु महानिशायां कृपाणपाणिर्नृपतिर्निभृतीभूय स्वयं यावत्तत्र तस्थौ तावदकस्मात्तत्र कोणैकदेशे प्रथमं धूमोद्गमं तदनु शिखारेखामथ दीप्रफणारत्नप्रभालंकृतं सहस्रफणं नागं निर्गतमवलोक्य तद्विस्मचमत्कृतो राजा यावत्साकूतं पश्यति तावत्स फणीन्द्रः किं पात्रमिति तन्निसुप्तान् पान्थान् प्रत्येकं पप्रच्छ । अथ ते धर्मपात्रं गुणपात्रं तपःपात्रं रूपपात्रं कामपात्रं कीर्त्तिपात्रमित्यादीनि वदन्तोऽज्ञानतया यदृच्छया तस्य शापान्मृत्युमाप्नुवन्तीति विलोक्य, अथ श्रीविक्रम एव तत्पुरोभूय योजिताञ्जलिः–

२३८. भोगीन्द्र ! बहुधा पात्रं गुणयोगाद्भवेद्भुवि । मनःपात्रं तु परमं शुद्धश्रद्धापवित्रितम् ॥

इति स निजाशयमेव भाषमाणं श्रीविक्रमं परितोषाद् 'वरं वृणु त्वम्' इति प्राह । अथ श्रीविक्रमोऽमून् पथिकानुज्जीवयेति तेन वरे याचिते स विशेषं विशेषात्परितोषयामास ।

॥ इति श्रीविक्रमस्य पात्रपरीक्षाप्रबन्धः ॥

१९९) अथ कदाचित्पाटलीपुत्रपत्तनेऽकस्मादमन्दानन्दे नन्दे राज्ञि पञ्चत्वमागते कश्चिद्विमलस्कालं तत्रागतः परपुरप्रवेशविद्यया नृपदेहमधितस्थौ । तत्सङ्केततो द्वितीयो द्विजो नृपद्वारमुपेत्य वेदोच्चारमुदाहरन्मृत्युञ्जीवितो नृपः कोशाध्यक्षैस्तस्मै स्वर्णलक्षमदापयत् । अथ तद्वृत्तान्तं विज्ञाय महामात्यः 'नन्दः पुरा कदर्योऽभूत् साम्प्रतं तु महौदार्यं विचारणीयमि'ति यत्नेन विप्रं विमृश्य परकायप्रवेशकारिणं वैदेशिकं सर्वत्र शोधयन् क्वापि मृतकं केनापि परिरक्ष्यमाणमाकर्ण्य चिताप्रवेशाद्भस्मीकृत्य पूर्वमेव नन्दं निरुपममतिवैभवात्तिजप्राज्ये साम्राज्ये निर्वाहयामास ।

॥ इति नन्दप्रबन्धः ॥

२००) अथ श्रीदामहास्थाने देवादित्यविप्रपुत्री बालबालविधवा अतिरूपपात्रं सुभगा निभाया "प्रातः सूर्यं प्रत्यर्घाञ्जलिं क्षिपन्ती" अज्ञाततद्योगाद्गर्भाधानमभूत् । अथ" कथंचित्तद्गर्भमत्र्गां पितृभ्यामवगुप्य मन्त्राक्षमन्त्राक्षरसुप्रया "असमञ्जसमिति तां प्रति किंचिद् व्याहृत्य सा मधुरं-

1 AD [illegible] । 2 P [illegible] । 3 D [illegible] । 4 D [illegible] । 5 B [illegible] । 6 D [illegible] । 7 P [illegible] । 8 BP [illegible] । 9 D [illegible] । 10 AD [illegible] । 11 D [illegible] । 12 P [illegible] । 13 P [illegible] । 14 P [illegible] । 15 AB [illegible] । 16 A [illegible], D [illegible] । 17 AD [illegible] । 18 P [illegible], D [illegible] । 19 D [illegible] । 20 P [illegible] । 21 BP [illegible] । 22 B [illegible] । 23 D [illegible] । 24 AD [illegible] ।

वलभ्या नगर्या अभ्यासे मुमुचे । तया तत्र प्रसूतः सूनुः क्रमेण वर्द्धमानः सवयोभिः शिशुभिः निःपितृक इति निर्भर्त्स्यमानो मातुः समीपे पितरं पृच्छन् तया न जाने इत्यभिहितः । तज्जन्मवैराग्यान्मुमूर्षो:[1] प्रत्यक्षीभूय सविता सान्त्वनापूर्वं करे कर्करं[2] समर्प्य, भवन्मातुः सम्पर्ककारिणमर्कं स्वं ज्ञापयन् 'भवतः पराभवकारिणं प्रत्ययं क्षिप्तः शिलारूपो भविष्यती'त्यादिश्य निरपराधस्य कस्यापि[3] क्षिप्तो यदि[4] तवैवाऽनर्थनिबन्धनं ज्ञापयंस्तिरोधत्त[5] । अत्थेत्थमभिभवकारिणः कांश्चिद् व्यापादयन् शिलादित्य इति सान्वयनाम्ना प्रतीतः । तन्नगरराज्ञा तत्परीक्षायै तथाकृते तमिलापालं शिलया तया कालधर्ममवाप्य स्वयमेव भूपतिरभूत्[6] । सदा[7] सवितृप्रसादी कृते हयेऽधिरूढो नभश्चर इव स्वैरविहारी पराक्रमाक्रान्तदिग्वलयश्चिरं राज्यं कुर्वन् जैनमुनिसंसर्गात्प्रादुर्भूतप्रभूतसम्यक्त्वरत्नः श्रीशत्रुञ्जयस्य महातीर्थस्यामानमहिमानमवगम्य जीर्णोद्धारं चकार ।

२०१) कदाचिच्छिलादित्यं सभापतीकृत्य चतुरङ्गसभायां 'पराजितेन देशत्यागिना[8] भाव्यमि'ति पणबन्धपूर्वं सिताम्बर-सौगतयोर्वादे सञ्जायमाने पराजितान् सिताम्बरान् स्वविषयात्सर्वान् निर्वास्य श्रीशिलादित्यजामेयममेयगुणं मल्लनामानं क्षुल्लकं तत्र तस्थिवांसं[11] समुपेक्ष्य स्वयं जितकाशिनः श्रीविमलगिरौ श्रीमूलनायकं श्रीयुगादिदेवं बुद्धरूपेण पूजयन्तो बौद्धा यावद्विजयिनस्तिष्ठन्ति; तावत्स मल्लः क्षत्रकुलोद्भवत्वात्तस्य वैरस्याविस्मरन् कृतप्रचिकीर्जैनदर्शनाभावाक्षेपामेव सन्निधावधीयन् रात्रिन्दिवं तल्लीनचित्तः कदाचिद्ग्रीष्मग्रीष्मवासरेषु निशीथकाले निद्रामुद्रितलोचने समस्तनागरिकलोके दिवाभ्यस्तं शास्त्रं महताभियोगेनानुस्मरन्, तत्काले गगने सञ्चरन्त्या श्रीभारत्या 'के मिष्टाः ?' इति शब्दं पृष्टः । स परितो वक्तारमनवलोक्य 'वल्लाः' इति तां प्रति प्रतिवचनं प्रतिपाद्य, पुनः षण्मासान्ते तस्मिन्नेवावसरे[12] प्रत्यावृत्तया वाग्देवतया[13] 'केन सह ?' इति भूयोऽभिहितः । तदा त्वनुस्मृतपूर्ववाक् 'गुडघृतेन' इति प्रत्युत्तरं ददानः तदवधानविधानैश्चमत्कृतया[14] 'अभिमतं वरं वृणीष्व' इत्यादिष्टः 'सौगतपराजयाय कमपि प्रमाणग्रन्थं प्रसादीकुरु' इत्यर्थमभ्यर्थयन्, नयचक्रग्रन्थार्पणेनानुजगृहे । अथ भारतीप्रसादादेवागततत्त्वः[15] श्रीशिलादित्यमनुज्ञाप्य सौगतमठेषु तृणोदकप्रक्षेपपूर्वं नृपतिसभायां पूर्वोदितपणबन्धपूर्वकं कण्ठपीठावतीर्णश्रीवाग्देवताबलेन श्रीमल्लस्तांस्तरसैव निरुत्तरीचकार । अथ राजाज्ञया सौगतेषु देशान्तरं[16] गतेषु जैनाचार्येष्वाहूतेषु स मल्लो बौद्धेषु जितेषु 'वादी'; तदनु भूपाभ्यर्थितैर्गुरुभिः पारितोषिके तस्मै सूरिपदं ददे[17] श्रीमल्लवादिसूरिनामा । गणभृत्प्रभावकतया नवाङ्गवृत्तिकारकश्रीअभयदेवसूरि[18]प्रकटीकृतस्य श्रीस्तम्भनकतीर्थस्य विशेषोन्नत्यै श्रीसङ्घेन चिन्तायकत्वे नियोजितः ।

॥ इति मल्लवादिप्रबन्धः ॥

२०२) अथ मरुमण्डले पल्लीग्रामे काकू-पाताकौ भ्रातरौ निवसतः । तयोः कनीयान्धनवान् ज्यायांस्तु तद्गृहभृत्यवृत्त्या वर्त्तते[19] । कस्मिंश्चिन्निशीथसमये दिवसकर्मप्रवृत्तिश्रान्तः प्रावृट्काले काकूयाकः[20] प्रसुप्तः कनीयसाऽभिदधे--'भ्रातः स्वकीयाः केदाराः पयःपूरैः स्फुटितसेतवस्त्वं तु निश्चिन्तता'

1 BP °वैराग्यान्मूर्षो मुमूर्षुः । 2 D कर्करान् । 3 P तु, B नास्ति । 4 BP नास्ति । 5 तिरोदधे । 6 P बभूव । 7 D तथा स । 8 P दिग्वक्त्र: । 9 AD 'प्रभूत' नास्ति । 10 PDc देशत्यागितैव । 11 AD स्थितं । 12 P एव च प्रहरे । 13 AD देव्या । 14 D 'विधान' नास्ति । 15 AD देवी° । 16 AD देशान्तरेषु । 17 A चक्रे । 18 AD सूरिभिः । 19 P जीवति । 20 D काकूः ।

इत्युपालब्धः। स तदात्वत्यक्तस्रस्तरः स्वं निन्दन् कुद्दालं स्कन्धे निवेश्य यावत्तत्र याति तावत्कर्मकरान् स्फुटितसेतुबन्धरचनापरान् समालोक्य 'के यूयम्?' इति पृष्टाः 'भवद्भ्रातुः कामुकाः' इति तैरभिहिते 'क्वापि मदीयाः कामुकाः सन्ति?' इति पृष्टे 'वलभ्यां सन्ती'ति ते प्राहुः। अथ सोऽप्यवसरे[1] सर्वस्वं पिठरे आरोप्य तं मूर्ध्नि दधानः श्रीवलभीमवाप्य गोपुरसमीपवर्त्तिनामाभीराणां सन्निधौ[2] निवसन् अत्यन्तकृशतया तै रङ्क इति दत्ताभिधानस्तार्णमुटजं विधाय तदवष्टम्भेन यावत्तस्थौ तावत्कश्चित्कार्पटिकः कल्पपुस्तकप्रमाणेन रैवतकशैलादलाबुना सिद्धरसमादाय मार्गमतिक्रामन् काकूयंतुम्बडीति सिद्धरसादशरीरिणीं वाणीमाकर्ण्य विस्मयस्मेरमना जातभीर्वलभीपरिसरे तस्य सच्छद्मनो वणिजः सद्मनि रङ्क इति तन्नाम निःशङ्कतया तत् सरसमलाबु तत्रोपनिधीचक्रे। स स्वयं श्रीसोमेश्वरयात्रायां गतः। कस्मिन्नपि पर्वणि पाकविशेषाय चुल्लीनियोजितायां तापिकायामलाबुरन्ध्राद्गलितरसबिन्दुना हिरण्मयीं तां निभाल्य स वणिग् तं सिद्धरसं चेतसा निर्णीय तदलाबुसहितं गृहसर्वस्वमन्यत्र नियोज्य स्वं गृहं प्रदीपनेन भस्मीकृत्य परस्मिन् पुरगोपुरे[8] सौधं निर्माप्य तत्र निवसन्, कदाचित्प्राज्याज्यविक्रयकारिण्याः स स्वयं घृतं तोलयंस्तदक्षीणं[9] निरीक्ष्य घृतपात्राधः कृष्णचित्रकंकुण्डलिकां विमृश्य[10] केनापि कैतवेन तद्रूपत्वयादपहृत्य चित्रकसिद्धिं स्वीचकार। कदाचित्तस्यागण्यपुण्यवैभववशात्सुवर्णपुरुषसिद्धिरजायत। इत्थं त्रिविधसिद्ध्या कोटिसंख्यानि[11] धनानि संगृह्यापि कदर्यवर्यतया क्वापि सत्पात्रे तीर्थे वानुकम्पया वा तस्याः श्रियो न्यासो दूरे तिष्ठतु, प्रत्युत सकललोकसंजिहीर्षया तां लक्ष्मीं सकलस्यापि विश्वस्य कालरात्रिरूपामदर्शयत्।

२०३) अथ स्वसुतायाः रत्नखचितकाञ्चनकङ्कतिकायां राज्ञा स्वसुतायाः कृते प्रसभमपहृतायां तद्विरोधानुरोधात्स्वयं तत्र[12] म्लेच्छमण्डले गत्वा वलभीभङ्गाय तद्याचिताः काञ्चनकोटीस्तस्य नृपकोटीरस्य[14] समर्प्य प्रयाणमचीकरत्। तदनुपकृतस्तु एकः[15] छत्रधरो निशाशेषे सुसजाग्रद्वस्येऽवनीपतौ[16] पूर्वसङ्केतितेन केनापि पुंसा सममित्यालापमकरोत्–'अस्मत्स्वामिनां मध्ये[17] मूपकोऽपि[18] नहि। यदयमश्वपतिर्महीमहेन्द्रः केनाप्यऽज्ञातकुलशीलेनासाधुना साधुना वापि वणिजा नामकर्मभ्यां रङ्केण प्रेरितः सूर्यपुत्रं[19] शिलादित्यं प्रति पश्चचाले'ति पथ्यां तथ्यां तद्वाचमाकर्ण्य किञ्चिच्चेतसि विचिन्तयन् तस्मिन्नहनि नृपः प्रयाणकविलम्बमकरोत्। अथ रङ्कः साशङ्कस्तद्वृत्तान्तं निपुणवृत्त्यावगम्य काञ्चनदानेन तस्य काञ्चनतृसिमासूत्र्य पुनः परस्मिन्प्रत्यूषे विचार्याविचार्य वा कृतप्रयाणोऽयं महानरेन्द्रश्चलितः। 'सिंहस्यैकपदं पथे'ति न्यायाबलित एव राजते। यतः[21]–

२३९. मृगेन्द्रं वा मृगारिं वा हरिं[22] व्याहरतां जनः। तस्य चोभयथा[23] व्रीडा[24] लीलादलितदन्तिनः॥

इत्यस्य स्वामिनो निःसीमपराक्रमस्य सन्मुखे कः स्थास्यतीति तद्गिरा प्रोत्साहयन् म्लेच्छपतिर्भेरीनिनादप्रधिरितरोदःकन्दरं प्रयाणमकरोत्। इतश्च तस्मिन्नवसरे[25] वलभ्यां श्रीचन्द्र-

1 P 'ऽप्यवसरे' नास्ति। 2 D समीपेऽवसत्। 3 P ०। 4 P 'पुस्तक' नास्ति। 5 P ०। 6 D 'सिद्धरसाद्' नास्ति। 7 D प्रदीपकेन। 8 AD गोपुरे। 9 AD ०। 10 P विचार्य। 11 D संख्याभिधानानि। 12 D 'काञ्चन' नास्ति। 13 AD नास्ति। 14 'तस्य नृपकोटीरस्य' स्थाने D '०'। 15 AB एकच्छत्रधरो। 16 P पृथिवीपतौ। 17 P मध्ये। 18 AD मूषकः कोऽपि। 19 P सूर्यालयं। 20 P ०। 21 P नास्ति। 22 P हरिं। 23 AD तूभयथापि। 24 P व्रीडा–। 25 D वासरे।

प्रतिबिम्बमम्बाक्षेत्रपालाभ्यां सहितमधिष्ठातृबलाद्गगनमार्गेण शिवपत्तनभुवि भूषणीबभूव । रथाधिरूढा प्रतिमा श्रीवर्द्धमानप्रतिमा चादृष्टवृत्त्याधिष्ठातृबलेन सञ्चरन्ती पथि आश्विनीपूर्णिमायां श्रीमालपुरमलंचकार । अन्या अपि सातिशया देवमूर्त्तयो यथोचितं भूभागमलंचक्रुः । तद्देवतया च श्रीवर्द्धमानसूरीणां चोत्पातज्ञापनावसरे–

२४०. का त्वं सुन्दरि जल्प देविसदृशे ! किं कारणं रोदिषि ?,
भङ्गं श्रीवलभीपुरस्य भगवन् ! पश्याम्ययं प्रत्ययः ।
भिक्षायां रुधिरं भविष्यति पयो लब्धं भवत्साधुभिः
स्थातव्यं मुनिभिस्तदेव रुधिरं यस्मिन्पयो जायते ॥

एवमुत्पातेषु सञ्जायमानेषु पुरीपरिसरं प्राप्तेषु म्लेच्छसैन्येषु देशभङ्गसमासादितपङ्केन रङ्केन पञ्चशब्दवादकान् कनकवितरणैर्बहुधा विभेद्य तस्य हयस्यारोहणकाल एव तैः क्रियमाणे पञ्चशब्दसारावेिणे तार्क्ष्यवदुड्डीय तस्मिंस्तार्क्ष्ये दिवमुत्पतति, किंकर्त्तव्यतामूढः स शिलादित्यस्तैर्निजघ्ने । तदनु तैर्लीलयैव वलभीभङ्गः सूत्रितः ।

२४१. पणसयरीवाससयं तिन्नि सयाइं अइक्कमेऊण । विक्कमकालाउ तओ वलहीभङ्गो समुप्पन्नो ॥

॥ इति श्रीशिलादित्यराज्ञ उत्पत्तिस्तथा रङ्कोत्पत्तिस्तत्कृतो वलभीभङ्गश्चेति प्रबन्धत्रयम्* ॥

(१०४) अथ श्रीरत्नमालनगरे श्रीरत्नशेखरो नाम राजा । स कदाचिद्दिग्यात्रामत्याप्रवृत्तः पुरप्रवेशमहोत्सवे विपणिश्रेणिं शृङ्गारितां मृगयमाणः कस्मिन्नपि हट्टे काष्ठपात्रीयुतं कुद्दालमालोक्य सौधप्रवेशानन्तरं प्राभृतपाणौ महाजने समायाते 'सुखिनो यूयम् ?' इति नृपालापानन्तरं तैः 'न सुखिनो वयमि'ति विज्ञप्ते विभ्रमभ्रान्तचित्तस्तान्" विसृज्य कस्मिन्नपि निर्व्यञ्जनावसरे पुरप्रधानानाहूय 'किं न सुखिनो यूयम् ?' इति पृष्टाः" । अपि च काष्ठपात्रीयुतकुद्दालस्योर्ध्वीकरणकारणमनुयुक्ता इति विज्ञपयामासुः–'यत्र स्वामिना काष्ठपात्र्यादिकमवधारितं," स वित्तेश्वरः स्ववित्तसंख्यामजानन् काष्ठपात्रिकयैव" स्ववित्तसङ्कलनां ज्ञापयितुं सङ्केतं चक्रे। तथा च न सुखिनो वयमिति स्वामिनः सन्तानानायात् । कोटीध्वजकुलाकुलं नगरमिदं स्वामिना चिरकाललालितमन्वयाभावदोषेण परां कोटीं नीयते ?' इति पुरातनस्यान्तःपुरस्य वन्ध्यात्वं बुद्ध्वा निधाय नृपवंशवृद्धये नूतनमन्तःपुरं चिकीर्षवः स्वामिनोऽनुमत्या पुष्यार्कदिने" केनापि प्रधानशाकुनिकेन समं गन्तुमागारं प्राप्ताः । कामपि दुर्गतनितम्बिनीमासन्नप्रसवां काष्ठभारवाहनैकवृत्तिं शिरोधिरूढवुम्भामानेन शाकुनविद् तामक्षतादिभिरभ्यर्चयन्, तैः किमेतदिति पृष्टः प्राह–'यः कश्चिदस्या गर्भे पुत्रः स एवात्र नृपो भावी, चेद् बृहस्पतिमतं प्रमाणमि'त्यसम्भाव्यं वृत्तान्तममुममन्यमानाः सनोभवात्" नृपाय व्यापृत्य यथावस्थितं तत्स्वरूपं निवेदितवन्तः । अथ खेदमेदुरमना नृप ...ममां गर्भां पूर्णतां प्रारभ्यमाणामिष्टं दैवतं मारेत्यभिहिते सा मरणभयव्याकुला प्रदोपसमये ...मनुप्राप्य वाद्यभङ्गं कुर्वते तापसा ... गर्ता-

पुरीकृत्य पुनरपि राज्ञे विज्ञपयांचक्रुः। अथ काचिन्मृगी सन्ध्याद्वयेऽपि पयःपानं कारयन्ती तमनुदिनं वृद्धिमन्तं कारयामास। तस्मिन्नवसरे देव्या महालक्ष्म्याः पुरतष्टङ्कशालायां हरिण्याश्चतुर्णां पादानामधः शिशुरूपं नाणकं नूतनं सञ्जायमानमाकर्ण्य कश्चिन्नवीनो नृप उत्पन्न इति प्रवृत्तया वार्त्तया श्रीरत्नशेखरः सैन्यानि प्रतिदिशं तं शिशुं विशसितुं प्राहिणोत्। तैर्यत्नादवलोक्य लब्धोऽपि बालहत्याभीतैः स सायं पुरगोपुरे गोकुलखुरवैर्यथायं बालो विपन्नः सन् स्वयमपवादाय न भवतीति दूरस्थैर्यावन्मुक्तस्तावत्तत्रायातं गोकुलं तं मूर्त्तिमन्तं पुण्यपुञ्जमिव बालमालोक्य तैरेव पदैः स्तम्भितमिव तस्थौ। अथ पाश्चात्यपक्षात्पुरो भूय वृषभो वृषभासुरं तं शिशुं पदानामन्तराले निधाय गोधनं सकलमपि प्रेरयामास। अथ तं वृत्तान्तं नृपोऽवधार्य तैः सामन्तनगरलोकैस्तं[3] बालमानीय पुत्रीयमाणः श्रीपुञ्ज इति दत्ताभिधानः प्रवर्द्धयामास।

२०५) अथ श्रीरत्नशेखरे राज्ञि दिवं गते तस्य राज्ञः कृताभिषेकस्य साम्राज्यं पालयतः पुत्री समजनि। सा च सम्पूर्णसर्वाङ्गावयवसुन्दराऽपि कपिमुखी। तेन वैराग्येण विषयविमुखतां बिभ्राणा श्रीमातेति नामधेयं[4] बभार। सा कदाचिज्जातजातिस्मृतिः पितुरग्रे स्वं पूर्वभवं निवेदितवती-'यदहमर्बुदाद्रौ[5] पुरा कपिपत्नीत्वमनुभवन्ती कस्यापि शाखिन एकस्याः शाखायाः शाखान्तरं सञ्चरन्ती केनापि तदतुल्येन शिल्पेन[6] विद्धतालुः पञ्चत्वमासदम्। तदधोवर्त्तिनि कामिततीर्थकुण्डे यावद्गलितं वपुः पपात तावत्तीर्थातिशयान्मामकं वपुर्मानुषाकारमभवत्। यन्मस्तकं तु तत्तथैवास्ते तेनाहं कपिवदना। अथ श्रीपुञ्जनृपस्तस्यास्तन्मस्तकं कुण्डे प्रक्षेपयितुं निजानाप्तपुरुषान्समादिदेश। तैस्तु सुचिरात्तत्र तदवस्थं विलोक्य तथाकृते सा श्रीमाता मानवानना समजनि। ततःप्रभृति सा मातरपितरावनुज्ञाप्याऽर्बुदसंज्ञगुणा तस्मिन्नेवाऽर्बुदे तपस्यन्ती, कदाचिद्गगनगामिना योगिना ददृशे। स च तत्सौन्दर्यापहृतहृदयो गगनादुत्तीर्य प्रेमालापपूर्वकं 'त्वं मां कथं न वृणोषि?' इति पृष्टा[7] सेत्यवादीत्-'साम्प्रतं तावत्क्षणदायाः प्रथमो यामो व्यतीतः; तुर्ययामस्य ताम्रचूडेषु रुतमकुर्वाणेषु यद्यस्मिन्नगे कयाचिद्विद्यया द्वादशपद्या हृद्याः[8] कारयसि ततो भवन्तमभिकं[10] करोमी'ति तदुक्तिसमनन्तरमेव तत्र कर्मणि चेटकपेटकं नियोज्य यामद्वयेन निर्मापिते सर्वपद्यानिवहे, श्रीमाता स्वशक्तिवैभवेन कृतकताम्रचूडरवं कारयन्ती, तेनागत्य 'विवाहाय सज्जीभवे'त्यभिदधे। 'तव पद्यायां निष्पाद्यमानायां कुक्कुटरवः समजनिष्टे'ति तयोक्ते 'भवन्मायया कृतकं कृकवाकुरवं को न वेत्ति?' इत्युत्तरं ददानः, स सरित्तीरे तत्राभ्योपढौकितविवाहोपस्करः, श्रीमात्रा 'समस्तविद्यामूलं तत्त्रिशूलमिहैव विहाय पाणिपीडनाय सन्निहितो भवे'त्याहूय, प्रेमोपहृतचित्ततया तत्तथा कृत्वा सामीप्यमुपागतः। तत्पादयोः कृतकान् शुनो नियोज्य हृदये तेन त्रिशूलेनाहत्य मारितः[11]। इत्थं निःसीमशीललीलापितेन स्वं जन्मातिवाहितवती। तस्यामखण्डशीलायां व्यतीतायां श्रीपुञ्जराजा तत्र शिखरबन्धरहितं प्रासादमाकारयत्। यतः षण्मासान्ते तस्य गिरेरधोभागवर्त्ती अर्बुदनामा नागो यदा चलति तदा पर्वतकम्पो भवति। अतः शिखररहितास्तत्र सर्वेऽपि प्रासादाः।

॥ इति श्रीपुञ्जराज-तत्पुत्रीश्रीमाता-प्रबन्धः ॥

---

1 'पश्चाद्' स्थाने D 'यत्र तत्र'। 2 P सर्व०। 3 'सामन्तनगरलोकैस्तं' स्थाने D 'तत्र समस्तैश्च कार्ये(?)' एते शब्दाः। 4 P नाम। 5 P अर्बुदे गिरौ। 6 BP नास्ति। 7 D 'सा' नास्ति। 8 D हृद्याः। 9 D नास्ति। 10 D अभीष्टं। 11 P व्यापादितः। 12 P पर्वतस्य।

२०६) कदाचिद्गौडदेशे गोवर्द्धनो नाम राजाभूत् । तत्र[1] स्तम्भे निबद्धा सभामण्डपपुरतो न्यायिना[2] हन्यमाना न्यायघण्टा निनदति । अन्यदा तस्यैकसूनोः कुमारेण रथारूढेन पथि सञ्चरताऽज्ञातवृत्त्या कश्चिद्वत्सतरः पथि[3] व्यापादितः तन्माता सौरभेयी नयनाभ्यामजस्रमश्रूणि[4] वर्षन्ती स्वपराभवप्रतीकाराय शृङ्गाग्रेण न्यायघण्टामवीवदत् । तद्घण्टाटङ्कारं[5] नृपो निशम्याऽनन्यकीर्तिस्तमर्जुनीवृत्तान्तं मूलतोऽवगम्य निजं न्यायं परां कोटिमारोपयितुं प्रातः स्वयं स्यन्दने निविश्य[6] प्रियपुत्रोऽपि तमेकमेव पुत्रं पथि नियोज्य तदुपरि तां धेनुं साक्षीकृत्य[7] रथं भ्रामयामास । तस्य भूभुजः सत्त्वेन तस्य सुतस्य भूयसा भाग्यवैभवेन रथस्य रथाङ्गे समुद्धृते स कुमारो न विपन्नः ।

॥ इति गोवर्द्धननृपप्रबन्धः ॥

२०७) अथ कान्त्यां पुरि पुरा पुराणनृपतिश्चिरं राज्यं निर्गर्वः कुर्वन्, कदाचिन्मतिसागराभिधानेन प्रियसुहृदा महामात्येनाऽनुगम्यमानो राजपाटिकायां व्रजन्[8], विपर्यस्ताभ्यस्तेन[9] तुरङ्गेण नृपेऽपह्रियमाणे चतुरङ्गचमूचक्रे क्रमेण दवीयसि सञ्जायमानेऽप्यतिजवे जवनेऽधिरूढस्तदानुपदिकः सचिवः[10] कियत्यपि भूभागे उल्लङ्घिते सति मार्गोल्लङ्घनपरिश्रमादत्यन्तसुकुमारतया रुधिरपूरितत्वाद्विपन्ने नृपतौ कृतानन्तरकृत्यः, तं तुरङ्गमं तद्वेषं च सहादाय प्रदोषसमये पुरं प्रविशन्, राज्यस्यानुसन्धानचिकीः सीमालभूपालभयात्कमपि[11] नृपतेः सवयसं सरूपं च कुलालमालोक्य तद्रूपार्पणपूर्वं तुरगेऽधिरोप्य सौधप्रवेशानन्तरं देव्यै तं व्यतिकरं निवेद्य, सचिवेन पुण्यसार इति नाम[12] विधाय स एव नृपतीचक्रे । इत्थं[13] कियत्यपि गते काले स सचिवश्चमूसमूहवृतः प्रतिनृपतिं प्रति प्रतिष्ठासुः स्वप्रतिहस्तकप्रायं कमपि प्रधानपुरुषं नृपतिसेवाकृते नियोज्य[14] स्वयं देशान्तरविहारमकरोत् । अथ स पृथिवीपतिर्निरङ्कुशो वेश्यापतिरिव स्वैरविहारी तदनन्तरं पुरकुम्भकारान्समस्तानाहूय मृन्मयान् हयान् करिकलभकरभवृषभादींश्च निर्माय तैः समं चिरं चिक्रीड । एवं स्थिते समस्तराजलोकस्यावहेलनां नृपतेर्निशम्य ततः स्कन्धावारात् स सचिवः स्वल्पपरिच्छदो[16] नृपमुपेत्येत्यवादीत्–'यस्त्वमिदानीमेवाविस्मृतकारुभावः स्वभावचलाचलतया यदि कामपि मर्यादां न मन्यसे, तदा त्वां निर्विषयीकृत्य कमप्यपरं कुलालबालं भूपालं करिष्यामी'ति तदुक्तिक्रुद्धः[20] स नृपः सभायामुपांशुभूमौ 'कोऽत्र भोः ?' इति व्याहृतिसमनन्तरमेव सजीवभूतैश्चित्रपदातिभिः स सचिवः सन्दानितः । तदसम्भाव्यं महदाश्चर्यं[22] विमृश्य तत्प्रभुप्रभावाविर्भावचमत्कृतचित्तस्तत्पदयोर्निपत्य स्वं मोचयितुमत्यर्थमभ्यर्थयन् नृपेण तथा कारिते स सभक्तिकं विज्ञपयामास–'भवतः साम्राज्यदाने निमित्तमात्रोऽहम्, तव प्रभावादालेख्यरूपाणि अपि सचेतनीभूयेत्थं निदेशवशंवदानि भवन्ति तत्र प्राकृतान्येव[23] कर्माणि कारणमत एव भवान्पुण्यसार इति सान्वयनामा ।

॥ इति पुण्यसारप्रबन्धः ॥

---

1 AB पर्यंप०; D शरायः० । 2 BP न्यायेन । 3 AD नास्ति । 4 P 'अजस्रं' नास्ति । 5 P तं घण्टानिनादं । 6 AD निवेश्य । 7 D साक्षात्कृत्य । 8 P गच्छन् । 9 D विपर्यस्ताभ्यस्तेन । 10 P विना नात्यत्र । 11 D श्रीमाल० । 12 P नामधेयं । 13 P नास्ति । 14 AD निवेश्य । 15 A वत्सा०, P विहा०, Db वेसा०, B वत्सर्पं० । 16 P परिच्छन्न: । 17 P विहाय नात्यत्र 'वृषभ' । 18 P परिकरः । 19 P सहजचलतया । 20 P कुपितः । 21 D सजीभू० । 22 P एवं विमृशन् । 23 BP प्राक्तनानि ।

२०८) अथ पुरा कुसुमपुरे नगरे नन्दिवर्द्धननामा राजकुमारो निर्जच्छत्रधरेण समं देशान्तरविलोकनंकुतुकी पितरावनापृच्छ्य यदृच्छया गच्छन् प्रत्यूषकाले क्वापि पुरे प्राप्तः । तत्राऽपुत्रिणि नृपतौ पञ्चत्वमुपागते सति सचिवैरभिषिक्तः पट्टहस्ती निखिलेऽपि नगरे यदृच्छया भ्रामं भ्रामं स सम्भ्रमं तत्रागतः । तं नृपकुमारमासन्नमपि दुःस्वप्नमिव विस्मृत्य परं छत्रधरमभ्यषिञ्चत् । स च तत्प्रधानैर्महता महोत्सवेन पुरं प्रवेश्यमानो राजकुमारमपि तथैव महत्या प्रतिपत्त्या सह गृहीत्वा सौधं गतः । 'अहं राजलोकस्य स्वामी त्वं तु मम' इत्युचितैरुपचारवचनैस्तमन्तरितमारराध । स तु राजा राजगुणानामनर्हो निरवधिदुर्मेधा वर्णाश्रमपालनापरिश्रमानभिज्ञो यथा यथा प्रजापीडनपरः साम्राज्यं कुरुते तथा तथा पशुपतिमूर्ध्नि विधृतराजेव स कुमारः प्रतिदिनं हीयते । कस्मिन्नप्यवसरे तं तथास्थितं कुमारं स नृपतिस्तत्तनुताहेतुं पृच्छन् 'दुर्मेधतया त्वं यत्प्रजाः पीडयसि तेनात्यन्तमनौचित्येन कृशतामावहामि ।

२४२. वासो जडाण मज्झे दुज्जीहो सामिसवणपंडिलग्गा । जीविज्जइ तं लाहो झीणत्ते विम्हओ कीस ॥

इति मया गाथार्थः सत्यापितोऽस्ती'ति तद्वचनानन्तरं 'यदस्याः प्रजायाः पापनिरताया अपुण्योदयेनावश्यंभाविपीडनावसरेऽहं नृपतीकृतः । यदि प्रजायाः परिपालना लोकेशोऽभ्यलिखिष्यत्तदा भवत एव पट्टहस्ती पट्टाभिषेकमकरिष्यदि'ति तदुक्तियुक्तिभ्यां भेषजाभ्यामिव निगृहीतरुक् स कुमारो वपुःपीवरतां बभार ।

॥ इति कर्मसारप्रबन्धः ॥

२०९) अथ गौडदेशे लप(ख)णावत्यां नगर्यां श्रीलक्ष्मणसेनो नाम नृपतिरुमापतिधरनाम्ना सचिवेन सर्वबुद्धिनिधानेन चिन्त्यमानराज्यश्चिरं राज्यं चकार । स त्वनेकमत्तमातङ्गसैन्यसङ्गादिव मदेनान्धतां दधानो मातङ्गीसङ्गपङ्ककलङ्कभाजनमजनि । उमापतिधरस्तु तद्व्यतिकरमवगम्य प्रकृतिक्रूरतया च स्वामिनोऽनाकलनीयतां च विचिन्त्य प्रकारान्तरेण तं पोधयितुं सभामण्डपभारपट्टे गुप्तवृत्त्यामूनि काव्यानि लिलेख—

२४३. शैत्यं नाम गुणस्तवैव तदनु स्वाभाविकी स्वच्छता किं ब्रूमः शुचितां भजन्त्यशुचयः स्पर्शात्तवैवापरे ।
किं चातः परमस्ति ते स्तुतिपदं त्वं जीवितं देहिनां त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः ॥

२४४. त्वं चेत्सञ्चरसे वृषेण लघुना का नाम दिग्दन्तिनां व्यालैः कङ्कणभूषणानि तनुषे हानिर्न हेम्नामपि ।
मूर्द्धन्यं कुरुषे जडांशुमयशः किं नाम लोकत्रयीदीपस्याम्बुजबान्धवस्य जगतामीशोऽसि किं ब्रूमहे ॥

२४५. छिन्नं ब्रह्मशिरो यदि प्रथयति प्रेतेषु सख्यं यदि क्षीवः क्रीडति मातृभिर्यदि रतिं धत्ते श्मशाने यदि ।
सृष्टिं संहरति प्रजा यदि तथाप्याधाय भक्त्या मनस्त्वं सेवे करवाणि किं त्रिजगती शून्या स एवेश्वरः ॥

२४६. एतस्मिन्महति प्रदोषसमये राजा त्वमेकस्ततो लक्ष्मीमम्बुरुहां पिधाय कुमुदे किं नो घनोपि प्रियः ।
यद्राज्ञी स्थितिरत्र च सुमनःश्रेणीषु सम्भावना त्वं तावत्क्षमोऽसि गणयितुं पात्रापि नैव क्षमः ॥

---

1 AD नास्ति । 2 AD 'मिन' नास्ति । 3 BP °दर्शन° । 4 P प्रभात° । 5 P गतेऽपि । 6 'भ्रामं भ्रामं सम्भ्रमं' स्थाने D 'भ्रमाम', A 'स भ्रमन्' । 7 AD °महापूर° । 8 P महेन । 9 AD 'परिश्रम' नास्ति । 10 D नास्ति । 11 AD दोर्मेधा । 12 P सामिसवण° । 13 P वि । 14 AD झीणे । 15 D विन्हिओ । 16 D 'कला' नास्ति । 17 AD मिथिला । 18 D मदान्धतां । 19 D अनालोकनी° । 20 P वर्तते । 21 P सर्वेव चकारे । 22 AD लघुना । 23 P कुरुषे । 24 BP ना । 25 P यत्र ।

२४७. [†]सद्वृत्तसद्गुणमहार्हमनर्घ्यमूल्यकान्ताघनस्तनतटोचितचारुमूर्त्ते ।
आः पामरीकठिनकण्ठविलग्नभग्न हा हार हारितमहो भवता गुणित्वम् ॥

कस्मिन्नपि सर्वावसरप्रस्तावे[1] तानि वीक्ष्य[3] तदर्थमवगम्य तस्मिन्नन्तर्द्वेषं दधौ । यतः–

२४८. प्रायः सम्प्रति [4]कोपाय सन्मार्गस्योपदेशनम् । विलूननासिकस्येव [5]यद्वदादर्शदर्शनम् ॥

इति न्यायात्सामर्षतया तं पदभ्रष्टं चकार । अथ स नृपतिः कदाचिद्राजपाटिकायाः प्रत्यावृत्तो दुरवस्थमेकाकिनमुपायविधुरमुमापतिधरं[7] तं वीक्ष्य क्रोधाद्वधाय हस्तिपकेन हस्तिनं प्रेरयामास[8] । स तु निषादिनं प्रति प्राह–'यावदहं राज्ञोऽग्रे किञ्चिद्वच्मि तावत्त्वयान्निवार्यतां गजः ।' तद्वचनात्तेन तथाकृते उमापतिधरः प्राह–

२४९. नग्नस्तिष्ठति धूलिधूसरवपुर्गोपृष्ठिमारोहति व्यालैः क्रीडति नृत्यति स्रवदसृग् चर्मोद्वहन् दन्तिनः ।
आचाराद्बहिरेवमादिचरितैरावद्धरागो हरः[9] सन्तो नोपदिशन्ति यस्य गुरवस्तस्येदमाचेष्टितम् ॥

इति तद्विज्ञानाङ्कुशेन वशंवदमनोगजो निजचरित्रे[10] किञ्चित्सानुशयः स्वममन्दं निन्दंस्तद्व्यसनं शनैर्निषिध्य तं पुनरेव प्रधानीचकार ।

॥ इति लक्ष्मणसेनोमापतिधरयोः प्रबन्धः ॥

२५०) अथ कासिनगर्यां जयचन्द्र[11] इति नृपः प्राज्य[12]साम्राज्यलक्ष्मीं पालयन् पङ्गुरिति विरुदं बभार । यतो यमुना-गङ्गायष्टियुगावलम्बनमन्तरेण चमूसमूहव्याकुलिततया क्वापि गन्तुं न प्रभवति । कस्मिन्नप्यवसरे तत्र वास्तव्यस्य कस्यापि शालापतेः पत्नी सूहवनाम्नी सौन्दर्यनिर्जितजगत्त्रयस्त्रैणा, भीष्मग्रीष्मर्तौ जलकेलिं विधाय सुरसरित्तीरे तस्थुषी सा खञ्जनाक्षी, व्यालमौलिस्थितं खञ्जनं वीक्ष्य तमसम्भाव्यं शकुनं कस्यापि द्विजन्मनः[13] स्नातुमायातस्य पदोर्निपत्य तद्विचारं पप्रच्छ । स निमित्तवित् 'चेन्मदादेशं सदैव तनुषे तदा तव विचारमहं निवेदयामी'ति तेनोक्ता तव पितृनिर्विशेषस्य मान्यामाज्ञां[14] सदैव मूर्ध्ना तां वहामी'ति प्रतिज्ञापरायास्तस्याः 'सप्तमेऽह्नि त्वमस्य नृपतेरग्रमहिषी भविष्यसी'ति आदिश्य द्वावपि यथागतं जग्मतुः । अथ निमित्तविदा निर्णीते वासरे स राजा राजपाटिकायाः प्रत्यावृत्तः क्वापि रथ्यायां नेपथ्यविहीनामपि अगण्यलावण्यपुण्याङ्गीं तां शालापतिबालां विलोक्य स्वचित्तसर्वस्वचौरीमूरीकृत्याग्रमहिषीं चकार । तदनु तया कृतज्ञया[15] विप्रं प्रति स्वां प्रतिज्ञां[16] स्मरन्त्या नृपाय तस्मिन् विद्याधरनिमित्ते विज्ञप्ते पटहप्रणादपूर्वं तस्मिन् विद्याधरे आहूयमाने, विद्याधराभिधानानां द्विजानां सप्तशतीमागतां विलोक्य तमेकमुपलक्षितं पृथक् कृत्वा शेषेषु यथोचितं सत्कृत्य विसृष्टेषु नृपतिः 'यथेप्सितं प्रार्थये'ति विद्याधरं विपश्चिद्धुरं प्राह । राजादेशप्रमुदितेन तेन 'अङ्गसेवा सदैवास्तु' इति प्रार्थिते नृपतिना तथेति प्रतिपन्ने, तस्य निरवधिचातुर्यं पर्यालोच्य सर्वाधिकारभारे[17] धुरन्धरो व्यधायि । स च क्रमेण सम्पन्नसम्पन् निजद्वात्रिंशदवरोधपुरन्ध्रीणामनुवासरं जात्यकर्पूरपूराभ-

† इदं पद्यं P आदर्शे नोपलभ्यम् । 1 D कस्मिन्नप्यवसर० । 2 P ०समये । 3 P निरीक्ष्य । 4 D सन्ति प्रकोपाय ।
5 P विधुरस्यादर्श० । 6 P नास्ति 'उपायविधुर' । 7 P विहाय नान्यत्र 'उमापतिधरं' । 8 P व्यापारयामास । 9 D ०रागाहरे ।
10 D चरित्रैकवित्० । 11 P जयत्चन्द्र । 12 P 'प्राज्य' नास्ति । 13 P द्विजस्य । 14 D सामान्या ममाज्ञा । 15 AD
कृतज्ञया । 16 AD विप्रप्रतिज्ञां । 17 P सर्वव्यापारभारे ।

रणानि कारयन् प्राच्यानि निर्माल्यानीत्यवकरकूपिकायां त्याजयन् साक्षाद्दैवतावतार इव दिव्यभोगान् भुञ्जानोऽष्टादशजङ्घासहस्राणां ब्राह्मणानामभिलषिताभ्यवहारदानादनु स्वयमश्नाति।

२११) अथ कदाचित् नृपतिना वैदेशिकभूपतिमभिषेणयितुं चतुर्दशविद्याधरो विद्याधरो राजादेशाद्देशान्तराण्यवगाहमानः क्वचिदिन्धनविहीने देशे विहितावासस्तेषां विप्राणां पाककाले सूपकाराणां तैलाभ्यक्तवस्त्रदुकूलान्येवेन्धनीकुर्वन् तान्विप्रान् रूक्षैव भोजयामास। अथ प्रतिरिपुं निर्जित्य जितकासितया व्यावृत्य प्राप्तनिजपुरीपरिसरः पिण्याकाभिलापात् दुकूलज्वालनेन कुपितं भूपतिमवगम्य स्वं गृहमर्थिभिर्लुण्टाप्य तीर्थोपासनवासनया सञ्चरन्, आनुपदिकेन नृपतिनानुनीयमानो मानोन्नततया नृपतेराशयं स्वाभिलापसम्भवेन निवेद्य, कथंकथंचिदापृच्छ्य निजमवसानमसाधयत्।

२१२) तदनन्तरं सूहवदेव्या निजाङ्गजस्य कृते युवराजपदवीं याचितो नृपः 'सङ्गृहिणीपुत्रायास्मद्वंशे राज्यं न युज्यते' इति बोधिता नृपतिं जिघांसुर्म्लेच्छानाहूतवती। अथ स्थानपुरुषाणां समायातविज्ञप्तिकया तं व्यतिकरमवधार्य लब्धपद्मावतीवरप्रसादं सादरं कमपि दिग्वाससं निमित्तं पृष्टवान्। स पद्मावत्याः सप्रत्ययं म्लेच्छागमनिषेधरूपसमादेशं नृपतेर्विज्ञप्तवान्। अथ कियद्दिनानां प्रान्ते तान् संनिहितानाकर्ण्य स आशाम्बरः किमेतदिति पृष्टस्तस्यामेव निशि नृपतिप्रत्यक्षं पद्मावत्याः पुरो होममारभत। अथ निरवद्याकृष्टिविद्यया होमकुण्डाज्ज्वालामालान्तरिता प्रत्यक्षीभूय श्रीपद्मावती तुरुष्कागमनिषेधमुक्तवती। अथ सामर्षः क्षपणकस्तां कर्णयोर्धृत्वा क्रोधानुबन्धात् 'तेषु संनिहितेषु किं भवत्यपि वितथं ब्रूषे?' इति तेनोपालम्भिता सती सैवमवादीत्–'त्वं यां पद्मावतीमतीव भक्त्या पृच्छसि साऽस्मत्प्रतापबलात्पलायांचक्रे। अहं तु म्लेच्छगोत्रदैवतं मिथ्याभाषणेन लोकं विश्वास्य म्लेच्छैर्विश्वासं कारयामी'त्युदीर्य तस्यां तिरोहितायां म्लेच्छसैन्येन प्रातर्वाराणसीं वेष्टितां चेष्टया जानन् तद्धनुर्ध्वानैश्चतुर्दशशतीमितनिस्वानयुग्मनिस्वनेऽपहुते बले सति प्रबलम्लेच्छबलव्याकुलीकृतमनास्तं सूहवदेव्या अङ्गजं निजगजे नियोज्य जाह्नवीजले स राजा ममज्ज।

॥ इति जयचन्द्रप्रबन्धः॥

२१३) अथ जगद्देवनामा क्षत्रियः त्रिविधामपि वीरकोटीरतां बिभ्रत्, श्रीसिद्धचक्रवर्तिना सम्मान्यमानोऽपि तद्गुणमन्त्रवशीकृतेन नृपतिना परमर्दिश्रीपरमर्दिना समाहूतः सोपरोधं पृथ्वीपुरन्ध्रीकुन्तलकलापकल्पं कुन्तलमण्डलमवाप्य यावत्तदागमं श्रीपरमर्दिने द्वाःस्थो निवेदयति तावत्तत्सदसि काचिद्विटवनिता विवसना पुष्पचलचलनका नृत्यन्ती तत्कालमेवोत्तरीयं समादाय सापत्रपा सा तत्रैव निषसाद। अथ राजदौवारिकप्रवेशिताय श्रीजगद्देवाय परिरम्भप्रियालापप्रभृति सन्मानदानादनु प्रधानपरिधानदुकूलं लक्ष्यमूल्यातुल्योद्भटपटयुगं प्रासादीकृत्य तस्मिन् महार्हासननिविष्टे सभासम्भ्रमे भग्ने सति नृपस्तामेव विटनटीं[17] नृत्यायादिदेश। अथ सा औ-

1 D 'जया' नास्ति; Do सजया०। 2 D चतुर्दशविद्याधरोऽपि प्रेषितो देशाद्०। 3 P यद्दिर्दसावास०। 4 BD तं पतिं। 5 P आदायसनः। 6 P विरुल। 7 P नास्त्येतत्पदं। 8 P धनुष्टङ्कारैः। 9 AD ०कुळ०। 10 AD निजे गजे। 11 P विहाय 'राजा' स्थाने 'गज.'। 12 P जयतचन्द्र०। 13 D सन्मान्योऽपि। 14 P परमर्दिना। 15 D पुष्पचळनका। 16 D नास्त्येष शब्दः। 17 P विटवनितां।

चिरप्रपञ्चचञ्चुश्चञ्चचातुर्यधुर्यो 'श्रीजगद्देवनामा जगदेकपुरुषः साम्प्रतं समाजगाम तत्तत्र विवसनाहं जिह्रेमि। स्त्रियः स्त्रीष्वेव यथेष्टं चेष्टन्ते' इति तस्या लोकोत्तरया प्रशंसया प्रमुदितमानसस्तं स्वप्रसादीकृतं वसनयुगं तस्यै वितीर्णवान्।

अथ श्रीपरमर्द्दिप्रसादतो देशाधिपत्ये सञ्जाते सति ऋणग्रस्तस्तदुपाध्यायः श्रीजगद्देवस्य मिलनाय समागतः काव्यमिदं प्राभृतीचकार। तद्यथा–

२५०. *अक्षत्रक्षतवालिनो भगवतः कस्यापि सङ्गीतकव्यासक्तस्य च तस्य कुन्तलपतेः पुण्यानि मन्यामहे ।
एकः कामदुघामदुग्ध मरुतः सूनोः सुधाहुद्र्वी प्रत्यक्षप्रतिपक्षभार्गव भवानन्यस्य चिन्तामणिः ॥

अस्य काव्यस्य पारितोषिके तस्मै स स्थूललक्षो लक्षार्द्धं वितताार ।

२५१. चक्रः पप्रच्छ पान्थं कथय मम सखे क्वास्ति किं स प्रदेशो
वस्तुं नो यत्र रात्रिर्भवति भुवि चिरायेति स प्रत्युवाच ।
नीते मेरौ समाप्तिं कनकवितरणैः श्रीजगद्देवनाम्ना
सूर्येऽनन्तर्हितेऽस्मिन् कतिपयदिवसैर्वासराद्वैतसृष्टिः ॥

२५२. क्षोणीरक्षणदक्षदक्षिणभुजे दाक्षिण्यदीक्षागुरौ श्रेयःसद्मनि धन्यजन्मनि जगद्देवे जगद्दातरि ।
वर्तन्ते विदुषां गृहाः प्रतिदिनं गन्धेभगन्धर्वयोरालानद्रुमरज्जुदामघटनाव्यग्रीभवत्किंकराः ॥

२५३. त्वयि जीवति जीवन्ति बलिकर्णदधीचयः । दारिद्र्यं तु जगद्देव ! मयि जीवति जीवति ॥

२५४. दरिद्रान् सृजतो धातुः कृतार्थान् कुर्वतस्तव । जगद्देव ! न जानीमः कस्य हस्तो विरंस्यति ॥

२५५. जगद्देव ! जगद्देवप्रासादमधितिष्ठतः । त्वद्यशःशिवलिङ्गस्य नक्षत्रैरक्षतायितम् ॥

[१७४] *कीर्तिस्ते जातजाड्येव चतुरम्भोधिमज्जनात् । प्रतापाय जगद्देव ! गता मार्त्तण्डमण्डलम् ॥

[१७५] *स्वस्ति क्षत्रियदेवाय जगद्देवाय भूभुजे । यद्यशःपुण्डरीकान्तर्गगनं भ्रमरायते ॥

[१७६] *एकः क्ष्माचक्रपीठे वितरति कनकं श्रीजगद्देवदेवो
याञ्चा दीनाः सहस्रं सततमिति मनो मा विषादास्पदं भूः ।
आदित्याः किं कियन्तः प्रबलतमतमस्तोममज्जज्जनौघ-
प्राणत्राणप्रयाणप्रवणहरिखुरक्षुण्णदिक्चक्रवालाः ॥

२५६. अगाधः पाथोधिः पृथु धरणिपात्रं विभु नभः समुत्तुङ्गो मेरुः प्रथितमहिमा कैटभरिपुः ।
जगद्देवो वीरः सुरतरुरुदारः सुरसरित् पवित्रा पीयूषद्युतिरमृतवर्षीति न नवम् ॥

'न नवमि'ति जगद्देवार्पिता समस्या पण्डितेन पूरिता ।

[१७७] *तथ्या पार्थकथा वृथा बलिरयं शक्रोऽवनौ भूचरो
लोकः सम्प्रति साहसाङ्कचरिताश्चर्येऽपि मन्दादरः ।
दृष्टः कंसरिपुर्न कल्पतरुणा शून्यं महीमण्डलं
शोच्यो न सरविग्रहस्त्वयि जगद्देवे जगद्दातरि ॥

[१७८] *यदायं दुर्वारः किरति किरणश्रेणिमनिशं यशःप्रालेयांशुर्दिशि दिशि जगद्देव ! भवतः ।
तदा सर्वं राकाभयसमयमालोक्य भुवनं कुहूशब्दो जातः पिकनिकरकण्ठकशरणः ॥

1 D ०चञ्चुश्चतुरं० । 2 P स्वर्ग । 3 D नास्त्येतत्पदं । * D पुस्तके इदं पद्यं मूलग्रन्थे न लभ्यते । 4 D पद्म । 5 P ०। 6 AD भवत० । 7 P शुरवनिपात्रं । * एतच्चिह्नाङ्कितानि पद्यानि P आदर्शे एवोपलभ्यन्ते ।

[१७२] *सत्रासा इव सालसा इव लसद्गर्वा इवार्द्रा इव व्याजिह्मा इव चकिता इव पुरो भ्रान्ता इवार्ता इव ।
त्वद्रूपे निपतन्ति कुत्र न जगदेवप्रभोः सुभ्रुवां वात्यावर्तननर्तितोत्पलदलद्रोणिद्रुहीदृष्टयः ॥

इत्यादीनि बहूनि काव्यानि यथाश्रुतं ज्ञातव्यानि[1] ।

अथ श्रीपरमर्द्दिमेदिनीपतेः पट्टमहादेवी श्रीजगद्देवस्य प्रतिपन्नजामिः। कदाचित् राज्ञा [2]सीमालभूपालपराजयाय प्रहितः श्रीजगद्देवो देवार्चनं कुर्वन् छलघातिना परबलेन निजं सैन्यमुपद्रुतं शृण्वन् तमेव देवतावसरं न मुमोच । तस्मिन्नवसरे प्रणिधिपुरुषमुखाज्जगदेवपराजयमश्रुतपूर्वमवधार्य महिषीं श्रीपरमर्दी प्राह–'भवद्भ्राता संग्रामवीरताऽहंयुता[3] विश्राणोऽपि रिपुभिराक्रान्तः पलायितुमपि न प्रभूष्णुरजनि' । इति नृपतेर्मर्माविधं[5] नर्मोक्तिमाकर्ण्य प्रत्यूषसन्ध्याकाले सा राज्ञी प्रतीचिदिशमालोकितवती, राज्ञा 'किमालोकसे ?' इत्यादिष्टे 'सूर्योदयमि'ति; 'मुग्धे ! किं सूर्योदयोऽपरस्यां दिशि कदाचिन्नाघटीति ?' सा तु 'विरञ्चिप्रपञ्चप्रतीपः प्रतीच्यामपि प्रद्योतनोदयो दुर्घटोऽपि घटते परं क्षत्रियदेवजगद्देवस्य भङ्गस्तु न' इति दम्पत्योः प्रियालापे, देवार्चनानन्तरं जगद्देवः पञ्चशत्या सुभटैः समं समुत्थितश्चण्डांशुरिव तमस्काण्डम्, केसरिकिशोर इव गजयूथम्, वात्यावर्त्त इव घनाघनमण्डलं [7]निखिलमपि प्रत्यर्थिपार्थिवकु(ब)लं हेलयैव तद्दलयामास ।

२१४) अथ स परमर्द्दिनामा नृपो जगत्युदाहरणीभूतं परमैश्वर्यमनुभवन् निद्रावसरवर्जं रात्रिन्दिवं निजौजसा विच्छुरितं छुरिकाभ्यासं विदधानोऽशनावसरे परिवेषणव्याकुलं प्रतिदिनमेकैकं सूपकारमकृपः कृपाणिकया निघ्नन् षष्ठ्यधिकेन शतत्रयेण भक्तकाराणां वर्षे निषेव्यमाणः कोपकालानल इति बिरुदं बभार ।

२५७. आकाश प्रसर प्रसर्पत दिशस्त्वं पृथ्वि पृथ्वी भव प्रत्यक्षीकृतमादिराजयशसां युष्माभिरुज्जृम्भितम् ।
प्रेक्षध्वं परमर्द्दिपार्थिवयशोराशेर्विकाशोदयाद्बीजोच्छ्वासविदीर्णदाडिमदशां[8] ब्रह्माण्डमारोहति ॥

इत्यादिभिः स्तुतिभिः स्तूयमानश्चिरं साम्राज्यसुखमनुबभूव ।

२१५) स च सपादलक्षीयक्षितिपतिना श्रीपृथ्वीराजेन सह सञ्जातविग्रहः समराजिरमधिरूढः स्वसैन्ये पराजिते सति[10] कान्दिशीकः कामपि दिशं गृहीत्वा पलायनपरः स्वां राजधानीमाजगाम । अथ तस्य [11]परमर्द्दिपार्थिवस्यापमानितपूर्वः कोऽपि तत्पूर्वसेवको[12] निर्विषयीकृतः पृथ्वीराजराजसभामुपेतः प्रणामान्ते 'किं दैवतं परमर्द्दिपुरे विशेषात्स्तुकृतिभिरिज्यते ?' इति स्वामिनादिष्टस्तत्कालोचितं काव्यमिदमपाठीत्–

२५८. मन्दश्चन्द्रकिरीटपूजनरसस्तृष्णा न कृष्णार्चने स्तम्भः[13] शम्भुनितम्बिनीप्रणतिषु व्यग्रो विधातृग्रहः ।
नाथो नः परमर्दनेन वदनन्यस्तेन संरक्षितः पृथ्वीराजनराधिपादिति तृणं तत्पत्तने पूज्यते ॥

इति स्तुतिपरितोषितः [15]स राजा तं यथेप्सितेन[14] पारितोषिकेणानुजग्राह । स[16] च त्रिःसप्तकृत्वस्त्रासितम्लेच्छाधिपो द्वाविंशतितमवेलायां स एव म्लेच्छाधिपतिः[16] पृथ्वीराजराजधानीमुपेत्य निजदुर्द्धरस्कन्धावारेण समवात्सीत् । त्रासितमक्षिकेव भूयो भूयो रिपुरुपैतीति निजनृपतेररतिं

1 P ज्ञेयानि । 2 D श्रीमाल० । 3 D ०वीरतायत्तां । 4 P रिपुभरा० । 5 D मर्माभिघातन० । 6 D 'कदाचित्' नास्ति । 7 AD 'घना–' नास्ति । †–† एतदन्तर्गतं वाक्यं P आदर्शे एव लभ्यम् । 8 P बीजोच्छ्वासितपक्वदाडिमतुलां । 9 D राज्य० । 10 D नास्ति । 11 'परमर्द्दि' नास्ति AD । 12 D ०मानितसर्वसेवको । 13 D स्तब्धः । 14 A यदीप्सितेन । १–१ एतदन्तर्गता पंक्तिः D पुस्तके पतिता । 15 D वश । 16 P नृपतिः ।

मनोगतामवगम्य प्रभोर्निःसीमप्रसादपात्रं द्वितीयमिव गात्रं[1] तुङ्गनामा क्षात्रं तेजो वहन् सुभटकोटिकोटीरः स्वप्रतिबिम्बरूपेण पुत्रेण समं म्लेच्छपतेरनीकं प्रविश्य तस्थौ[2]। निशीथसमये तस्य रिपोर्गुरूदरात् परितः खादिराङ्गारधगधगायमानां परिखां निरीक्ष्याङ्गजं जगाद–'अस्यां मम प्रविष्टस्य पृष्ठे पदं ददानो म्लेच्छपतिं निगृह्णाणे'ति पितुरादेशान्ते 'कार्यमेतन्ममासाध्यतमम्, किं च निजजीविताकाङ्क्षया पितुर्विपत्तिदर्शनम्; तदहमस्यां विशामि भवन्त एव तमन्तं नयन्तु।' इत्युक्त्वा तेन तथाकृते स्वामिकार्यं पर्याप्तप्रायं मन्यमानस्तमरातिं लीलया निगृह्य यथागतमाजगाम। विभातभूयिष्ठायां निशि विपन्नं स्वं स्वामिनं निरीक्ष्य परं दैन्यं दधत् म्लेच्छसैन्यं[3] पलायांचक्रे। स तुङ्गसुभटस्तुङ्गप्रकृतितया नृपतेः कदाचिन्न ज्ञापयामास। कस्मिन्नप्यवसरे राजमान्यतया नितान्तपरिचितां तुङ्गपुत्रवधूमवधूतमङ्गलवलयामालोक्य सम्भ्रमान् नृपतिना पृच्छ्यमानोऽपि पयोधिरिव गम्भीरतया मौनमर्यादया किमप्यविज्ञपयन् निजशपथदानपूर्वकं पृष्टो निजगुणकथापनकं[4] दुष्करमिति तथापि प्रभोरभ्यर्थनया निवेद्यमानमस्तीत्यभिधाय तद्वृत्तान्तं प्रत्युपकारभीरुर्यथावस्थितं निवेदयामास।

२५९. इयमुच्चधियामलौकिकी महती कापि कठोरचित्तता।
उपकृत्य भवन्ति निःस्पृहाः परतः[5] प्रत्युपकारशङ्कया[6] ॥

॥ इति तुङ्गसुभटप्रबन्धः ॥

२१६) अथ कदाचित्तस्य म्लेच्छपतेः सूनुर्नृपतिः पितुर्वैरं स्मरन्, सपादलक्षक्षितिपतिर्विग्रहकाम्यया सर्वसामग्र्या समुपेतः पृथ्वीनाथस्य नासीरवीरधनुर्द्धरशरैः प्रावृषेण्यधाराधरधारासारैरिव तस्मिन्ससैन्येऽपि त्रासिते पृथ्वीराजस्तदा तदानुपदिकीभावं भजन्, महानसाधिकृतपञ्चकुलेन व्यज्ञपि–'करभीणां सप्तशत्यापि महानसपरिस्पन्दः सुखेन नोह्यते, ततः कियतीभिः करभीभिः प्रभुः प्रसीदतु' इति विज्ञप्तो नृपतिः 'म्लेच्छपतिमुच्छेद्य तदौष्ट्रिकमाच्छिद्य[7] भवदभ्यर्थिताः करभीः प्रसादीकरिष्यामी'ति तत्सम्बोध्य पुनः प्रयाणं कुर्वन् सोमेश्वरनाम्ना प्रधानेन भूयो भूयो निषिध्यमानः, तत्पक्षपातभ्रान्त्या नृपतिना निगृहीतकर्णः, तदत्यन्तपराभवात् तस्मिन् प्रभौ सामर्षो म्लेच्छपतिं प्राप्य तदभिभवप्रादुःकरणतस्तान् विश्वस्तान् पृथ्वीराजस्कन्धावारसन्निधौ समानीय, पृथ्वीराजराज्ञ एकादश्युपवासकृतपारणादनु सुप्तस्य तन्नासीरवीरैः सह म्लेच्छानां[8] समरसंरम्भे सञ्जायमाने निर्भरनिद्रानिद्रायमाण एव[9] तुरुष्कैर्नृपतिर्निबध्य स्वसौधे नीतः। पुनरप्येकादश्युपवासपारणके नृपतेर्देवतार्चनावसरे म्लेच्छराज्ञा प्रहितं पैत्रपात्रीकृतं मांसपाकं गुरूदरान्तर्नियुज्य तथैव[10] देवताराधनव्यग्रे सति शुनाऽपह्रियमाणे तस्मिन् पिशिते 'किं न रक्षसि?' यामिकैरित्यभिहितः, 'करभीणां सप्तशत्या दुर्वहं यत्पुरा मम महानसं तत्साम्प्रतं दुर्दैवयोगादीदृशीं दुर्दशां प्राप्तमिति कौतुकाकुलितमानसो विलोकयन्नस्मी'ति तेनोक्ते 'किं काचिदद्यापि त्वय्युत्साहशक्तिरवशिष्यते?' इति तैर्विज्ञप्ते 'यदि स्वस्थाने गन्तुं लभेत तदा दर्शयामि वपुःपौरुषमि'ति यामिकैर्विज्ञप्तो म्लेच्छनृपतिस्तत्साहसं दिदृक्षुस्तदीयां राजधानीमानीय पृथ्वीराजं तत्र राजसौधे

1 D ॰मिवापरं। 2 P विनाऽन्यत्र नाश्रीरं परं। 3 AD यशु॰। 4 AD 'परसैन्यं' इत्येव। 5 P विहाय अन्यत्र 'कथापनकं' स्थाने 'कथकं' पाठः। 6 BP पुरतः। 7 BP ॰भीरुः। 8 D जातस्नेहत्वात्। 9 D म्लेच्छाधिपवीनां। 10 D 'एव' नास्ति। 11 D तत्र। 12 D तदैव।

यावदभिपेक्ष्यति तावत्तत्र चित्रशालायां शूकरनिर्वहैर्हन्यमानान् म्लेच्छानालोक्यामुना मर्माभिघातेनात्यन्तपीडितस्तुरुष्कपार्थिवः पृथ्वीराजं कुठारशिरश्छेदपूर्वं संजहार ।

॥ इति नृपतिपरमर्द्दि-जगद्देव-पृथ्वीपतीनां प्रबन्धाः ॥

२१७) अथ शतानन्दपुरे परिखीभूतजलधौ श्रीमहानन्दो नाम राजा, मदनरेखेति तस्य राज्ञी । अन्तःपुरप्राचुर्यात् 'तां प्रति विरक्तचेता नृपतिरिति', पतिसंवननकर्मनिर्माणव्यापृता[2] नानाविधान् वैदेशिकान् कलाविदश्च पृच्छन्ती कस्यापि यथार्थवादिनः सत्यप्रत्ययस्य कार्मणकर्मणे किञ्चित्सिद्धयोगमासाद्य तत्प्रयोगावसरे[3]–

'मन्त्रमूलबलात्प्रीतिः पतिद्रोहोऽभिधीयते ।'

इति वाक्यमनुस्मरन्ती सतीव तद्योगचूर्णं जलधौ न्यधत्त । 'अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः' इति तन्निक्षेपजमाहात्म्याद्वशीकृतो वारिधिरेव मूर्त्तिमान् निशि तां नित्यमुपेत्य रेमे । इत्थमकस्मादाधानवतीं प्रतीकैस्तच्चिह्नैर्निर्णीय सकोपो भूपो यावत्तस्याः प्रवासादिदण्डं कमपि विमृशति तावत्तस्याः संनिहिते निधननिर्बन्धे प्रत्यक्षीभूय 'जलधेरधिष्ठातृदैवतमहमि'ति स्वं ज्ञापयन् मा भैषीरिति तामाश्वास्य प्रति नृपं प्राह–

२६०. विवाहयित्वा यः कन्यां कुलजां शीलमण्डिताम् । समदृष्ट्या न पश्येत स पापिष्ठतरः स्मृतः ॥

इति त्वामवज्ञाकारिणं प्रलयकालमुक्तमर्यादया सान्तःपुरपरीवारं दुर्वारवारिणि[4] मज्जयिष्यामि' †इति भयभ्रान्ताया अनुनयपराया 'अयं मदीय एव सूनुः, तदस्मै साम्राज्योचितां नव्यां भुवमह्नैव दास्यामी'†त्यभिधाय क्वचित् क्वचित् पयांस्यपहृत्यान्तरीपान् प्रादुश्चकार । तानि सर्वाण्यपि लोकेषु कौङ्कणानीति प्रसिद्धानि[5] ।

॥ इति कौङ्कणोत्पत्तिप्रबन्धः ॥

२१८) अथ पाटलीपुत्रे पत्तने वराहनामा कश्चिद्ब्राह्मणाङ्गभूः[6] आजन्म निमित्तज्ञानश्रद्धालुर्दुर्गतत्वादसून् रक्षितुं पशून् चारयन् क्वापि शिलातले लग्नमालिख्याकृततद्विसर्जनः प्रदोषकाले गृहमुपेतः । कृतसमयोचितकृत्यो निशीथकाले भोजनायोपविष्टो लग्नविसर्जनमनुस्मृत्य निरातङ्कवृत्त्या यावत्[7]तत्र याति तावत्तदुपरि पारीन्द्रमप्युपविष्टमवगणय्य तदुदराधोभागे पाणिं प्रक्षिप्य लग्नं विमृजन् सिंहरूपमपहाय प्रत्यक्षीभूय रविरेव 'वरं वृणु' इत्युवाच । अथ 'समस्तनक्षत्रग्रहमण्डलं दर्शये'ति वरं प्रार्थयमानः स्वविमानेऽधिरोप्य तत्रैव नीतो वत्सरान्तं यावद् ग्रहाणां वक्रातिचारोदयास्तमनादीन् भावान् प्रत्यक्षरूपान् परीक्ष्य पुनरिहायातो मिहिरप्रासादाद्वराहमिहिर इति प्रसिद्धाख्यः श्रीनन्दनृपतेः परमां मान्यतां दधानो वाराहीसंहितेति नवं ज्योतिःशास्त्रं रचयांचकार ।

२१९) अथ कदाचित्स निजपुत्रजन्मावसरे निजगृहे घटिकां निवेश्य तया शुद्धं जन्मकाललग्नं निर्णीय जातकग्रन्थप्रमाणेन ज्योतिश्चक्रे । स्वयं प्रत्यक्षीकृतग्रहचक्रज्ञानबलात्तस्य सूनोः संवत्सरशतप्रमाणमायुर्निर्णीतवान् । तन्महोत्सवे[8] चैकं श्रीभद्रबाहुनामानं जैनाचार्यं[9] कनीयांसं सोदरं विहाय नृपप्रभृतिकः स कोऽपि नास्ति य उपायनपाणिस्तद्धाम[10] न जगाम । स निमित्तविज्जिनभक्ताय

1 B ०निकरैः । †–† एतदन्तर्गतं वाक्यं D पुस्तके पतितम् । 2 D व्यापृता । 3 P प्रयोजनावसरे । 4 D नास्त्येतत्पदं । † एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः D पुस्तके पतितः । 5 P प्रसिद्धिमापुः । 6 P ब्राह्मणसुत० । 7 D 'यावद्' नास्ति । 8 D जन्ममहो० । 9 P जैनमुनिं । 10 D 'तद्धाम' नास्ति ।

शकटालमन्त्रिणे तेषां सूरीणामनागमनकारणमुपालम्भगर्भितं जगौ । तेन ज्ञापितास्ते महात्मानः सम्पूर्णश्रुतज्ञानकरतलकलितामलकफलवत्कालत्रयास्तस्य शिशोर्विंशतितमे दिने बिडालान्मृत्युमुपदिशन्तो वयं नागता इति 'तेषामुपदेशभूतां वाचं वराहमिहिराय निवेदितायां,' ततःप्रभृति निजकुटुम्बं तस्य शावस्यावश्यकीं तां विपदं निरोद्धुं बिडालरक्षाय[1] शतश उपायान् कुर्वन्नपि निर्णीते दिने निशीथेऽकस्माद्वालस्य मूर्ध्नि पतितयाऽर्गलया स बालः परलोकमवाप । ततस्तच्छोकशङ्कुमुदिधीर्षवः श्रीभद्रबाहुगुरवो यावत्तद्गेहमायान्ति तावत्तद्गृहाङ्गणे समस्तनिमित्तशास्त्रपुस्तकान्येकत्र पिण्डीकृतानि संनिहितदहनान्यालोक्य, किमेतदिति पृष्टः सांवत्सरः समत्सरस्तान् जैनमुनीनुपालम्भयन् 'एतानि रोहन्मोहसन्दोहकारीणि धक्ष्याम्येव, यैरहमपि विप्रलब्धः'तेनेति सनिर्वेदमुदिते, तैः श्रुतज्ञानबलात्तज्जन्मलग्नं सम्यक् तस्मै निवेद्य सूक्ष्मेक्षिकया तद्ग्रहबले ज्ञापिते विंशतिदिनान्येव भवन्ति । इत्थं शास्त्रविरक्तावपनीतायां स ज्योतिषिक इति जगौ–'यद्भवद्भिर्बिडालान्मृत्युरुपदिष्टस्तदेव व्यभिचरितमि'ति' तेनाभिहिते तामर्गलां तत्रानाय्य तत्रोत्कीर्णं बिडालं दर्शयन्तो 'भवितव्यताव्यत्ययः किं कदापि भवति?' इति महर्षिभिरभिदधे ।

२६१. कस्मात्र च रुद्यते गतः कः कायोऽयं परमाणवोऽनपायाः ।
संस्थानविशेषनाशजन्मा शोकश्चेत् कदापि मोदितव्यम्* ॥

२६२. अभावप्रभवैर्भावैर्मायाविभवभावितैः । अभावनिष्ठापर्यन्ते सतां न क्रियते भ्रमः ॥

इत्युक्तियुक्तिभ्यां प्रबोध्य ते महर्षयः स्वं पदं भेजुः । इत्थं बोधितस्यापि तस्य मिथ्यात्वधत्तूरितस्य कनकभ्रान्तिरिव तेषु मत्सरोच्छेकात्तद्भक्तानुपासकानभिचारकर्मणा कांश्चन पीडयन् कांश्चन व्यापादयन् तद्वृत्तान्तं तेभ्यो ज्ञानातिशयादवधार्योपसर्गशान्तये 'उवसग्गहरं पासं' इति नूतनं स्तोत्रं रचयांचक्रुः ।

॥ इति वराहमिहिरप्रबन्धः ॥

२२०) अथ ढङ्काभिधाने भूभृति रणसिंहनामा राजपुत्रस्तन्नन्दनां भूपलनाम्नीं सौन्दर्यनिर्जितनागलोकबालामालोक्य जातानुरागतया तां सेवमानस्य वासुकेः सुतो नागार्जुननामा समजनि । तेन पातालपालेन सुतस्नेहमोहितमनसा सर्वासामपि महौषधीनां फलानि मूलानि दलानि च भोजितः ततस्तत्प्रभावान्महासिद्धिभिरलङ्कृतः सिद्धपुरुषतया पृथ्वीं विगाहमानः शातवाहननृपतेः कलागुरोर्गरीयसीं प्रतिष्ठामुपागतोऽपि गगनगामिनीं विद्यामध्येतुं श्रीपादलिप्तपुरे पालित्ताचार्यान् सेवमानो मानोज्झितमतिर्भोजनावसरे पादलेपप्रमाणेन गगनोत्पतितान् श्रीअष्टापदप्रभृतीनि तीर्थानि नमस्कृत्य तेषां स्वस्थानमुपेयुषां पादौ प्रक्षाल्य ज्ञातसप्तोत्तरशतसंख्यमहौषधीनामास्वाद-वर्ण-घ्राणादिभिर्निर्णीय च गुरूनवगणय्य कृतपादलेपः कुक्कवाकुकलापिवदुत्पतन् अवटतटे निपतंश्च तद्व्रणश्रेणिजर्जरिताङ्गो गुरुभिः किमेतदित्यनुयुक्तो यथावद्वृत्तान्तं निवेदयन्, तच्चातुर्यचमत्कृतचेतोभिस्तच्छिरसि पद्महस्तप्रदानपूर्वकं 'पाटीकतन्दुलोदकेन तानि भेषजान्यभ्यज्य

1-1 एतदन्तर्गतपाठस्थाने P 'तेषामुपदेशो वराहमिहिराय मंत्रिणा निवेदिते' एष पाठः । 1 BP बिडालबालरक्षायत्नं । 2 BP नास्ति । 3 D नास्ति 'रोहन्मोह' । 4 D 'शास्त्र' नास्ति । 5 D व्यभिचारीति । * एतत्पद्यं गद्यरूपेण लिखितं D पुस्तके । 6 D व्यान्धारितस्य । 7 'तेषु' स्थाने D 'तथात्राप्युन्०' । 8 D 'उपासकान्' नास्ति । 9 P ०नाम्निकां । 10 P लोकाङ्गनां । 11 B तस्य वासुकेः । 12 P महीं । 13 P महतीं । 14 AD पादलिप्त० । 15 'मानोज्झित' स्थाने D 'मद' शब्दः । 16 P प्रमस्य । 17 D उत्तटावटे ।

तत्पादलेपाद् गगनगामी नृपो' इति तदनुग्रहादेकां सिद्धिमासाद्य 'श्रीपार्श्वनाथपुरतः साध्यमानो रसः समस्तलक्षणोपलक्षितपतिव्रतावनितामर्द्यमानः कोटिवेधी भवती'ति तन्मुखादाकर्ण्य च; यत्पुरा समुद्रविजयदाशार्हेण त्रिकालवेदिनः श्रीनेमिनाथमुखात् [श्रुत्वा] महातिशायिनः श्रीपार्श्वनाथस्य बिम्बं रत्नमयं निर्माप्य श्रीद्वारवत्यां प्रासादे न्यस्तम्, द्वारवतीदाहानन्तरं समुद्रेण प्लावितायां तस्यां पुरि, तत्र समुद्रे तस्मिन्बिम्बे तथैव विद्यमाने कान्तीनगरीसांयात्रिकस्य धनपतिनाम्नो यानपात्रे देवतातिशयवशात् स्खलिते, इह जिनबिम्बमस्तीति दिव्यभाषया निर्णीय नाविकांस्तत्र प्रक्षिप्य सप्तसंख्यैरामतन्तुभिः सन्दानितमुद्धृत्य निजायां पुरि चिन्तितातीतलाभात् स्वयंकृतप्रासादे न्यस्तवान् । तत्सर्वातिशायिबिम्बं नागार्जुनः स्वसिद्धरससिद्धयेऽपहृत्य सेढीतटिन्यास्तटे विन्यस्य तत्पुरतो रससाधनाय श्रीशातवाहनस्यैकपत्नीं' चन्द्रलेखाभिधानां प्रतिनिशं सिद्धव्यन्तरसान्निध्यात्तत्रानीय रसमर्दनं कारयति स्म। इत्थं नृपो भूपस्तत्र गतायाते सति बन्धुबुद्ध्या सा नागार्जुनपार्श्वे तदौषधीनां मर्दनहेतुं पृच्छन्ती सोऽपि साफल्यतया कोटिवेधरसस्य यथावस्थितं वृत्तान्तं निवेदयन्, तस्याश्च वचनगोचरातीतं सत्कारं कुर्वाणोऽनन्यसामान्यं सौजन्यं प्रवर्द्धयामास। अथ कदाचित्तया निजाङ्गजयोरस्मिन् वृत्तान्ते निवेदिते तौ तद्लुब्धौ राज्यं परित्यज्य नागार्जुनसमलङ्कृतां भुवमागतौ केनापि तस्य रसस्य जिघृक्षया छद्मवेषौ यत्र नागार्जुनो भुङ्क्ते तत्र तामर्थदानेन परितोष्य रसवार्त्तां पृच्छतः। सा च तन्निदेशवशात् अलवणां रसवतीं कुर्वती' षण्मास्यां व्यतीतायां तस्मिन् क्षारमिति रसवतीं दूषयति सति, इङ्गितैः सिद्धं रसमिति ताभ्यां निवेदितवती। अथ प्रतिपन्नभागिनेयाभ्यां ताभ्यां रसग्रसनलालसाभ्यां वासुकिना निर्णीतदर्भाङ्कुरमृत्युमिति परम्परया ज्ञाततत्त्वाभ्यां तेनैव शस्त्रेण तथैव स निजघ्ने। स रसः सुप्रतिष्ठितत्वाद्देवताधिष्ठानाच्च तिरोहितो बभूव। यत्र स रसः स्तम्भितस्तत्र स्तम्भनकाभिधानं श्रीपार्श्वनाथतीर्थं रसात्प्रख्यातिशायि सकललोकाभिलषितफलप्रदम्। ततः कियता कालेन तद्बिम्बं पवनमार्गपर्ज भूम्यन्तरितं बभूव।

२३१) अथ श्रीशासनदेवतादेशात् षण्मासीं यावदाचाम्लानि निर्मापितया' निर्माण कलिनामयोगेन नवाङ्गवृत्तौ निर्वृत्तायां श्रीअभयदेवसूरीणां' वपुषि प्रादुर्भूते प्रभूतमङ्गुलिरोगे पातालपालः श्रीधरणेन्द्रनामा सितसर्परूपमास्थाय महद्गुणेन्द्रिया जिह्वया प्रसादं निरामयीकृत्य तदीयं श्रीमदभयदेवसूरीणामुपदिदेश। श्रीसंघेन सह समागतास्तत्र ते सूरयः प्रत्यक्षां सुरभिं निरीक्ष्य गोपालबालैर्निवेदितायां भुवि नवं द्वात्रिंशतिकालयमपालं" कुर्वन्तस्तद्भूमिखननात् पुरः तत्र श्रीपार्श्वनाथबिम्बं प्रादुरभूत्। देवतादेशेन च सद्वृत्तं गोप्यमेव निर्ममे" निर्ममे।

२३२. "ज्ञानार्डीरि" चतुःसप्तसदृशो देवानते योऽर्चितः स्वामी रामयादुवेशादिभिः पातालगमने" ततः।
कान्त्यामिन्नपधनेश्वरेण महता नागार्जुनेनार्चितः स्तम्भनकपुरे स नरतः पार्श्वप्रभो जिनः॥

॥ इति नागार्जुनोत्पत्ति-स्तम्भनकतीर्थावतारप्रबन्धः ॥

२२२) अथ पुराऽवन्त्यां पुरि कश्चिद्विप्रः पाणिनिव्याकरणोपाध्यायतां कुर्वाणः सिप्रासरित्यान्तवर्तिचिन्तामणिगणेशप्रणामगृहीताभिग्रहः, छात्रैः फक्किकाव्याख्यानप्रश्नादिभिरुद्वेजितः कदाचित् प्रावृषि तस्या सरितः पूरे प्रसर्पति कृतझम्पापातः, दैवात् सङ्घटितवृक्षस्तन्मूले कराचलम्बनस्तत्तीरमासाद्य प्रत्यक्षं परशुपाणिं प्रणमन्, तेन तत्साहसानुष्ठानेन वरं वृणीष्वेत्यादिष्टः, पाणिनिव्याकरणस्योपदेशं प्रार्थयमानस्तेन तथेति प्रतिपद्य खटिकार्पणपूर्वं* प्रतिदिनं व्याकरणे व्याख्यायमाने षण्मासीपर्यन्ते व्याकरणे समर्थिते सति लम्बोदरं निर्विलम्बमनुज्ञाप्य तत्प्रथमादर्शं सहादाय तां पुरीं प्रविश्य कस्यापि पुरस्य स्थण्डिले निषण्ण एव सुष्वाप । ततः प्रत्यूषे प्रेष्याभिस्तं तथावस्थितं प्राप्य विपणिरमणी तद्वृत्तान्तं ज्ञापिता सती ताभिरेव तं समानीय प्रेङ्खोलपल्यङ्के सुप्तः । अहोरात्रत्रयान्ते किञ्चित्त्यक्तनिद्रश्चित्रशालादिचित्रं चित्रकारि पश्यन् स्वर्लोकसमुत्पन्नमात्मानं मन्यमानस्तया पणहरिणीदृशा ज्ञापितवृत्तान्तः स्नानपानभोजनादिभिर्भक्तिभिः परितोषितो नृपसभायां समुपेतः, पाणिनिव्याकरणं यथावस्थितं व्याचक्षाणो नृपप्रभृतिपण्डितैरशेषैः सत्क्रियमाणस्तदुपात्तं सर्वस्वं तस्यै समर्पयामास ।

२२३) अथ[1] तस्य क्रमेण चतुर्णां वर्णानां स्त्रियश्चतस्रः प्रिया अभवन् । तथा क्षत्रियाङ्गजः श्रीविक्रमार्कः, शूद्रीसुतो भर्तृहरिः, स हीनजातित्वात् भूमिगृहस्थो गुप्तवृत्त्याऽध्याप्यते । अपरे त्रयः प्रत्यक्षाः पाठ्यन्ते । एवं भर्तृहरिरज्जुसङ्केतेन[2] तेषामध्याप्यमानानाम्—

२६४. दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य । [यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति[†] ॥]

इति पाठ्यमाने[3] भर्तृहरिरज्जुसङ्केतेऽसञ्जायमाने प्रत्यक्षच्छात्रैस्त्रिभिरुत्तरार्द्धं पृच्छ्यमाने स कुपितः उपाध्यायः—'रे वेश्यासुत । अद्यापि[4] रज्जुसङ्केतं न कुरुषे[5] इत्याक्रुष्टः[6] प्रत्यक्षीभूय शास्त्रकारं निन्दन्—

२६५. आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः । गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥

इति पाठाद्वित्तस्यैकामेव गतिं मेने । तेन भर्तृहरिणा वैराग्यशतकादिप्रबन्धा भूयांसश्चक्रिरे ।

॥ इति भर्तृहरि-उत्पत्तिप्रबन्धः ॥

२२४) अथ श्रीधारायां मालवमण्डनस्य श्रीभोजराजस्यायुर्वेदवेदी कश्चिद् वाग्भटनामाऽऽयुर्वेदोदितानि कुपथ्यानि विधाय तत्प्रभावात्[7] रोगान् प्रादुःकृत्य पुनस्तन्निग्रहाय सुश्रुतविश्रुतैर्भेषजैः पथ्यैश्च तान्निगृह्य, नीरमन्तरेण कियत्कालं जीव्यते इति परीक्षार्थं तत्परिहृत्य, दिनत्रयान्ते पिपासापीडिततालूष्ठपुट इत्यपाठीत्—

२६६. क्वचिदुष्णं क्वचिच्छीतं क्वचित्क्वथितशीतलम् । क्वचिद्भेषजसंयुक्तं वारि क्वापि न वारितम् ॥

इति पारिसत्कारकारि वाक्यमिदमपाठीत् । तेन निजानुभूतो वाग्भटनाम्ना प्रसिद्धो ग्रन्थो[8] विदधे[8] । तस्य जामाताऽपि लघुवाहडः श्वशुरेण वृद्धवाहडेन सह राजमन्दिरे प्रयातः । प्रत्यूषकाले श्रीभोजस्य शरीरचेष्टितं[8] विलोक्य वृद्धवाहडेनाथ नीरुजो यूयमित्युक्ते लघोर्मुखभङ्गं विलोक्य श्रीभोजेन कारणं पृष्टः स 'स्वामिनः शरीरेऽद्य निशाशेषे कृष्णच्छायाप्रवेशसूचितो राज-

* B प्रत्यन्तरे खटिकया वर्णं पुटि माया। 1 P बीजस्य। 2 P नास्ति। 3 D °रज्जुसंकेतेन। † AD भादर्शेऽस्य श्लोकस्य [illegible] अस्याः च कथने। ... [illegible] पंक्तिः परिवर्त्य A आदर्शे। 4 D इत्याक्रुष्टः। A इत्यादिष्टः। 5 P [illegible]। 6 AD [illegible]। 7 AD [illegible]। 8 Da [illegible]।

यक्ष्मणः प्रवेशोऽभूदि'ति देवतादेशेनातीन्द्रियं भावं विज्ञपयन्, तत्कलाकलापचमत्कृतेन राज्ञा तस्य व्याधेः प्रतीकारतयानुयुक्तो लक्षत्रयमूल्यं रसायनं निवेदयन्, षड्भिर्मासैस्तावता द्रव्यव्ययेन परमादरेण च तस्मिन् रसायने सिद्धे, प्रदोषसमये तद्रसायनं काचमये कुम्पके विन्यस्य नरेन्द्रपल्यङ्के निधाय प्रत्यूषे देवतार्चनानन्तरं तद्रसायनमत्तुमिच्छुः, रसायनपूजायद्दीपनादनु सज्जीकृतायां समग्रसामग्र्यां स लघुरगदंकारी केनापि कारणेन तं काचकुम्पकं भूमावास्फाल्य बभञ्ज । आः किमेतदिति राज्ञोक्ते रसायनपरिमलबलादेव[1] पलायिते व्याधौ व्याधेरभावाद्धातुक्षयकारिणानेन[2] वृथा स्थापितेनालम्, यदद्य शर्वरीविरामे सति सा पूर्वोक्ता कृष्णा छाया प्रभोर्वपुरपास्य दूरं गतैव ददृशे, इत्यर्थे देवः प्रमाणमि'ति तदीयसत्यप्रत्ययेन परितोषितो राजा दारिद्र्यद्रोहि पारितोषिकं प्रसादीचकार ।

२२५) अथ ते सर्वे व्याधयस्तेन चिकित्सितेन भूतलादुच्छेदिताः, स्वर्लोकेऽश्विनीकुमारवैद्ययोः स्वपराभवं निजगदुः । अथ तौ तया प्रवृत्त्या चित्रीयमाणमानसौ नीलवर्णविहङ्गमयुग्मीभूय व्याधिप्रतिभटस्य लघुवाग्भटस्य धवलगृहवातायनतले वलभ्यां निविष्टौ 'कोऽरुक' शब्दं चक्रतुः । अथ स आयुर्वेदवेदी नेदीयांसं तदीयं शब्दं साभिप्रायं चेतसि चिरं विचिन्त्य–

२६७. अशाकभोजी घृतमत्ति योऽन्धसा[6] पयोरसान् शीलति नातिपोऽम्भसाम् ।
अधुक् विरुद्[8] वातकृतां[9] विदाहिनां चलत्रभुक्[10] जीर्णभुगल्पशीररुक्[11] ॥

इति[12] भणितानन्तरं किञ्चिच्चमत्कृतचित्तौ तौ प्रयातौ । पुनर्द्वितीयदिने द्वितीयवेलायां तादृक्पक्षिरूपं विधाय प्राक्तनशब्दं कुर्वाणौ समायातौ वैद्यगृहे । पुनस्तयोर्वचः[14]–

२६८. वर्षासु[15] यस्तिष्ठति शरदि पिबति हेमन्तशिशिरयोरत्ति ।
माद्यति मधुनि ग्रीष्मे स्वपिति भवति खग ! [नरः] सोऽरुक् ॥

इति भणितानन्तरं पुनरेव गतौ । 'तृतीयदिने योगीन्द्ररूपं कृत्वा तद्गृहे समागतौ' । तयोर्वचः–

२६९. अभूमिजमनाकाशमहृष्टान्तर्मवारिजम् । सम्मतं सर्वशास्त्राणां वद वैद्य ! किमौषधम् ? ॥

पुनर्वैद्यवचः–

२७०. अभूमिजमनाकाशं पथ्यं रसविवर्जितम् । पूर्वाचार्यैः समाख्यातं लङ्घनं परमौषधम् ॥

ततो निजाभिप्रायसदृशप्रत्युत्तरत्रयदानेन[16] चमत्कृतचित्तौ वैद्यौ प्रत्यक्षीभूय यथाभिमतं वरं वितीर्य स्वस्थानं भेजतुः ।

॥ इति वैद्यवाग्भटप्रबन्धः ॥

२२६) अथ धामणउलिग्रामे[18] वास्तव्यो धाराभिधानः[19] कोऽपि नैगमः श्रिया वैश्रवणस्पर्द्धिष्णुः सङ्घाधिपत्यमासाद्य मायद्द्रविणव्ययव्यतिकरजीवितजीवलोकः पञ्चभिरङ्गजैः समं श्रीरैवताचलोपत्यकायां विहितावासः, दिगम्बरभक्तेन केनापि गिरिनगरराज्ञा[20] सिताम्बरभक्त इति स स्खल्यमानस्तद्वयोः सैन्ययोः समरसंरम्भे प्रवर्त्तमाने सति असमानेन रणरसेन युध्यमाना देवभ-

1 D परिमलादेव । 2 P 'अनेन' नास्ति । 3 D 'लघु' नास्ति । 4 D तवः । 5 A अशाक० । 6 A घृतमत्तयो-ऽन्धसा । 7 D नास्ति योऽम्भसा । 8 D विभुक् । 9 D वातकृतां; A वातकृतां । 10 P चलत्रभुक् । 11 D ०स्पमारभुक् । 12 D इत्यभाणि । 13 D 'किञ्चित्' नास्ति । 14 D ०वचः प्रतिवचः । 15 P वर्षां । १-१ एतदन्तर्गता पंक्तिः P प्रतौ पतिता । 16 D भद्रत्रयम० । 17 इदं पदं D पुस्तके मूलग्रन्थे नास्ति । 18 A धारणउलि० । 19 A धाराख्य; P नास्ति । 20 D ०राजेन ।

स्यातिशयवल्लभतया प्रोत्साहितसाहसा विपद्य ते पञ्च पुत्राः पञ्चापि क्षेत्रपतयो बभूवुः । तेषां क्रमेण नामानि–कालमेघः १, मेघनादः २, भैरवः ३, एकपदः ४, त्रैलोक्यपादः ५–इति बभूवुः[1] । तीर्थप्रत्यनीकं पञ्चतां नयन्तस्ते पञ्चापि गिरेः परितो विजयन्ते स्म ।

२२७) अथ तत्पिता धाराभिधान एक एवावशिष्टः कन्यकुब्जदेशे गत्वा श्रीबप्पभट्टिसूरीणां व्याख्याक्षणप्रक्रमे श्रीसङ्घस्याज्ञां दत्तवान्–'यद्रैवतकतीर्थे दिगम्बराः कृतवसतयः सिताम्बरान् पापपिण्डरूपान् परिकल्प्य पर्वतेऽधिरोढुं न ददति;[2] अतस्तान् निर्जित्य तीर्थोद्धारं कृत्वा निजदर्शनप्रतिष्ठापरैर्व्याख्याक्षणो विधेय' इति तद्वचनेन्धनप्रोज्ज्वलितप्रतिघ[3]प्रज्वलनादामनृपतिं सहादाय तेन समं तां भूधरधरामवाप्य[4] सप्तभिर्दिनैर्वादस्थलेन दिगम्बरान् पराजित्य श्रीसङ्घसमक्षं श्रीअम्बिकां प्रत्यक्षीकृत्य 'इक्कोवि नमुक्कारो०' 'उज्जिन्तसेलसिहरे०' इति[5] तदुक्तां गाथामाकर्ण्य सिताम्बरदर्शने स्थापिते सति पराभूता दिग्वसना बलानकमण्डपात् झम्पापातं वितेनुः ।

॥ इति क्षेत्राधिपोत्पत्तिप्रबन्धः ॥

२२८) अथ कदाचिद्भवान्या भव इति पृष्टः–'यत्त्वं कियतां कार्पटिकानां राज्यं ददासि?' इति तद्वाक्यादनु 'यो लक्षसङ्ख्यानामपि एक एव वासनापरस्तस्यैव राज्यमहं वितरामी'ति प्रत्ययदर्शनाय गौरीं पङ्कमग्नां जरतीं गवीं विधाय स्वयं नररूपेण तटस्थः पङ्कात्तामुद्धर्तुं पान्थानाकारयन्[6] तैरासन्नसोमेश्वरदर्शनोत्कैरुपहस्यमानः कृपावता केनापि पथिकवृन्देन तस्यामुद्धर्तुमारब्धायां सिंहरूपेण शिव एव तान् त्रासयन् कश्चिदेक[7] एव पथिको मृत्युमप्याहत्य तस्या गोः समीपं नौज्झत् । स एव राज्यार्ह इति पृथक् कृत्य गौर्या दर्शितः ।

॥ इति वासनाप्रबन्धः ॥

२२९) अथ कश्चित्कार्पटिकः सोमेश्वरयात्रायां व्रजन् पथि लोहकारौकसि[8] प्रसुप्तः । तस्य लोहकारभार्या पतिं निहत्य कृपाणिकां कार्पटिकशीर्षे निदधती बुम्बारवमकरोत् । आरक्षकेण तत्रागत्य तस्यापराधिनः करौ छिन्नौ । स सदैव दैवस्योपालम्भनपरः निशि प्रत्यक्षीभूयेत्युक्तः– 'शृणु, त्वं स्वं प्राग्भवम्[9]–कदाचिदजा[10] केनापि एकेन सोदरेण पाणिभ्यां श्रवणयोर्धृता, तदपरेण मारिता । ततः सा अजा मृत्वा इयं योषिदजनि । येन व्यापादिता स साम्प्रतं पतिरभूत् । यत्त्वया कर्णौ विधृतौ तदा तव समागमे जाते सति करौ छिन्नौ । तत्कथं ममोपालम्भः'? ।

॥ इति कृपाणिकाप्रबन्धः ॥

२३०) पुरा शङ्खपुरनगरे श्रीशङ्खो नाम नृपतिस्तत्र नामकर्मभ्यां धनदः श्रेष्ठी । स कदाचित्करिकर्णतालतरलां कमलां विमृश्योपायनपाणिर्नृपोपान्तमुपेत्य तं परितोष्य च तत्प्रसादीकृतायां भुवि भ्रातृभिर्नन्दनैः सह समालोच्य सुलग्ने जिनप्रासादमचीकरत् । तत्र प्रतिष्ठितबिम्बानां स्थापनां[11] विधाय, तस्य प्रासादस्य समारचनाय बह्वन्यायद्वाराणि रचयन्, तत्सपर्यापर्याकुलतया नानाविधकुसुमवृक्षावलीसमलङ्कृतमभिराममारामं च निर्माप्य, तच्चिन्तकेषु गोष्ठिकेषु[12] नियुक्तेषु, उदिते प्राक्तनान्तरायकर्मणि क्रमात् संह्रियमाणसम्पदधमर्णतया तत्र मानस्थानिमाकलय्यान-

1 P इत्यस्य । 2 D पर्वताधिरुह्याभेच्छन्ति । 3 'प्रतिघ-' स्थाने D 'प्रताप-' । 4 P आगत्य । 5 D इत्यादि । 6 D तत्पार्श्वमुद्धर्तुमाकारयत् । 7 P कोऽप्येक । 8 P ०कारगृहे । 9 P मांसासिनं । 10 D नास्ति । 11 D त्वया मारणे । 12 A ०दजा० । 13 P नास्ति । 14 D नास्ति ।

तिदूरवर्त्तिनि क्वापि ग्रामे कृतवसतिर्नगरयातायातेन सुतोपात्ताजीविकः कियन्तमपि कालमतिवाहितवान् । अथान्यस्मिन्नवसरे सन्निहिते चतुर्मासकपर्वणि तत्र यायिभिः सुतैः समं स धनदः शङ्खपुरं प्राप्य निजप्रासादसोपानमधिरोहन्, निजाराममुष्पलाविकयोपायनीकृतपुष्पचतुःसरिकः परमानन्दनिर्भरस्ताभिर्जिनेन्द्रमभ्यर्च्य, निशि गुरूणां पुरः स्वं दौस्थ्यममन्दं निन्दन्, तैः प्रदत्तकपर्दियक्षाकृष्टिमन्त्रोऽन्यदा कृष्णचतुर्दशीनिशीथे तमेव मन्त्रमाराधयन्, प्रत्यक्षीकृतात् कपर्दियक्षात् गुरूपदेशतश्चतुर्मासकावसरे पुष्पचतुःसरिकपूजापुण्यफलं देहीति प्रार्थयन्, तेन[1] 'एकस्यापि पूजाकुसुमस्य पुण्यफलं सर्वज्ञेन विना नाहं वितरीतुं प्रभूष्णुरि'ति; किं तु कपर्दियक्षस्तस्य साधर्मिकस्यातुल्यवात्सल्य[2]सम्बन्धे तद्धाम्नि चतुर्षु कोणेषु सुवर्णपूर्णान् चतुरः कलशान् निधीकृत्य तिरोदधे । स प्रातः स्वसद्मनि समागतः धर्मनिन्दा[3]पराणां नन्दनानां तद्द्रव्यं समर्पयामास । तेऽपि निर्धनधात् पितुः पार्श्वे तद्विभवलाभहेतुं पृच्छन्तस्तेषां हृदि धर्मप्रभावाविर्भावाय जिनपूजाप्रभावतः परितुष्टेन कपर्दियक्षेण प्रसादीकृतां तां संपदं निवेदयामास । तेऽपि सम्पन्नसम्पत्तयस्तदेव जन्मनगरं समाश्रित्य निजधर्मस्थानसमारचनपरा जिनशासनप्रभावनां विविधां कुर्वन्तो वैधर्मिकाणामपि मनस्सु जिनधर्मं निश्चलीचक्रुः ।

॥ इति श्रीजिनपूजायां[4] धनदप्रबन्धः ॥

॥ इति श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिते[5] प्रबन्धचिन्तामणौ विक्रमादित्योदितपात्रविवेचनप्रमुखं जिनपूजायां[7] धनदप्रबन्धपर्यन्तवर्णनो नाम प्रकीर्णकाभिधानः पञ्चमः प्रकाशः समर्थितः[8] ॥

†अस्मिन्प्रकाशे ग्रन्थसंख्या ७७४ । समस्तग्रन्थे प्रतिश्लोकं ग्रन्थाग्रं ३१५० ॥

---

1 D नास्ति । 2 P अनुच्छ° । 3 D धर्मदान° । 4 AD वीतराग° । 5 P °पार्याविःकृते । 6 P प्रभृति तथा । 7 A अर्हदर्चायां । 8 P नास्ति । † P प्रतावेवेयं पंक्तिरंष्टा ।

ग्रन्थकारस्य प्रशस्तिः ।

दुःप्रापेषु[1] बहुश्रुतेषु गुणवद्वृद्धेषु च प्रायशः
शिष्याणां प्रतिभाभियोगविगमादुच्चैः श्रुते सीदति ।
प्राज्ञानामथ भाविनामुपकृतिं कर्तुं परामिच्छता
ग्रन्थः सत्पुरुषप्रबन्धघटनाचक्रे सुधासत्रवत् ॥ १ ॥

प्रबन्धानां चिन्तामणिरयमुपात्तः करतले
समन्तस्य भ्रान्तिं रचयति चिरायोपनिहितः ।
हृदि न्यस्तः शस्तां सृजति विमलां कौस्तुभकलां
तदेतस्माद् ग्रन्थाद्भवति विबुधः श्रीपतिरिव ॥ २ ॥

यथाश्रुतं सङ्कलितः प्रबन्धैर्ग्रन्थो[2] मया मन्दधियापि यत्नात् ।
मात्सर्यमुत्सार्य[3] सुधीभिरेष प्रज्ञोडुरैरुन्नतिमेव नेयः ॥ ३ ॥

यावद्दिवि कितवाविव रविशशिनौ क्रीडतो ग्रहकपर्दैः ।
ग्रन्थस्तावन्नन्दतु सूरिभिरुपदिश्यमानोऽयम् ॥ ४ ॥

त्रयोदशस्वब्दशतेषु चैकषष्ट्यधिकेषु क्रमतो गतेषु ।
वैशाखमासस्य च पूर्णिमायां ग्रन्थः समाप्तिं गमितो मितोऽयम्* ॥ ५ ॥

❁ ❁ ❁ ❁

नृपश्रीविक्रमकालातीत† संवत् १३६१ वर्षे वैशाखसुदि‡ १५ रवावद्येह श्रीवर्द्धमानपुरे प्रबन्धचिन्तामणिग्रन्थः समर्थितः ।

॥ समाप्तोऽयं प्रबन्धचिन्तामणिग्रन्थः ॥

---

1 P दुःप्रापेषु। 2 P प्रबन्धग्रन्थो। 3 P वत्सरम्।

* D पुस्तके एतत्पद्यं टिप्पणीस्थाने उद्धृतं प्राप्यते, परं APDa आदर्शे मूलग्रन्थ एव समुपलभ्यते। † एतत्पदं P प्रतौ नास्ति। ‡ AD 'वैशाख' स्थाने 'फाल्गुन' शब्दो लिखितो न भ्रान्तिमूलक एव।

तिदूरवर्तिनि क्वापि ग्रामे कृतवसतिर्नगरयातायातेन सुतोपात्ताजीविकः कियन्तमपि कालमतिवाहितवान् । अथान्यस्मिन्नवसरे सन्निहिते चतुर्मासकपर्वणि तत्र यायिभिः सुतैः समं स धनदः शङ्खपुरं प्राप्य निजप्रासादसोपानमधिरोहन्, निजारामपुष्पलाविकयोपायनीकृतपुष्पचतुःसरिकः परमानन्दनिर्भरस्ताभिर्जिनेन्द्रमभ्यर्च्य, निशि गुरूणां पुरः स्वं दौस्थ्यममन्दं निन्दन्, तैः प्रदत्तकपर्दियक्षाकृष्टिमन्त्रोऽन्यदा कृष्णचतुर्दशीनिशीथे तमेव मन्त्रमाराधयन्, प्रत्यक्षीकृतात् कपर्दियक्षात् गुरूपदेशतश्चतुर्मासकावसरे पुष्पचतुःसरिकपूजापुण्यफलं देहीति प्रार्थयन्, तेन 'एकस्यापि पूजाकुसुमस्य पुण्यफलं सर्वज्ञेन विना नाहं वितरीतुं प्रभूष्णुरि'ति; किं तु कपर्दियक्षस्तस्य साधर्मिकस्यातुल्यवात्सल्यसम्बन्धे तद्धाम्नि चतुर्षु कोणेषु सुवर्णपूर्णान् चतुरः कलशान् निधीकृत्य तिरोदधे । स प्रातः स्वसद्मनि समागतः धर्मनिन्दापराणां नन्दनानां तद्द्रव्यं समर्पयामास । तेऽपि निर्बन्धात् पितुः पार्श्वे तद्विभवलाभहेतुं पृच्छन्तस्तेषां हृदि धर्मप्रभावाविर्भावाय जिनपूजाप्रभावतः परितुष्टेन कपर्दियक्षेण प्रसादीकृतां तां संपदं निवेदयामास । तेऽपि सम्पन्नसम्पत्तयस्तदेव जन्मनगरं समाश्रित्य निजधर्मस्थानसमारचनपरा जिनशासनप्रभावनां विविधां कुर्वन्तो वैधर्मिकाणामपि मनस्सु जिनधर्मं निश्चलीचक्रुः ।

॥ इति श्रीजिनपूजायां धनदप्रबन्धः ॥

॥ इति श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिते प्रबन्धचिन्तामणौ विक्रमादित्योदितपात्रविवेचनप्रमुखं जिनपूजायां धनदप्रबन्धपर्यन्तवर्णनो नाम प्रकीर्णकाभिधानः पञ्चमः प्रकाशः समाप्तः ॥

[1]अस्मिन्प्रकाशे ग्रन्थसंख्या ७७४ । समस्तग्रन्थे प्रतिश्लोकं ग्रन्थाग्रं ३१५० ॥

च्छुत्वा परिणेया नान्यथा' इति पीयूषकल्पां वाचमाकर्ण्य तस्याः सविधे सुबुद्धिनामदूतीं अनुकूल्य प्राहिणोत्। सा तां सप्रश्रयं प्रणिपत्य व्यजिज्ञपत्-'स्वामिनि राजकन्ये! धन्यतमासि; यत्त्वामष्टादशदेशसम्राट् समस्तसामन्तसीमन्तमणिमयूषमालालङ्कृतचरणकमलयुगलश्चौलुक्यचक्रवर्तीश उद्वोढुमभिलपति।' इति तद्वचसा मुखमोटनया नाटयन्ती सोपहासोल्लासं सैवं प्राह-"सखि! अलं नरकान्तप्राज्यसाम्राज्यप्राप्तिलोभनवार्ताविस्तरेण। परमनुकूलमेव दयितं समीहे। पुरुषा हि पराशया नानाविधानुरागवन्तः, तैः किं क्रियेत। यतः-

अनूढा[पि]वरं कन्या रूपयौवनवत्यपि। निष्कलेनानुकूलेन न क्रूपत्या विडम्बिता ॥ ३ ॥

परं शृणु,'-

निष्किञ्चनेन दयितेन' विवाहितानां यद् योषितां सुखपदं न तदीश्वरेण।
भागीरथीं वहति यां शिरसा गिरीशो लक्ष्मीपतिः स्पृशति नैव पुनः पदापि ॥ ४ ॥

'तथा वृथा जानीहि मद्वरणाभिलापम्, दुःपूरा मे प्रतिज्ञा महीमहेन्द्रेणापि।' इत्युक्तवतीं युवतीं सा प्राह-'सखि! भवत्या अहं प्रियसखी अनुपलपनकर्तव्याऽस्मि, तद् ब्रूहि स्वाभिमतमिति। अहं तथा सुबुद्धिर्नाम यथा पूरयामि ते प्रतिज्ञां तेन कुमारपालेन भूपालेने'ति उक्ता सा प्रोवाच'-

सत्यवाक् परलक्ष्मीमुक् सर्वभूताभयप्रदः। सदा स्वदारसन्तुष्टस्तुष्टो मे स पतिर्भवेत् ॥ ५ ॥
*[सु]दूरं दुर्गतेर्बन्धून् द्यूतान् सप्तपौरुषान्। निर्वासयति यश्चित्तात्स शिष्टो मे पतिर्भवेत् ॥ ६ ॥
मत्सोदरं सदाचारं संस्थाप्य हृदयासने। तदेकचित्तः सेवेत स कृती मे पतिर्भवेत् ॥ ७ ॥

इति तद्वाचमाकर्ण्य सकर्णा सा व्यजिज्ञपत्-'शृणु सुलोचने! तदाहं यथार्थनामा, यदा ते प्रतिज्ञां श्रीहेमसूरीन् पुरस्कृत्य समग्रजनसमक्षं तव प्रतिज्ञातानर्थान् समर्थ्य त्वां परिणयति, तदा मां विदग्धां स्वसखीं मन्येथा, अन्यथा न तृणायेति।' इत्युक्त्वा नृपसंसदि तस्या दुःपूरं सङ्गरमचकथत्। सोऽपि तदवज्ञाकुकूलानलेन (?) सन्तप्तस्वान्तः परामरतिं बिभ्राणः, तयैव सुबुद्ध्याभिदधे-'हे श्रीनिधे! विधेहि धीरताम्, किं दुष्करं पौरुषाधिष्ठितानाम्। तथा वास्ति निरपायस्थायः(?)। अनुसर्यतें हेमचन्द्रमहर्षिः, श्रूयन्ते तद्वचांसि।' इति तथा प्रेरितो विनयदत्तहस्तावलम्बो ययौ उपसूरिम्, ननाम तत्पदाम्बुजान्, पप्रच्छ तत्कनीसङ्गरवृत्तान्तम्। 'वत्स! पूरय तस्याः समीहितं चेत्तस्याः परिणिनीषाऽस्ति। निःसीमोन्नतये परिणेतारं भोक्ष्यते (?) एषा। यतः-

१-२ तथा ३-४ अङ्कान्तर्गतं वर्णनं A आदर्शे न विद्यते। 1 P कान्तेन तेन च किं च।

* पुष्पाकान्तर्गतवर्णनस्थाने A आदर्शे निम्नावतारितं संक्षिप्तमेव वर्णनं प्राप्यते। यथा-'इति तस्याः प्रतिश्रवं दुःश्रवमाकर्ण्य सा विप्रलब्धेदम्भमानिनी स्वं पदमुपगता स्वामिनं सर्वथा निराशमकरोत्। तदनु तं नृपं तद्वियोगाग्निप्रमाक्रान्तं श्रीहेमचन्द्रमहर्षिः कार्मिनं प्रतिबोधितवान्-यः कन्याया इतरलोकदुष्करः संगरः स तवाप्युभयलोकहितस्तदनुकूलताहेतुश्च। अतस्त्वमपि निर्मायतया निर्मीय स्वनि सीमोन्नतये सा सर्वथा परिणेतुमुचितैव। यतः-

धन्यां सतीमुत्तमवंशजातां लब्ध्वाधिकां याति न कः प्रतिष्ठाम्।
क्षीरोदकन्यां गिरिराजपुत्रीं गोपस्तथोग्रश्च यथाधिगम्य ॥

इति तेन महर्षिणा प्रतिबोध्य सानन्दोपाभिग्रहान् ग्राहयित्वा तस्याः सम्प्रदानं चक्रे। अथ सं० १२१६ मार्ग सुदि २ द्वितीयलग्ने बलवति संगलमङ्गबाल्ड्वो रत्नमयमालकृतो दक्षिणपाणिबद्धदानकङ्कणः सम्यक्त्वानुचरेण समं श्रद्धासहोदरया क्रियमाणलवणावतारणो गुरुभक्तिदेशविरति-जननीभ्यां दीयमानधवलमङ्गलः पौषधवेदमद्वारि अनुकम्पया कन्याजनन्या कृतप्रोङ्खणः श्रीमन्महादेवस्याईतः साक्षि स नृपतिरहिंसायाः पाणिं जग्राह।'

कुमारपालस्य अहिंसाया विवाहसम्बन्धप्रबन्धः।

नाभून्न भविता श्रीमद्धेमसूरिसमो गुरुः। श्रीमान् कुमारपालश्च जिनभक्तो महीपतिः ॥ १ ॥

अथ चौलुक्यचक्रवर्त्तिनः प्रभुप्रतिबोधान्मारिनिवारणप्रबन्धश्चैवम्–कस्मिन्नप्यवसरेऽणहिल्लपुरे श्रीकुमारपालदेवनामा नृपो वाहकेल्यां व्रजन् सौन्दर्यनिर्जितसुरसुन्दरीं बालेन्दुवदनां †सदाचरणप्रसरणशीलामपि मन्दचरणप्रचारां मुनिभिः समं क्रीडां कलयन्तीं सुकोमलवचःप्रपञ्चचमत्कारितत्रिजगज्जनां सस्मितमधुराकृतिं† कामप्येकां[1] बालिकां वीक्ष्य तद्रूपापहृतचित्तः सन्निहितप्रसादचित्तं 'केयमि'त्यादिशंस्तेनेति विज्ञपयांचक्रे–'अपारश्रुताकूपारपारदृश्वतया सञ्जातकलिकालसर्वज्ञप्रसिद्धेर्द्वादशभेदभिन्नतपस्समाराधनवशंवशीकृताष्टमहासिद्धेर्निःशेषभूपालमौलिमणिचुम्बितपादपीठस्य भगवतः श्रीहेमचन्द्रमहर्षेराश्रमवासिनी अहिंसानाम्नी कनीयम्। *अस्या याथातथ्यानुरूपनिरूपणविधौ न प्रगणन्ते स्मृतिपुराणवचांसि भूयांसि। किन्तु सकलजन्तुजातजनकायितश्रीजिननायकोपदिष्टस्पष्टसिद्धान्तोपनिषद्वासितहृदा केनापि मुनिपुङ्गवेन प्ररूपिताऽस्याः स्थितिरीतिः, नान्येनेति वाचमाकर्ण्य स्वसौधमध्यास्त नृपतिः। परं तस्याः स्वरूपावबोधाय तथाङ्गीकाराय च परमरसिको भाग्यसौभाग्यादि तदङ्गीकारेण कृतार्थं कर्तुकामो विवेकनाम्ना मित्रप्रवरेण आदिष्टवर्त्मना तेषामेव मुनीनां आश्रममासाद्य तत्पुरः क्रीडता सदाचारनाम्ना तद्भ्रात्रा[2] प्रख्याततदागमप्रवृत्तीन् समचित्तवृत्तीन् तान् श्रीहेमचन्द्रसूरिमहर्षीन् सहर्षं सभक्तियुक्तिकं क्षितितलमिलन्मौलिरानम्य तस्याः स्वरूपं पप्रच्छ। तैरथोचे–'शृणु नृपपुङ्गव !* त्रिजगदेकसार्वभौमस्य श्रीमदर्हद्धर्माधिपस्यानुकम्पामहादेव्याः कुक्षिसरसीराजहंसी निःसीमसौन्दर्या अहिंसाभिधेयं कनी। यस्मिंल्लग्ने सुतेयमजनि तल्लग्नग्रहबलं तत्पित्रा सर्वविदा एवमादिष्टम्–यदियमतीव पुण्यवती सुदतीशिरोमणिर्दुहिता। पुत्रजन्मोत्सवादप्यस्या जन्म श्लाघ्यम्। यतः–

श्रियाऽम्भोधिं विधिं वाचां देव्या व्यालोक्य विश्रुतौ। दुष्पुत्रदुःखान्नार्केन्दू तापमङ्कं च मुञ्चतः ॥ २ ॥

अतः क्रमाद् वर्द्धमाना कन्याऽसौ अनुरूपवराप्राप्त्या वृद्धकुमारी भूत्वा केनाप्यनुरूपेण महीमहेन्द्रेण सोपरोधमूढा सती सतीमतल्लिका तमुद्वोढारं च स्वं च जनकं च परामुन्नतेः कोटिं नेष्यतीति।§स चोद्वोढा लीलयैव महामोहमहीपं जित्वा परमानन्दभाजनं भवितेति' श्रुत्वा नृपोऽवादीत्–'प्रभो! अधुनार्हद्धर्मपुत्री श्रीयुष्मच्चरणकमलमुपासती श्रीयुष्मद्वचसैव परिणेतुं शक्येत नान्येन। ततः प्रसीदन्तु पूज्यपादाः, विषीदन्तु विषादाः, प्रवर्ततां महामोहजयः, प्राप्नोमि परमानन्दमि'ति वचःपर्यन्ते गुरुराह–'इयं वृद्धकुमारी। दुःपूरस्तस्याः सङ्गरः। तं सङ्गरं तस्या एव पार्श्वा-

† एतदन्तर्गतः पाठः A आदर्शे नास्ति। 1 'एका' नास्ति P। 2 P सन्निहित सदाचारनामानं तद्भ्रातरमिव।

* एतद्विशारकान्तर्गतं वर्णनं A आदर्शे नास्ति। तत्रैतत्स्थाने 'इति निशम्य नृपः कदाचित् तान् महर्षीन् मोदभाक् सभक्तिकं सौधमाकार्य तद्वृत्तान्तं पृष्टवांस्तैरूचे–' इत्येवरूपा संक्षिप्ता पंक्तिः।

§ एतदन्तर्गतं वर्णनं A आदर्शे नास्ति। तत्र तु अस्य स्थाने 'तद्वाक्यपर्यन्ते तद्रूपं तामनुद्दिश्य तस्याः सविधे मुमुक्षिणामी दूतीं प्राहिणोत्।' एतावती संक्षिप्ता परिविद्यते।

श्रुत्वा परिणेया नान्यथा' इति पीयूषकल्पां वाचमाकर्ण्य तस्याः सविधे सुबुद्धिनामदूतीं अनुकूल्य प्राहिणोत्[3] । सा तां सप्रश्रयं प्रणिपत्य व्यजिज्ञपत्-'स्वामिनि राजकन्ये ! धन्यतमासि; यत्त्वामष्टादशदेशसम्राट् समस्तसामन्तसीमन्तमणिमयूषमालालङ्कृतचरणकमलयुगलश्चौलुक्यचक्रवर्तीश उद्वोढुमभिलषति ।' इति तद्वचसा मुखमोटनया नाटयन्ती सोपहासोल्लासं सैवं प्राह-"सखि ! अलं नरकान्तप्राज्यसाम्राज्यप्राप्तिलोभनवार्ताविस्तरेण । परमनुकूलमेव दयितं समीहे । पुरुषा हि परुषाशया नानाविधानुरागवन्तः, तैः किं क्रियेत । यतः-

अनूढा[पि]वरं कन्या रूपयौवनवत्यपि । निष्कलेनानुकूलेन न कुपत्या विडम्बिता ॥ ३ ॥

परं शृणु,-

निष्किञ्चनेन दयितेन विवाहितानां यद् योषितां सुखपदं न तदीश्वरेण ।
भागीरथीं वहति यां शिरसा गिरीशो लक्ष्मीपतिः स्पृशति नैव पुनः पदापि ॥ ४ ॥

तथा वृथा जानीहि मद्वरणाभिलापम्, दुःपूरा मे प्रतिज्ञा महीमहेन्द्रेणापि ।' इत्युक्तवतीं युवतीं सा प्राह-'सखि ! भवत्या अहं प्रियसखी अनुपलपनकर्तव्याऽस्मि, तद् ब्रूहि स्वाभिमतमिति । अहं तथा सुबुद्धिर्नाम यथा पूरयामि ते प्रतिज्ञां तेन कुमारपालेन भूपालेने'ति उक्ता सा प्रोवाच'-

सत्यवाक् परलक्ष्मीमुक् सर्वभूताभयप्रदः । सदा स्वदारसन्तुष्टस्तुष्टो मे स पतिर्भवेत् ॥ ५ ॥

*[सु]दूरं दुर्गतेर्बन्धून् दूतान् सप्तपौरुषान् । निर्वासयति यश्चित्तात् स शिष्टो मे पतिर्भवेत् ॥ ६ ॥

मत्सोदरं सदाचारं संस्थाप्य हृदयासने । तदेकचित्तः सेवेत स कृती मे पतिर्भवेत् ॥ ७ ॥

इति तद्वाचमाकर्ण्य सकर्णा सा व्यजिज्ञपत्-'शृणु सुलोचने ! तदाहं यथार्थनामा, यदा ते प्रतिज्ञां श्रीहेमसूरीन् पुरस्कृत्य समग्रजनसमक्षं तव प्रतिज्ञातानर्थान् समर्थ्य त्वां परिणयति, तदा मां विदग्धां स्वसखीं मन्येथा, अन्यथा न तृणायेति ।' इत्युक्त्वा नृपसंसदि तस्या दुःपूरं सङ्गरमचकथत् । सोऽपि तदवज्ञाकुकूलानलेन (?) सन्तप्तस्वान्तः परामरतिं बिभ्राणः, तयैव सुबुद्ध्याभिदधे-'हे श्रीनिधे ! विधेहि धीरताम्, किं दुष्करं पौरुषाधिष्ठितानाम् । तथा चास्ति निरपायश्चायः(?) । अनुसर्यते हेमचन्द्रमहर्षिः, श्रूयन्ते तद्वचांसि ।' इति तया प्रेरितो विनयदत्तहस्तावलम्बो ययौ उपसूरिम्, ननाम तत्पदाम्बुजान्, पप्रच्छ तत्कनीसङ्गरवृत्तान्तम् । 'वत्स ! पूरय तस्याः समीहितं चेत्तस्याः परिणिनीषाऽस्ति । निःसीमोन्नतये परिणेतारं भोक्ष्यते (?) एषा । यतः-

१-२ तथा ३-४ अङ्कान्तर्गतं वर्णनं A आदर्शे न विद्यते । 1 P कान्तेव तेन च किं च ।

* एतचारकान्तर्गतवर्णनस्थाने A आदर्शे भिन्नावतारितं संक्षिप्तमेव वर्णनं प्राप्यते । यथा-'इति तस्याः प्रतिश्रवं दुःश्रवमाकर्ण्य सा विषण्णेदृग्ऽपमानिनी स्वं पदमुपगता स्वामिनं सर्वथा निराशमकरोत् । तदनु तं नृपं तद्वियोगाग्निभस्माकलय्य श्रीहेमचन्द्रमहर्षिभिर्मा प्रतिबोधितवान्-यः कन्याया इहलोकदुष्करः संगरः स तवाप्युभयलोकहितसद्गुणकत्वाहेतुश्च । अतस्त्वमपि निर्मायतया निर्माय मनिःसीमोन्नत्यं [illegible] सर्वथा परिणेतुमुचितेव । यत-

धन्यां सतीमुत्तमवंशजातां लब्ध्वाधिकां याति न कः प्रतिष्ठाम् ।
क्षीरोदकन्यां गिरिराजपुत्रीं गोपस्तयोमश्च यथाधिगम्य ॥

इति मंत्र महर्षिना प्रतिबोध्य सानन्दोपनमितमहान् साहयित्वा तस्याः सम्प्रदानं चक्रे । अथ सं० १२१६ मार्ग सुदि २ द्वितीयलग्ने पल्वनि महोत्सवपूर्वकं तस्याः प्रथमजलकुम्भो दक्षिणपाणिवद्दानकङ्कणः सम्यक्त्वानुचरेण समं श्रद्धासहोदरया क्रियमाणलवणावतारणो गुरुभक्तिदेवाशिषे-रानन्दं प्राप्य वंशकानयकमङ्गलः पौषधवेदिमन्दिरे भनुकम्पया कन्यारत्नस्य कृतमोहगुणः श्रीमन्महादेयसाहंवः साक्षि स सुर्गोनाहिंसायाः पाणिं जग्राह ।'

धन्यां सतीमुत्तमवंशजातां लब्ध्वाधिकां याति न कः प्रतिष्ठाम् ।
क्षीरोदकन्यां गिरिराजपुत्रीं गोपस्तथोग्रश्च यथाधिगम्य ॥ ८ ॥

इति तद्वचनमाकर्ण्य दूरितदुरितावलिं योजिताञ्जलिं तं भूपालपुङ्गवं नानाभिग्रहान् ग्राहयित्वा तस्याः प्रदानेनाऽनुजग्राह । ततः प्रमोदः सञ्जज्ञे । संवत् १२१६ वर्षे मार्गसुदि द्वितीयायां बलवति लग्ने संवेगमतङ्गजारूढो रत्नत्रयालङ्कृतशरीरः शुभमनःपरिणामवसनवान् दक्षिणपाणिबद्धदानकङ्कणः सम्यक्सितातपत्रनिवारिततापव्यापः श्रद्धासोदर्या क्रियमाणलवणावतरणो गुरुभक्ति-देशविरति-समिति-गुप्ति-प्रमुखसुमुखीजाणिणीगणदीयमानधवलमङ्गलः अमारिघोष एतत्पूर्णादितिर्वसे......(?) पटहेषु वाद्यमानेषु प्रोत्सारितेषु परिग्रहप्रमाणपटेषु दूरितेषु पापावकरेषु सद्बोधसुमनःश्रेणिवासितासु सन्न्यायराजवीथीषु पौषधागारद्वारमाससाद*। तदा अनुकम्पामहादेव्या कन्याजनन्या कृतप्रोक्षणः श्रीमदर्हतः साक्षिकं स नृपवरेन्द्रो अहिंसायाः पाणिं जग्राह । तदा तारामेलपर्वणि परमानन्दः । अथ षट्त्रिंशत्सहस्रपरिमाणत्रिषष्टिपुरुषचरित्राणि नवाङ्गवेदीमहोत्सवेन समानिन्ये । वेदिषडघास्थाने कपर्दपञ्चकन्यासव्यवहारे ते विंशतिर्वीतरागस्तवा नवाः । तत्र वंशे २ एकैकं शमीकाष्ठम् । तत्पदे श्रीयोगशास्त्रप्रकाशाः १२; तथा लक्षण-साहित्य-तर्केतिहास-प्रमुखशास्त्ररचना तत्परिकरः । मूलोत्तरगुणाभ्यां दृढीकृत्य वेदिकायां ज्ञानानलमुद्दीप्य, तत्र 'चत्तारी मंगल' इति मङ्गलान्यदात् । द्वासप्ततिलक्षप्रमाणरुदतीकरमोचनं कन्यामुखमण्डने राज्ञा दत्तम् । तत्कालमेव तस्याः पट्टबन्धं कारयित्वा तत्पितुर्योग्यानावासान् १४४४ विहारान्कारयामास । ततः सा हिंसा सपत्न्या अहिंसायाः परोन्नतिं तथाविधामालोक्य भर्तुः पराभवनिवेदनाय पितुर्धातुः समीपमुपागता । चिरदर्शनादभिभववैरूप्याच्चानुपलक्षिता तेनेत्यभिदधे—

का त्वं सुन्दरि ! ?, मारिरस्मि तनया ते तात धातः प्रिया,
किं दीनेव ?, पराभवेन, स कुतः ?, किं कथ्यतां कथ्यताम् ।
हेमाचार्यगिरा परार्द्ध्यगुणवान् हृद्वक्त्रहस्तोदरान्
मामुत्तार्य कुमारपालनृपतिः क्षोणीतलादाक्षिपत् ॥ ९ ॥

इति तद्भणितेरनन्तरं श्रीकुमारपालदेवस्य सत्यप्रतिज्ञस्यापि तस्य लिङ्गिनो गिरा त्वयि रक्तायां[1] विरक्तचित्ततां विमृश्य, अतःपरं भवत्याः स[2] कोऽपि प्रवरः वरः करिष्यते यस्तवैव एकातपत्रं कुरुते । धीरा भव' इति तां सम्बोध्य स्वसमीपे स्थापयांचक्रे । अथाहिंसादेव्या सार्द्धं श्रीकुमारपालनृपतिर्जीवन्नपि, असमानं[3]महानन्दसुखमनुभवन्,[4] चतुर्दशवर्षाणि यावत् सुखेनासामास[5] । तदनु कीर्तिं पूर्वप्रियामपि देशान्तरे प्रस्थाप्य यदा स्वर्लोकमलंचकार, तदैव तस्य प्रियस्य सप्रेमप्रसादललितान्यनुस्मरन्ती कलिमलिनं जनं परिजिहीर्षुरहिंसाऽनेनैव भूमिनाथेन[6] समं गमनं कृतवती[7] ।

॥ इति श्रीकुमारपालस्य अहिंसाया विवाहसम्बन्धप्रबन्धः ॥ शुभं भवतु ॥

[A सं० १५०९ वर्षे फागुणसुदि ९ वार रवौ पठता लपी ॥ छ ॥]

---

1 A नास्ति । 2 A भव्य एव स । 3 A 'असमान' नास्ति । 4 A अनुभूय । 5 नास्त्येतत्पदं A । 6 A भूपेन । 7 A चक्रे ।

प्रबन्धचिन्तामणिग्रन्थान्तर्गतपद्यानुक्रमणिका

—अकाराद्यनुक्रमेण—

टिप्पण्यन्तर्गतपद्यानामनुक्रमणिका ।

परिशिष्टान्तर्गतपद्यानामनुक्रमणिका ।